व्यक्तिवादी चेतना के विविध आयाम अज्ञेय के उपन्यासों में

VYAKTHIVADI CHETHANA KE VIVIDH AAYAM AJNEY KE UPNYASOM MEIN

THESIS SUBMITTED TO
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

SHEEBA K.P

Supervising Teacher

Prof. Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Head of the Department

Dr. S. SHAJAHAN
Professor
Department of Hindi

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

2002

दुःख सब को माँजता है
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिन को माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखे

'अज्ञेय'

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled as **"VYAKTHIVADI CHETHANA KE VIVIDH AAYAM AJNEY KE UPANYASOM MEIN"** is a bonafide record of work carried out by **SHEEBA. K.P** under my supervision for the award of Degree of **Doctor of Philosophy** and that no part of this thesis hitherto has been submitted for a Degree in any other university.

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Cochin-682 022

Dr. S. SHAJAHAN
Supervising Teacher

27-09-2002

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled as **"VYAKTHIVADI CHETHANA KE VIVIDH AAYAM AJNEY KE UPANYASOM MEIN"** has not previously formed the basis of the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar title or recognition.

SHEEBA. K.P

Research Scholar
Department of Hindi
School of Languages
Cochin University of Science & Technology
Cochin-682 022

27-09-2002

भूमिका

भूमिका

उपन्यास सर्वाधिक सशक्त साहित्यिक विधा है, जिसमें जीवन के यथार्थ की सही और ईमानदार अभिव्यक्ति प्रदान करने की क्षमता अन्य विधाओं की अपेक्षा सबसे ज़्यादा है । जीवन और साहित्य में यथार्थ के विकास के साथ-साथ व्यक्तिवादी चेतना का प्रसारण भी निरंतर होता रहा है । उपन्यास यथार्थ का प्रबल प्रस्तोता है । इसलिए व्यक्तिवादी चेतना में उसकी निकटता का रिश्ता होना सहज है । आधुनिक युग की वैज्ञानिक प्रगति के प्रसार ने व्यक्ति को नयी समझ प्रदान की है । नतीजतन व्यक्ति को समाज में अहमियत मिलने लगी है यह अहमियत उसमें चेतना तत्व के आगमन की वजह से मिली है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में भी कथ्य की दृष्टि से विपुल परिवर्तन आये हैं । इन परिवर्तनों के कारण आंतरिक और बाह्य दोनों रहे हैं । इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति और स्वतंत्रता ने व्यक्तिवादी चेतना की विकास यात्रा का सर्वाधिक प्रसारण किया है ।

अन्य विधाओं की तरह हिन्दी उपन्यास में भी व्यक्तिवादी चेतना के विविध आयाम उपस्थित है । अज्ञेय ने भी व्यक्तिवादी चेतना को अपने औपन्यासिक रचनाओं में रेखांकित किया है । इसलिए व्यक्तिचेतना के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास का अध्ययन महत्वपूर्ण है । इस अध्ययन का विषय है "व्यक्तिवादी चेतना के विविध आयाम अज्ञेय के उपन्यासों में" । प्रस्तुत शोध कार्य को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार है :-

1. व्यक्तिवादी चेतना और लेखन के आयाम ।
2. अज्ञेय की रचना-धर्मिता उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में ।
3. कथ्यगत विशेषताएँ अज्ञेय के उपन्यासों में ।

4. अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र - एक अध्ययन ।
5. अज्ञेय के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्तिवादी चेतना ।
अंत में "उपसंहार" भी दिया गया है ।

पहले अध्याय "व्यक्तिवादी चेतना और लेखन के आयाम" में व्यक्तिवादी चेतना, व्याख्या और विश्लेषण, व्यक्तिवादी चेतना संबंधी पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणाएँ एवं व्यक्तिवादी चेतना एवं साहित्य आदि के बारे में बताया गया है ।

खुद की शख्सियत के प्रति शख्स सजगता को व्यक्ति चेतना कही जा सकती है । व्यक्ति चेतना समाज में शख्स की खुदसर अस्मिता स्थापित करती है । यह सामाजिक, धार्मिक और नैतिक बन्धनों से शख्स को आज़ाद कर एक अलग अस्मिता बनाये रखने की मंशा और प्रेरणा देती है । यह सामाजिक परंपराओं व मान्यताओं को उसी हद तक ही मजूर करती है जिस हद तक कि वे अपनी तरकी एवं प्रगति की राह में मददगार हों ।

समाज में रहकर भी व्यक्ति अपना व्यक्तित्व बनाये रखना चाहता है । लेकिन उसके सामने सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक मूल्य आदि अनेक बाधाएँ सवाल उठाती हैं । समाज सदैव उसके व्यक्तित्व पर अपना असर डालता है जो कभी कभी व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना से टकराता है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के ज़रिये इसकी अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है

दूसरे अध्याय का शीर्षक है "अज्ञेय की रचना धर्मिता: उपन्यासों की परिप्रेक्ष्य में" । इसमें अज्ञेय के उपन्यासों का सामान्य परिचय देकर उनके रचना-व्यक्तित्व एवं कृतित्व और उनकी रचना दृष्टि का विकास आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है ।

अज्ञेय का पहला उपन्यास "शेखर एक जीवनी" दो भागों में विभक्त है । पहले भाग का प्रकाशन 1940 तथा दूसरे भाग का प्रकाशन सन् 1944 में हुआ था । उनकी औपन्यासिक यात्रा का दूसरा पडाव है "नदी के द्वीप" जो 1951 में प्रकाशित है । इसके दस साल बाद उनका तीसरा उपन्यास "अपने अपने अजनबी" प्रकाशित है ।

कलाकार अपने जीवन में व्यक्ति सत्य को ही व्यापक सत्य के रूप में प्रकट करता है । इसलिए कलाकार के व्यक्तित्व का परिचय कला संसार को समझने में सहायक बनता है । अज्ञेय के संदर्भ में यह सौ फीसदी सही है । उनकी रचना ही उनके व्यक्तित्व का प्रमाण है ।

"कथ्यगत विशेषताएँ अज्ञेय के उपन्यासों में" नामक तीसरे अध्याय में कथानक का संक्षिप्त परिचय, कथानकों की विशेषताएँ एवं न्यूनताएँ, कथ्य प्रस्तुति की शैलियाँ आदि को प्रस्तुत किया गया है ।

अज्ञेयजी के आगमन से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य सर्वथा नया मोड ग्रहण करता है । उनके उपन्यास व्यक्ति के स्वातंत्र्य की खोज करते हैं । वे मानव के आभ्यंतर के कथाशिल्पी हैं । घटना-बाहुल्य में वे विश्वास नहीं करते हैं । व्यक्ति-जीवन की अंतश्चेतना का निरूपण करना उनका लक्ष्य है । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के कथानक में जो परिसीमिता आयी है उसका बहुत ही सशक्त रूप अज्ञेय के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

उन्होंने अपने उपन्यासों की अभिव्यक्ति के लिए कई नितांत नूतन शैलियों का इस्तेमाल किया है । हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में जिस प्रकार

प्रेमचन्द का स्थान बहुत ऊँचा है उसी प्रकार अज्ञेय का नाम भी । वास्तव में, अज्ञेय के आगमन से कथ्य और शिल्प दोनों में एक नवीनता आयी ।

"अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र" नामक चौथे अध्याय में उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की आवश्यकता, बहिरंग चरित्र-चित्रण प्रणाली, अंतरंग चरित्र-चित्रण प्रणाली, अज्ञेय के पात्रों की विशेषताएँ, प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण आदि का अध्ययन किया गया है ।

हमारे समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जिनकी अभिलाषाएँ किसी-न-किसी कारण से टूट गयी है । व्यक्ति अपनी टूटी अभिलाषाओं को कल्पना जगत में साकार करने का प्रयास करता है । इसलिए उसका स्वभाव अंतर्मुख हो जाता है । अज्ञेय ने ऐसे पात्रों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है । उन्होंने अपने अधिकांश पात्रों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित किया है । अज्ञेय के सभी पात्र संघर्षशील पात्र हैं । अधिकतर पात्र समाज की परवाह नहीं करते । अहं, भय, काम इन तीन वृत्तियों को मूलाधार बनाकर ही अज्ञेय ने अपने पात्रों का निर्माण किया है ।

पाँचवाँ अध्याय है "अज्ञेय के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्तिवादी दृष्टिकोण" । इसमें अज्ञेय के उपन्यासों में आये हुए सामाजिक संदर्भों का संकेत देकर उसमें अभिव्यक्त व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है । उनके पात्र समाज से एकदम कटे नहीं है । लेकिन उन्होंने सामाजिक समस्याओं से अधिक स्थान व्यक्ति की समस्याओं को दिया है । व्यक्ति की समस्याओं का संबंध हमेशा उसके बाह्य यथार्थ से नहीं होता । उससे भी कुछ सूक्ष्म, कुछ गहरा यथार्थ होता है, जिससे मुँह नहीं मोडा जा सकता है । अज्ञेय ने इसी यथार्थ को

अपने उपन्यासों में स्थान दिया है । इसी कारण अज्ञेय की दृष्टि व्यक्तिवादी रही । व्यक्तिवाद के विभिन्न आयाम, जैसे चयन का स्वातंत्र्य, विचारों का स्वातंत्र्य, क्षण की महानता मृत्युबोध, अजनबीपन, अकेलापन, निरर्थकताबोध, आदि उनकी औपन्यासिक रचनाओं की विशेषताएँ रही हैं ।

अंत में "उपसंहार" भी दिया गया है । इसमें अज्ञेय के उपन्यासों के अध्ययन के उपरांत निकले निष्कर्ष को समाकलन किया गया है । अध्ययन के दौरान शोधार्थी के मन में अज्ञेय के उपन्यासों को लेकर कुछ मुद्दे आये । वे हैं अज्ञेय के पात्र क्यों व्यक्तिवादी हो गये ? क्या अज्ञेय परंपरा और संस्कृति को पूर्ण रूप से तिरस्कार किया है ? और व्यक्ति स्वातंत्र्य कहाँ तक सार्थक है ? इन सबका जब अपने ढंग से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास शोधार्थी ने किया है ।

हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोच्ची - 682022.
तारीख .09.2002

षीबा.के.पी

कृतज्ञता - ज्ञापन

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "व्यक्तिवादी चेतना के विविध आयाम अज्ञेय के उपन्यासों में" आपके सम्मुख है । यह शोध छात्रा उन सभी व्यक्तियों का आभारी है, जिन्होंने अपना किंचित स्नेहदान और पक्का विचार देकर मेरा उत्साह बढाने और शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने की प्रेरणा देने का कार्य किया है । रूपरेखा के अनुसार यथासाध्य उपलब्ध सामग्रियों का संकलन कर यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है ।

मैं सर्वप्रथम आभारी हूँ अपने शोध निर्देशक परम आदरणीय गुरुवर डा. एस. षाजहान जी (सेवानिवृत्त प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय) के प्रति जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए यथासमय आवश्यक निर्देशन और सुझाव दिया है । उनका परम स्नेह, सतत प्रेरणा और सहायता से ही यह कार्य पूरा हुआ है । इसलिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई, उनके आशीष हेतु विनम्र निवेदन प्रस्तुत करती हूँ ।

मैं बहुत आभारी हूँ मेरे "विषय विशेषज्ञ"
प्रो (डा.) आर. शशिधरन जी (हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय) के प्रति, जिन्होंने कार्य व्यस्तता के बीच भी शोध प्रबन्ध को आद्यान्त पढने, आवश्यक संशोधन एवं सुझाव देने के लिए समय निकाला है । इसलिए मैं उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई उनके आशीष हेतु विनम्र निवेदन प्रस्तुत करती हूँ ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, अन्य सभी गुरुजनों, सहयोगियों एवं मित्रों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने में जाने-अनजाने हमारी मदद की है ।

कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के दफ्तर एवं पुस्तकालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने अध्ययन के दौरान जो सुविधाएँ एवं सहयोग मुझे प्रदान किया है उनके लिए मैं आभारी हूँ ।

उन ज्ञात अज्ञात लेखकों के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं से शोध की नई दिशाओं का संकेत मिला है ।

मेरे प्रिय पति "अनु" ने निरंतर कार्य करते रहने के लिए मुझे प्रोत्साहन न किया होता तो शायद यह कार्य पूर्ण न हो पाता । उन्हें मैं क्या धन्यवाद दूँ, यह तो उन्हीं के त्याग का फल है ।

षीबा. के. पी

हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोच्ची - 682022.

तारीख .09.2002.

विषय-सूची

विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय एक — 1 - 34

व्यक्तिवादी चेतना और लेखन के आयाम

व्यक्तिवाद परिभाषा - व्यक्तिवाद विश्लेषण - व्यक्तिवाद पाश्चात्य अवधारणाएँ - व्यक्तिवाद भारतीय अवधारणाएँ - साहित्य और व्यक्तिवाद - कविता - नाटक - कथा साहित्य ।

अध्याय दो — 35 - 79

अज्ञेय की रचना-धर्मिता उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में

अज्ञेय के उपन्यास सामान्य परिचय - अज्ञेय व्यक्तिगत जीवन की झाँकियाँ - कृतित्व - कविता साहित्य - निबन्ध - साहित्य - गीतिनाट्य और एकांकी - कहानी साहित्य - उपन्यास - अज्ञेय की रचनादृष्टि का विकास - कथानक संबंधी दृष्टिकोण - चरित्र संबंधी दृष्टिकोण - उद्देश्य संबंधी दृष्टिकोण - भाषा शैली - निष्कर्ष ।

अध्याय तीन — 80 - 123

कथ्यगत विशेषताएँ अज्ञेय के उपन्यासों में

शेखर एक जीवनी-पहला भाग - प्रथम खण्ड - उषा और ईश्वर - द्वितीय खण्ड - बीज और अंकुर - तृतीय खण्ड - प्रकृति और पुरुष - चतुर्थ खण्ड - पुरुष और परिस्थिति - दूसरा भाग - प्रथम खण्ड - पुरुष और

पृष्ठ संख्या

परिस्थिति - द्वितीय खण्ड - बन्धन और जिज्ञासा - तृतीय खण्ड - शशि और शेखर - चतुर्थ खण्ड - धागे रस्सियाँ और गुंझर - नदी के द्वीप - अपने-अपने अजनबी - कथ्य प्रस्तुति की शैलियाँ - आत्मकथात्मक शैली - मनोविश्लेषणात्मक शैली - संवाद शैली - उद्धरण शैली - कथाकाल विपर्यय - पूर्वदीप्ति प्रणाली - पत्र एवं डायरी शैली - दृश्य योजना को प्रमुखता देनेवाला कथानक - प्रतीकों का प्रयोग - शिथिल एवं रसक्षीण कथानक - अज्ञेय के कथानक की विशेषताएँ एवं न्यूनताएँ - अज्ञेय के उपन्यासों की भाषा ।

अध्याय चार 124 - 182

अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र एक अध्ययन

चरित्र-चित्रण की पद्धतियाँ - बहिरंग चरित्र चित्रण प्रणाली - अंतरंग चरित्र चित्रण प्रणाली - उपन्यासों में चरित्र चित्रण की आवश्यकता - अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र - प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण - शेखर - बाबा मदनसिंह - शशि - भुवन - रेखा - गैरा - चन्द्रमाधव - सेल्मा - योके - अज्ञेय की चरित्र चित्रण की विशेषताएँ ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय पाँच 183 - 207

अज्ञेय के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्तिवादी दृष्टिकोण

अज्ञेय के उपन्यासों में सामाजिकता - व्यक्तिवादिता - स्वातंत्र्य - वरण की स्वातंत्र्य - वेदना - क्षण की महानता- अस्तित्वबोध - अकेलापन और अजनबीपन - अहंग्रस्तता - यौनभाव - निरर्थकता बोध - शून्यता की स्वीकृति - भय एवं पीड़ा बोध ।

उपसंहार 208 - 216

संदर्भ ग्रन्थ-सूची 217 - 227

xxxxx

अध्याय : एक

व्यक्तिवादी चेतना और लेखन के आयाम

प्राचीन काल से लेकर आज तक की रचना पद्धति पर विचार करते समय यह ज़ाहिर होता है कि व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों और उनकी विशिष्टताओं ने उस रचना पद्धति को रूपायित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । इस पद्धति ने मानव के चिंतन की अनेक सीमाओं को परिभाषित किया और उसका समन्वय किया । वैसे व्यक्तिवाद ने अपने सुदूर व्यापक प्रभाव को साहित्य पर डाला है । व्यक्तिवाद जैसे जैसे साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने लगा था, वैसे-वैसे मानव चरित्र की नयी भूमिकाएँ उभरकर आने लगी हैं ।

कुछ लोगों के अनुसार व्यक्तिवादी चेतना की प्रारंभिक गतिविधियाँ यवन साहित्य में देखी जा सकती हैं । ईसापूर्व पाँचवीं शती में जब यवन साम्राज्य का विघटन होने लगा, तब स्वतंत्रताकांक्षी यवन विचारकों ने व्यक्ति की मान्यताओं की प्रतिष्ठा की थी । यवन देश में व्यक्तिवाद की उत्पत्ति के पीछे सोफिस्ट विचारकों का अपना महत्वपूर्ण योगदान है । उनके अनुसार व्यक्तिवाद की मूल विशेषताएँ इस प्रकार हैं कि समाज, व्यवस्था और परंपरा से टूटकर भी व्यक्ति अपने अस्तित्व का भली-भाँति निर्वाह कर सकता है । व्यक्ति की आत्म-निर्भरता निसर्ग सिद्ध है । स्पष्ट है कि व्यक्तिवाद पूर्ण रूप से व्यक्ति स्वातंत्र्य पर आधारित है ।

व्यक्तिवाद परिभाषा

व्यक्तिवाद की कई परिभाषाएँ देखने को मिलती हैं । अंग्रेज़ी में व्यक्ति के लिए "इनडिविज्वल" शब्द प्रयुक्त किया जाता है । जो अविभाज्य हो वह इन्डिविज्वल कह सकता है । जो स्वयं व्यक्त किया जा सकता है वही व्यक्ति है । अर्थात् सत्य अथवा तथ्य की दृष्टि से जो एक हो, जिसकी

अविभाज्य सत्ता हो उसे व्यक्ति कहते हैं । जिसका अस्तित्व अविभाज्य सत्ता के रूप में हो, अपने गुणों लक्षणों और चारित्रिक विशिष्टताओं के कारण जो दूसरों से अलग किया जा सकता है वही व्यक्ति है ।

व्यक्तिवादी चेतना का सामासिक अर्थ है व्यक्ति की चेतना अथवा व्यक्ति से संबद्ध या व्यक्ति विषयक चेतना । समस्त पद के रूप में व्यक्तिवादी चेतना में व्यक्ति और चेतना दोनों का सम्मिलित अर्थ समाविष्ट होता है । यानी व्यक्ति चेतना का अर्थ हुआ अपने स्वतंत्र अस्तित्व रखनेवाले मूर्त और सजीव मानव प्राणी की वह अन्तः प्रेरित मानसिक चेतना शक्ति, स्थिति दशा अथवा क्षमता जिसका संबंध व्यक्ति के अपने विचारों, प्रभावों, संकल्पों, अनुभूतियों, संवेदनाओं, बिम्बों आदि से होता है । इस प्रकार व्यक्ति-चेतना व्यक्ति में निहित, व्यक्तिगत, व्यक्ति से संबंद्धित व्यक्ति में अन्तर्भूत उसके मन या मस्तिष्क के भीतर निरंतर होनेवाली प्रक्रिया है ।

पाश्चात्य दर्शन में व्यक्ति चेतना को सार्त्र ने विषयीगतत्व का सिद्धांत कहा गया है । व्यक्ति चेतना जो व्यक्ति को बनाती है वह उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । चयन का स्वातंत्र्य, विचारों का स्वातंत्र्य, स्थापित व्यवस्था का विरोध आदि व्यक्ति चेतना के प्रमुख लक्षण हैं । अतः धर्म, समाज, साहित्य, परंपरा द्वारा प्रतिपादित विचारधारा को त्यागकर स्वचिछत पथ का अनुगमन है व्यक्तिवाद । इस व्यक्ति चेतना के आधिक्य के कारण व्यक्ति अन्तर्मुखी भी हो जाता है ।

व्यक्तिवाद का प्रयोग लिबरिलज़्म के अर्थ में भी होता है ।

---

1. ज्ञानोदय - साहित्य कोश

यह व्यक्ति-स्वातंत्र्य को शीर्षस्थ महिमा देता है । प्लेटो ने व्यक्तिवाद को लिबरिलज़्म के अर्थ में प्रयुक्त किया है । उसके दर्शन में आधुनिक व्यक्तिवाद के दो प्रधान तत्व होते हैं । प्रथम प्रत्येक मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य सुख है । द्वितीय समाज और राज्य आवश्यक दोषी है । अंग्रेज़ी समीक्षक इयनावट के शब्दों में "व्यक्तिवाद अन्य व्यक्तियों से व्यक्ति मानव की मूल स्वाधीनता पर बल देनेवाला सिद्धांत है । वह परंपरा पर आश्रित असंख्य चिंतनों, रूढियों के विविध प्रकार की दासता से व्यक्ति की मुक्ति पर बल देता है । इसका कारण यह है कि परंपरा हमेशा समाज सापेक्ष है । व्यक्ति समाज सापेक्ष नहीं है ।"[1] व्यक्तिवाद परंपरागत नियंत्रण और अधिकार का निषेध करता है, विशेषकर राष्ट्र द्वारा आरोपित नियंत्रणों का निषेध ।

हेनरी रीबसन ने इडिविज्युअलिसम शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के इगोटिज़्म के स्थान में किया है । इगोटिज़्म जिस मानसिक दृष्टिकोण और जिन नैतिक प्रतिमानों का प्रतीक था, उसके अनुसार हरेक व्यक्ति में अपने प्रत्येक कार्य का लक्ष्य है । उसका संपूर्ण स्नेह और समूचा लगाव अहं के जीवित संपर्क से ही है । स्वार्थमयी प्रवृत्तियाँ ही उसकी प्रेरणा का सूचक हैं, जिसके अनुसार व्यक्ति समष्टि से पार्थक्य तो कर लेता है, किन्तु वह घोर व्यक्तिवादी मनोवृत्ति के आवेश में अपने अहं के प्रति पूर्ण स्नेह और लगाव रहता है ।

व्यक्तिवादी सिद्धांत के अनुसार एक साधारण मानव का हित तभी संपन्न होगा जब उसे अपने लक्ष्यों और साधनों के चुनाव में पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती है । अपने धर्म क्षेत्र में पूरी जिम्मेदारी और स्वाधीनता होनी चाहिए । इडिविज्युलिसम नामक ग्रन्थ में स्लेवन लुकस ने लिखा है कि धार्मिक

---

1. इयानवट - दि राइस ऑफ दि नॉवल - पृ. 62

व्यक्तिवाद की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती हैं "व्यक्ति साधक को धर्म साधना में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं, अपने आध्यात्मिक पथ के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है ।"[1]

आज के आत्मकेन्द्रित व्यक्ति का सिद्धांत है, अपने आप, अपने में और अपने ही लिए जियो । व्यक्ति और व्यक्ति-चेतना की यह विशुद्ध व्यक्तिवादी दृष्टि "स्व" को, एक को अहं को स्वीकार नहीं करती । इस "स्व" को स्वीकृति और "पर" की अस्वीकृति का कारण है भूख, निरंतर जागरूक भूख ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि व्यक्तिवाद पूर्ण रूप से "स्व" पर आधारित है, और पर का निषेध है । रूढियों तथा परंपराओं से व्यक्ति को मुक्त करना भी चाहता है । यह धार्मिक कार्य में भी व्यक्ति को स्वतंत्रता मांगता है । संक्षेप में कहा जाय तो व्यक्तिवाद वह है जो सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक तथा परंपरागत बन्धनों से व्यक्ति को मुक्त करते हुए उसे अपने एक स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखने को प्रेरणा देता है ।

विश्लेषण

व्यक्तिवादी दर्शन में व्यक्तिगत विचारधारा की प्रधानता रहती है । यहाँ व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और धर्म, व्यक्ति और संस्कृति, तथा व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के अन्तर्द्वन्द्वों का विश्लेषण किया जाता है । उदाहरण के लिए समाज में रहकर भी व्यक्ति अपना व्यक्तित्व बनाए रखना चाहता है । लेकिन उसके सामने सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक मूल्य आदि

---

1. स्लेवन लुक्स - इनडिविज्वलिज़म - पृ. 14

अनेक बाधाएँ सवाल उठाती हैं । समाज सदैव उसके व्यक्तित्व पर अपना असर डालता है जो कभी-कभी व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना से टकराता है । एक ओर व्यक्ति में मानवीय मूल्य है तो दूसरी ओर उसे अपने सांस्कृतिक मूल्यों का भी निर्वाह करना पड़ता है । ये दोनों उसके मन में संघर्ष पैदा करते हैं । यह संघर्ष भीतर है तो बाहर का संघर्ष उससे भी ज़्यादा प्रभावमयी है । मतलब यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक मूल्य होते हैं, और उनका आधार उस व्यक्ति के मनो-व्यापार हैं, जो उसकी निजी परिस्थिति से जनित होते हैं । व्यक्तियों के इन अंतर्विरोधी सांस्कृतिक मूल्यों में संघर्ष होने पर समाज में अराजकता की स्थिति भी आ जाती है ।

व्यक्ति के मन में जन्म लेनेवाली विरोधी इच्छाएँ मानसिक संघर्ष का आधार बनती है । और इस संघर्ष का शिकार व्यक्ति, धीरे-धीरे समाज से कटकर सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष करने लगता है । दूसरे शब्दों में व्यक्ति का आत्म-संघर्ष जब संकीर्ण होने लगता है तब सामाजिक विधि निषेधों के प्रति व्यक्ति उदास हो जाता है । उदासीनता की यह स्थिति आदमी को अकेला बनाती है और अपनी तरफ से मूल्यों को और मान्यताओं को बनाने के लिए उसे प्रेरित करती है ।

व्यक्तिवाद पाश्चात्य अवधारणाएँ

आधुनिक व्यक्तिवाद के विकास की एक लम्बी पृष्ठभूमि है । पेरिक्लीस के एक भाषण में सर्वप्रथम व्यक्तिवाद की ग्रीक उत्पत्ति का पता चलता है । यह व्यक्तिवाद को बाद में परिष्कृत और परिवर्तित किया गया । ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी तक के इतिहास का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि समाज को सत्य और यथार्थ मानकर उसको उत्पत्ति के कारण व्यक्तिमूलक

स्वार्थों की पूर्ति में स्थापित किया गया है । समाज तथा राज्यों को उन्हीं स्वार्थों की प्राप्ति का एकमात्र साधन बनाया गया है । विधि और व्यक्तिगत स्वार्थों की यह एकरूपता बहुत दिनों तक नहीं चल सकी । वैसे विधियाँ शक्ति के बल पर अपनी जीत हासिल करती हैं और समाज की नैसर्गिक सरलताओं को नष्ट कर देती है । शनैः शनैः इस दृष्टिकोण को दार्शनिक-दृढ़ता प्रदान की जाने लगी ।

मानव ने अपने अस्तित्व को पहली बार कहाँ और कैसे पहचाना है । इसका पता लगना बहुत कठिन है । इसके बावजूद इस दुष्कर समस्या पर पूर्व और पश्चिम के विचारकों ने विचार किया है । सुकरात से पहले ही विचारकों ने, बुद्धि के आधार पर पाप-पुण्य और अच्छे-बुरे को व्याख्यायित किया था । सोफिस्ट विचारकों ने इस चिंतन को नवीन दिशा प्रदान की और जीवन-मूल्यों को परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया था । जार्जियस ने तो सत्य को ही नकार दिया । उसका कहना है कि सत्य है ही नहीं, और यदि कहीं है भी तो उसे जाना नहीं जा सकता । अलसी डेमस ने तो गुलामी की बुराई की है । उन्होंने सर्वप्रथम व्यक्तिवादी चेतना में स्वातंत्र्य की भावना की प्रतिष्ठा की । उनका कहना था कि -"परमेश्वर ने मानव मात्र को स्वतंत्र प्राणी के रूप में ही पृथ्वी पर भेजा है । प्रकृति ने किसी को गुलाम नहीं बनाया है ।"[1] यहाँ स्पष्ट है कि जीवन के लिए व्यक्ति चेतना आवश्यक है, तभी व्यक्ति का अस्तित्व प्रामाणित हो सकता है । जब व्यक्ति के सामने अन्यायपूर्ण स्थिति के उपस्थित होने पर व्यक्ति चेतना जागती है, जब व्यक्ति दासता से मुक्ति पाने के लिए सजग होता है और समानता की सन्दर्भ भूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होता है तब व्यक्ति-चेतना की नींव पड़ती है ।

---

1. जान लेविस - हिस्टरी ऑफ फिलोसोफी - पृ. 32

इनके अतिरिक्त प्रोटोगोरस ने भी सामाजिक नियमों एवं मर्यादाओं को मानव जीवन के अनुकूल डालने में विश्वास प्रकट किया था । मानव संबंधी इसी विचारधारा को केन्द्र मानकर सोफिस्ट विचारकों ने दृष्टि के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा की थी । व्यक्ति को ही केन्द्र मानकर ही अच्छाई-बुराई, ऊँचाई-नीचाई, सुख-दुःख आदि को माना । इससे व्यक्ति चेतना को एक आधार तो अवश्य प्राप्त होने लगा था । परन्तु स्वतंत्र इकाई के रूप में व्यक्ति चेतना प्रतिष्ठित नहीं हो पायी ।

लेकिन सोफिस्ट विचारकों की मान्यताओं एवं सिद्धांतों का सुकरात ने विरोध किया तथा व्यक्ति का अस्तित्व समाज के सन्दर्भ में ही स्वीकार किया । उसके अनुसार व्यक्ति का समाज से पृथक कोई अस्तित्व नहीं होता । इसी कारण सुकरात युगीन व्यक्ति-चेतना समाज के अंक के रूप में ही विकसित हो पायी थी ।

अरस्तू के चिंतन का प्रमुख क्षेत्र मानव रहा । अरस्तू ने मानव को सामाजिक प्राणी माना । विवेकशील प्राणी के रूप में उन्होंने मानव को स्वीकार किया । तथा समाज के व्यवहारिक पक्ष को अपने चिंतन का क्षेत्र बनाया और चिंतन किया कि समाज किस प्रकार मानव जीवन के उपयोग में आ सकता है । इसी आधार पर अरस्तू ने व्यक्ति-चेतना को नया रूप प्रदान किया । अरस्तू ने व्यक्ति को समाज व राष्ट्र से श्रेष्ठ माना । उसके अनुसार समाज व राष्ट्र का निर्माण व्यक्ति के लिए हुआ, व्यक्ति समाज वा राष्ट्र के लिए नहीं बना । व्यक्ति में आदर्श जीवन जीने की इच्छा रहती है । जो व्यक्ति आदर्श जीवन जीना चाहता है, उसमें न्याय, सुख, सद्गुण संस्कार होता है । इसी आधार पर अरस्तू ने व्यक्ति को दो क्षेत्रों में रखा । अपने बाह्य क्षेत्रों में

मनुष्य की चेतना परिवार समाज व राष्ट्र का उपयोग करते हुए भौतिक सुख सुविधा को प्राप्त करना चाहती है । आंतरिक क्षेत्र में वह आदर्श व्यक्तियों के अनुसरण द्वारा काव्य कला नैतिकता से संस्कार ग्रहण करना चाहती है । अरस्तू ने व्यक्ति-चेतना को ही महत्वाकांक्षाओं से मुक्त किया ।

इसके पश्चात् महान चिंतक एपीक्यूरस ने व्यक्तिगत सुख व सुविधा की खोज को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना । उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्था के युग में व्यक्ति को मृत्यु के भय, अंधविश्वास आदि से छुटकारा दिलाया और व्यक्ति को स्वतंत्र एवं आत्मखोजी बना दिया । फलत: वह भाग्य की अपेक्षा कर्म, ईश्वर की अपेक्षा स्वयं में अधिक विश्वास करने लगा । इस कारण व्यक्ति-चेतना भौतिक धरातल के स्थान से मानसिक धरातल पर प्रतिष्ठित होने लगी ।

इसके उपरान्त स्टोईक चिंतन का विकास हुआ । स्टोइक चिंतकों ने विभिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों के मध्य व्यक्ति को शांत बने रहने की धैर्य धारण करने की प्रेरणा दी । इसके लिए उसे आध्यात्मिक शक्ति देने का प्रयास किया । परिणाम स्वरूप स्टोईक चिंतन में व्यक्ति-चेतना मानव निर्मित संपूर्ण सीमाओं तोडकर सृष्टि के नवीन क्षितिजों का स्पर्श करने लगी । इसका आधार, धार्मिक रहा । तत्पश्चात् ईसा मसीह के प्रभाव से व्यक्ति चेतना को नवीन दृष्टि मिली । और समस्त अंधविश्वासों को त्याग कर व्यक्तिवाद ईश्वरोन्मुख हो गया ।

मध्ययुग में अगस्टीन के विचारों से प्रभावित व्यक्ति चेतना राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक धरातल पर विकसित होने लगी । इस युग की व्यक्ति-चेतना को भी कोई उचित मार्ग न मिल सका । राजनीतिक परिवर्तन

के कारण मध्ययुग में व्यक्ति-चेतना के स्वरूप में पुनः परिवर्तन हुआ । उत्तर यूरोप की जातियों ने रोमन साम्राज्य पर आक्रमण करके उसे अस्तव्यस्त कर दिया, और वहाँ की व्यवस्थाओं को भी नष्ट कर दिया था । ऐसे समय में व्यक्ति पर किसी न किसी सत्ता का प्रभाव हावी होने लगा था । इसी कारण अधिकार आमजनता के मतों से बड़ा हो गया और राज्य व्यक्ति से । और व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता नष्ट हो गयी । संत अगस्टीन के समय व्यक्ति चेतना राज्य व चर्च के आधार पर स्थिरता लाने का प्रयास करने लगी । परन्तु उसका यह प्रयत्न सफल हो न सका । इस प्रकार व्यक्ति चेतना के पूर्व-प्रस्फुटित-अंकुर सूखने लगी ।

तेरहवीं शताब्दी के अन्त में ईश्वर की सत्ता के नाम पर चर्च द्वारा प्रसारित आदेश, नियम आदि व्यक्ति-चेतना पर बुरी तरह छा गए, व्यक्ति पराधीन होकर छटपटा उठा, वह विद्रोह पर उतर आया । इस प्रकार धीरे-धीरे व्यक्ति-चेतना की चिनगारी ने फिर से आग का रूप धारण कर लिया । इसका प्रमाण दांते के महाकाव्य "डिवाइन कामेडिया" में देखा जा सकता है । उसने भौतिक तथा मानसिक धरातल पर व्यक्ति चेतना को विस्तार दिया । अपने काव्य में उसने इस सिद्धांत की प्रतिष्ठा की कि व्यक्ति का व्यक्तित्व अनंत व्यापकता युक्त होता है । यह माना जा सकता है कि नवजागरण के माध्यम से व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व, अपनी चेतना, अपने "स्व" को नये रूप में खोजने की कोशिश की । यह नवीन दृष्टि दांते से ही प्रारंभ हुई । उनके चिंतन में नवजागरण की चिनगारी समाहित थी । दांते तथा तत्कालीन विचारकों से प्रेरित मानव अपने आत्म सम्मान के बारे में चिंतन करने लगा, और उसकी चेतना जाग उठी । धीरे-धीरे उसने बन्धनों को तोड़ा और वह विश्व पर अपना प्रभाव ज़माने लगा । चर्च आदि के बंधन भी उसने तोड दिये । खोखले अंधविश्वासों को समझने लगा और अपने विचार-स्वातंत्र्य के अधिकार का उपयोग करने लगा ।

नवजागरण के संदर्भ में व्यक्ति चेतना का आधार परिवर्तित हुआ । मानववाद ने व्यक्ति-चेतना को उसके महत्व का ज्ञान दिया । परिणाम स्वरूप व्यक्ति-चेतना अपने सीमाओं और संभावनाओं को खोजने लगी । इस खोज में उसने विज्ञान-स्वतंत्रता, स्वावलंबन एवं अनुभव को आधार बनाया । व्यक्तिवादी चेतना ने तो यह स्वीकार किया कि संसार भी परीक्षण की वस्तु है । इस प्रकार व्यक्ति-चेतना अनेक आशाएँ लेकर विकसित हुई ।

बेकन मानव को समस्त प्राचीन परंपराओं, विचारों, मूल्यों व कल्पनाओं से मुक्त देखना चाहता था । बेकन ने अपने विचारों के माध्यम से मानव में मुक्ति की भावना भर दी । इससे प्रभावित व्यक्ति प्रत्येक प्रकार के भय से मुक्त हुई । स्वतंत्रता और मुक्ति के इन नये अनुभवों ने व्यक्ति में नवीन चेतना का विकास किया जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अन्धविश्वास से मुक्त हुआ । वोलटेयर और रूसो के विचारों ने व्यक्ति को भेद-विभेदों से मुक्त स्वतंत्र स्वरूप माना । वोलटेयर व्यक्ति को धर्म, समाज, सत्ता, अंधविश्वास आदि से मुक्त देखना चाहता था तो रूसो ने उसे एक आदर्श राज्य की आधारशिला के रूप में माना । इस तरह वोलटेयर और रूसो ने व्यक्ति को समस्त उलझनों से मुक्त एवं आदर्शपूर्ण चेतना मानना चाहा । बाद में जे.एस. मिल जैसे विचारकों ने व्यक्ति के स्वतंत्र व्यक्तित्व की परिकल्पना प्रदान की । वे स्वतंत्रता को व्यक्ति के अस्तित्व का सबसे बड़ा सत्य स्वीकार करते हैं । यह स्वतंत्रता किसी भी क्षेत्र में बन्धन स्वीकार नहीं करती और जिसे छीनने का अधिकार किसी को नहीं भी है । इस विचार ने व्यक्तिवाद को एक नयी दिशा प्रदान की । डार्विन के विकासवाद के आधार पर 'समर्थ ही जीवित रहने का अधिकारी है' जैसी धारणा प्रबल होने लगी । इससे प्रभावित होकर स्पेंसर जैसे चिंतकों ने अहंवाद को व्यक्ति का आवश्यक गुण माना । नीशे ने व्यक्ति-चेतना को

नवीन स्वरूप प्रदान करके उसे अस्तित्ववाद की ओर उन्मुख किया । और उसमें यह प्रवृत्ति पा जायेगी कि वह वास्तविक "स्व" को पहचाने योग्य बने । फ्रायड ने व्यक्ति-चेतना को व्यक्ति के मन की विभिन्न दशाओं से जोडकर ऐसी एक नवीन अवधारणा प्रदान की कि समाज में व्यक्ति की सफलता विभिन्न परिस्थितियों में किये गये उसके व्यवहार पर निर्भर करती है । इसके पश्चात् एड्लर और युंग ने भी व्यक्ति-चेतना का मनोविश्लेषण किया । फिर आधुनिक युग में सार्त्र ने व्यक्ति-चेतना को यह अहसास कराया कि व्यक्ति ही सर्वोपरि है और उसी का अस्तित्व सत्य है । आज व्यक्ति अकेला है और अपने समान अकेले प्राणी से जुडा हुआ हैं इसलिए उसकी स्वतंत्रता सबकी स्वतंत्रता है । उसका अस्तित्व सब का अस्तित्व है । आधुनिक साहित्य अस्तित्ववाद के इसी चिंतन को शब्दबद्ध करने का प्रयास करता है ।

इस तरह व्यक्ति-चेतना में प्राचीन समय से अब तक अनेक मोड आये हैं । सुकरात से पूर्व व्यक्ति चेतना का कोई व्यवस्थिति स्वरूप नहीं था । सुकरात से ईसा मसीह तक व्यवित-चेतना ने अपनी खोज के अनेक प्रयत्न किये । परन्तु यह खोज समाज के अंदर तक ही सीमित रही । समाज से अलग न तो व्यक्ति प्रतिष्ठा पा सका और न ही व्यक्ति चेतना । कभी व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए स्वीकारा गया था । ईसा युग से नवजागरण युग तक व्यक्ति-चेतना प्रमुख रूप से सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र से जुडकर विकसित हुई । तत्पश्चात् आधुनिक चिंतन का विकास हुआ जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति-चेतना आधुनिक धरातल पर प्रतिष्ठित हुई । बीसवीं सदी पूर्णतः विज्ञान का युग है । विज्ञान के विकास के साथ-साथ व्यक्ति की इच्छाएँ बढ़ती गयी, संघर्ष बढता गया, सामर्थ्य की सीमाएँ बढ़ती गयी । विज्ञान का विकास व्यक्ति-चेतना से अन्धविश्वा को हटाता गया । आज उसका चरमोत्कर्ष मानव के क्षणवादी अस्तित्ववादी चिंतन में पाया जाता है जो ईश्वर को प्रायः विदा कर चुका है ।

व्यक्तिवादी चेतना भारतीय अवधारणा

आज से हज़ारों वर्ष पूर्व भारतीय जनसमूह में चेतना का पर्याप्त विकास हुआ था । आर्यों से लेकर और आर्यों के आगमन के बाद का जो विशाल समय खण्ड है जिसमें व्यक्ति-चेतना की क्षीण रेखाएँ कहीं न कहीं नज़र आती हैं । वैदिक चिंतन के पहले भी द्रविड, यक्ष, किन्नर, आग्नेय, गंधर्व, देव आदि जातियों के व्यक्तिवादी व्यवहार भी हमारे सामने उभर कर आयी है । वैदिक चिंतन में भी व्यक्तिवादी चेतना के कुछ अंश दृष्टिगत हुए हैं । ऋग्वेदीय युग में भारतीय समाज में व्यक्ति का सामूहिक परिप्रेक्ष्य में विकास होने लगा था । अच्छाई-बुराई, पाप-पुण्य और सत्य-असत्य का आधार कर्म को माना जाता था । विचार वा कर्म में व्यक्ति स्वतंत्र था परन्तु परहित को लेकर व्यक्ति के विकास की दिशाएँ निर्दिष्ट की जाती थीं ।

उपनिषद्कालीन व्यक्ति चेतना विभिन्न आधारों पर विकसित होती हुई दिखाई देती हैं । उपनिषदों ने मानव के अस्तित्व का विकास किया और व्यक्ति अनेक प्रकार के सवालों में उलझ गया । उनका जवाब उसे आज तक नहीं मिल पा रहा है । आत्म-ब्रह्म, पुरुष-प्रजापति को एक ही सृष्टि नियामक के अनेक रूप मानकर "अहं ब्रह्मास्मि" की भावना प्रत्येक व्यक्ति में जागृत की गयी । इस काल में आध्यात्मिक स्तर पर व्यक्ति-चेतना अन्तर्मुखी रही, उसका लक्ष्य रहा मुक्ति । नैतिक नियमों के अन्दर रहते हुए व्यक्ति व्यक्तिगत कमज़ोरियों से मुक्ति पाना चाहता रहा है । धर्म और अर्थ के संदर्भ में व्यक्ति-चेतना स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित न होकर समाज का ही अंश बनी रही । संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपनिषद्कालीन व्यक्ति चेतना आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक सामाजिक और मानसिक धरातलों पर विकसित तो हुई, मगर स्वतंत्र इकाई के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकी । गीता ने व्यक्ति के हृदय में

निष्काम कर्म की भावना को जगाया । गीता के चिंतन ने मानव के संपूर्ण जीवन को हमेशा प्रभावित किया । इस चिंतन ने व्यक्ति चेतना को तीन आधारों पर प्रतिष्ठित किया । आध्यात्मिक, व्यवहारिक एवं मनोवैज्ञानिक । आध्यात्मिक स्तर पर गीता ने व्यक्ति-चेतना को स्थितप्रज्ञा का सिद्धांत दिया । व्यवहारिक आधार पर तो निष्काम कर्म योग का सिद्धांत दिया । व्यक्ति-चेतना का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन करने में गीता का उद्देश्य व्यक्ति के लिए सुखी, सामाजिक व्यक्तिगत तथा शांतिपूर्ण मार्ग की खोज रहा है । चार्वाक दर्शन ने व्यक्ति-चेतना में जीने तथा भविष्य का विचार न करने की नवीन दृष्टि विकसित की है । भारतीय दर्शन के बीच व्यक्ति-चेतना को सबसे ज़्यादा महत्व देनेवाला दर्शन चारवाक दर्शन है । चारवाक ने व्यक्ति को धार्मिक एवं नैतिक बन्धनों से मुक्त कर दिया । अपनी इच्छा के अनुसार जीने की छूट दे रही थी । और भौतिकता को सत्य मानते हुए व्यक्ति की स्वतंत्रता को सबसे ऊपर प्रतिष्ठित किया था । इस व्यक्ति चेतना की सीमा "मैं" पर आकर समाप्त होती है । और सामाजिक मान-मर्यादाओं का महत्व कम है ।

जैन तथा बौद्ध धर्मों ने व्यक्ति-चेतना को आध्यात्मिक; सामाजिक और व्यावहारिक क्षेत्र में व्यापकता प्रदान की ।

बुद्ध ने इच्छाओं का विरोध करते हुए जीवन का मार्ग प्रस्तुत करना चाहा जो अपने आप में एक विरोध बन गया ।

मध्यकाल में व्यक्ति-चेतना सही मायनों में विकसित नहीं हो पायी । भक्ति की चार दीवारों के भीतर कैद होकर व्यक्ति अपनी मुक्ति को तलाश करने के लिए विवश हो रहा था । यह भक्ति भौतिक जीवन से न जुड़कर

आध्यात्मिक जीवन से जुड़ी हुई है । मध्यकाल के विचारकों ने भौतिकता से दूर ले जाकर आध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूने का सन्देश दिया था । दूसरे शब्दों में मध्यकाल में व्यक्ति-चेतना का स्वरूप समाजबद्ध होकर आध्यात्म सीमाओं से बन्द हो जाता था । स्पष्टतः मध्यकाल स्वतंत्र व्यक्तिवादी चेतना के विकास के लिए अनुकूल नहीं था ।

आगे चलकर बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारतीय चिंतन पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ा । इससे व्यक्ति-चेतना एक नये रूप में हमारे सामने उपस्थित होने लगी । नारी को भी पुरुष के बराबर स्थान दिये जाने लगा । राजाराम मोहनराई ब्रह्म समाज को लेकर हमारे सम्मुख आये थे । उन्होंने व्यक्ति को नयी दृष्टि प्रदान की । इसके पश्चात् तिलक तथा दयानन्द सरस्वती का आगमन हुआ । तिलक ने "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है" का नारा दिया । इनके प्रयासों के परिणाम स्वरूप व्यक्ति-चेतना अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई । स्वामी दयानन्द ने व्यक्ति-चेतना में और भी सुधार एवं विकास किया । अरविन्द ने व्यक्ति-चेतना को अतिमानव तथा अतिमानव की कल्पना से युक्त किया । गाँधीजी ने बुनियादी शिक्षा को महत्व प्रदान कर व्यक्ति को स्वावलंबी बनाने का प्रयत्न किया । साथ ही स्त्री-शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया । इनके अतिरिक्त मदन मोहन मालवीय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, राधाकृष्ण आदि ने भी व्यक्ति-चेतना को प्रभावित किया ।

साहित्य और व्यक्तिवादी चेतना

साहित्य और व्यक्ति का घनिष्ठ संबंध है । व्यक्ति का चित्रण संपूर्ण साहित्य में प्राचीन युग से आज तक हो रहा है । व्यक्ति में सभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं । इन प्रवृत्तियों के आधार पर ही वीर

काव्य, संत काव्य, रीति काव्य आदि रचे गये । साहित्य रचना का आधार ही व्यक्ति है । वह व्यक्ति, जिसमें चेतना है, समय-समय पर अपने परिवेश के प्रति प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है । उन्हीं प्रतिक्रियाओं का चित्रण साहित्य में किया जाता है । समाज के सन्दर्भ में तो व्यक्ति हित की चर्चा पहले पश्चिमी राष्ट्रों में हुई । इसलिए व्यक्ति चेतना सर्वप्रथम पश्चिमी साहित्य में देखी जा सकती है । पश्चिमी साहित्य का प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पडा जो कि यहाँ के आधुनिक साहित्य में व्यक्ति चेतना के अंकन में देखा जा सकता है ।

साहित्य में व्यक्ति-चेतना का विकास मूलत: द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के साहित्य की विशेषता है । समसामयिक विश्व साहित्य को देखने से पता चलता है कि परंपरागत जीवन मूल्यों को प्रकट करनेवाले साहित्य में आज की चेतना को प्रभावित करने की शक्ति नहीं है । परिणाम स्वरूप पूर्व न पश्चिम में एक ऐसी पीढ़ी उभरकर आ रही है जो प्राचीन ज्ञान व परंपरा को सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखती है । इस पीढ़ी ने शाश्वत जीवन मूल्य व आदर्शपरक साहित्य रचना की प्रवृत्तियों को नकार दिया है । परिणाम स्वरूप नयी व पुरानी पीढ़ी के सोचने-विचारने के ढंग में मूलभूत अंतर आ गया है । दो विश्वयुद्ध के पश्चात् व्यक्ति अपने अस्तित्व के प्रति इतना चिंतित है कि तीसरे विश्व युद्ध की कल्पना मात्र ही उसे भयभीत कर देती है । इसी कारण अस्तित्ववाद, क्षणवाद, अतियथार्थवाद आदि में विक्षुब्ध व्यक्ति-चेतना अपने मानस को संतुलित रखने का आधार ढूँढ रही है । स्वतंत्रता एवं संपन्नता के परिणाम स्वरूप व्यक्ति-चेतना में केन्द्रित हो गयी है ।

पाश्चात्य साहित्य और व्यक्तिवाद

नवोद्धान के युग से लेकर व्यक्ति के स्वर या व्यक्ति महिमा की ओर प्रतिभावान साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट होने लगे थे । प्राचीन

ग्रीक और रोमन साहित्य के परिचय और संपर्क का ग्रीक और यूरोपीय साहित्य पर स्थाई प्रभाव पडा था । ग्रीक त्रासदीय नाटकों में व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता और व्यक्ति की त्रासदी का तत्व उपलब्ध होता है । इन ग्रीक त्रासदियों में व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्ति की निस्सहायता का धुंधला संकेत उपलब्ध होता है । सोफोक्लीस, युरिपिडिस आदि नाटककारों ने भी अपने दुःखान्त नाटक में व्यक्ति के प्रति निस्सहाय होकर दुःख में निमग्न होनेवाली व्यक्ति केन्द्रित पात्रों को प्रस्तुत किया था । मध्ययुग के सामन्तवादी साहित्य में अधिकांश रूप में सामाजिकता की भावना ही शक्तिशाली है । परन्तु परंपराओं के विरुद्ध व्यक्ति की विद्रोह भावना भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है । नवोत्थान के काल में समूचे यूरोपीय साहित्य में स्वतंत्रता का उल्लेखन करते हुए शेक्सपीयर और मारलोव ने नयी और स्वतंत्र उद्भावनाओं का परिचय दिया । शेक्सपीयर ने प्रथमतः चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य को प्रतिष्ठित किया । शेक्सपीयर के पात्र पूर्ण व्यक्तित्व संपन्न है । उनकी त्रासदियों के अमर पात्र हैमलेट, ओथलो, माक्बेथ, इयागो आदि पूर्ण रूपेण व्यक्ति-वैचित्र्य से रूपायित पात्र है ।

जॉन मिल्टन ने अपना अमर महाकाव्य 'पारडैस लोस्ट' में वैयक्तिक अधिकार और स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संग्राम करनेवाले पात्र के रूप में "सेयटन" का चरित्र रूपायित किया है । सेयटन के विचारों और व्यक्तिपूर्वक तर्कों में जन स्वातंत्र्य और मौलिक मानवीय स्वातंत्र्य के सिद्धांतों का अंकुर देखा जा सकता है । क्रिस्टफर मारलोव ने भी अपने अनश्वर पात्र फारप्स में व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना भर दी है ।

इसके बाद आनेवाला रोमान्टिक आन्दोलन में भी व्यक्ति के स्वातंत्र्य को महत्व देने लगा । अतः समाज और साहित्य के इतिहास में

स्वच्छन्दतावाद ने व्यक्ति की अपराजय महानता का सुदृढ समर्थन किया । रोमांटिक भावना व्यक्ति के निजी अधिकारों का उद्घोषणा करती हैं, समष्टि के सामने सिर झुकाने के विरुद्ध व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है ।

इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी साहित्य को प्राण देनेवाली प्रधान शक्ति व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि मानी जा सकती है । इस दृष्टि से साहित्य में वैयक्तिक अनुभूतियों और आन्तरिक द्वन्द्वों को महत्व मिला है । आगे फ्रान्स, जर्मनी और इंग्लैंड के रोमान्टिक कवियों ने अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अपनी रोमांटिक कविताओं में व्यक्ति भावना को पूर्णतः भर दिया । व्यक्तिवादी होने के कारण रोमान्टिक कवि समाज और भीड़ से अलग होकर एकांतिकता और नीरवता में आश्रय लेते हैं । समाज की कठोर वास्तविकता से पलायन करके वे अपने निजी भावजगत् में अभय लेते हैं । अतः रोमांटिक कवि इस दृष्टि से पलायनवादी भी हैं । अंग्रेज़ी में ब्लाक, वेड्सवर्थ, कीट्स आदि कवियों ने व्यक्तिवाद को नये आयाम और सफल अभिव्यंजना प्रदान की है अंग्रेज़ी उपन्यास साहित्य में व्यक्तिवाद की पहली झलक डानियल डेफो के "रोबिनसन क्रूसो" में पायी जाती है । डेफो ने प्रस्तुत उपन्यास में व्यक्ति को स्वतंत्र सत्ता और व्यक्ति महिमा का निरूपण किया है । एक अकेले द्वीप में स्वतंत्र रहनेवाले व्यक्ति के अनुभवों का सजीव वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध होता है । लेकिन व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का पूरा प्रभाव यूरोप और इंग्लैंड में सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के उपन्यासों में अधिक दृष्टिगोचर होता है ।

सामाजिक नियम नीति और मान्यताएँ व्यक्ति की बलहीनताओं से लाभ उठाकर उसका गला कैसे घोंटती हैं । इसका प्रतिपादन करनेवाला श्रेष्ठ उपन्यासकार है थामसहार्डी । उनके उपन्यास व्यक्ति और

परिस्थिति के संघर्ष के उपन्यास हैं । टेस, जुड़ी आदि कृतियों में हार्डी ने रूढ़िवादी व परंपरावादी समाज के विरुद्ध संग्राम करनेवाले व्यक्ति की व्यथा को वाणी दी है । व्यक्ति जीवन को मार्मिकता से स्पर्श करनेवाला दूसरा उपन्यासकार है हेन्ट्री जेम्स ।

फ्रायड, एडलर, यूंग आदि मनोवैज्ञानिकों की उपलब्धियों ने व्यक्तिवादी जीवन बोध को नया आयाम प्रदान किया । बीसवीं शताब्दी के अधिकांश उपन्यासों पर इनका प्रभाव पडा है । जेम्स जोइस का चेतना प्रवाह सिद्धांत, सार्त्र का अस्तित्ववाद, बेतन का अतियथार्थवाद आदि के माध्यम से भी साहित्य के क्षेत्र में व्यक्ति और व्यक्ति-चेतना की अभिव्यक्ति की जा रही है । अस्तित्ववादियों ने साहित्य के अन्तर्गत निराशाओं एवं समस्याओं के मध्य मृत्यु का हर पल का सामना करनेवाले साहसी मानव की अनिश्वरवादी व्यक्ति-चेतना की सफल अभिव्यक्ति की है । अनेक समस्याओं के होते हुए भी व्यक्ति में घोर जिजीविषा है । वह मरना नहीं चाहता, मरेगा भी नहीं । इसलिए व्यक्ति-चेतना भी नहीं मर सकती । आज भी व्यक्ति एवं उसकी चेतना निरंतर विकासोन्मुख है ।

आधुनिक मनोविज्ञान की ऊर्जा की वजह से व्यक्ति जीवन के रहस्यपूर्ण और अतिसूक्ष्म अंशों पर लेखकों की दृष्टि पूर्वाधिक गहराई में प्रवेश करने लगी । सेक्स के विषय में भी परंपरावादी विश्वासों को छोडकर उपन्यासकारों ने नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टि का उपयोग किया । यौन संबंधी परंपरावादी दृष्टिकोणों पर आहत पहुँचाने में डी.एच.लोरेन्स के बेटे और प्रेमी (सन आंट लवर), कंगारू, लेडी चैटरलीस लवर आदि उपन्यास सफल हुए हैं । हेमिंग्वे ने "ओल्ड मैन आण्ड दि सी" द्वारा व्यक्ति के अदम्य साहस और अपराजेय मनोबल का उद्घाटन किया है । अंग्रेज़ी के व्यक्तिवादी उपन्यास साहित्य के

क्षेत्र में श्रीमती वेर्जिनिया वुल्फ का स्थान अनुपम है । मानव मन के रहस्यों को काव्यात्मक शैली में उद्घाटन करनेवाला प्रसिद्ध उपन्यास है टू दि लाईटहाउस, जेकब का कमर तरंगें आदि ।

स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में असंतोष, अस्वीकृति, व्यंग्य, विद्रोह, व्यथा, निराशा आदि प्रवृत्तियों के रूप में व्यक्ति चेतना का अंकन देखा जा सकता है । कितने ही अपने को परिवेश से अलग समझने के लिए कोशिश करे, उतना ही वह अपने परिवेश से अवश्य संबंधित रहता । आज के साहित्यकारों को अपने समाज और परिवार में घुटन और टूटन ही पर्याप्त मात्रा में मिलने के कारण इस की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता नाटक तथा कथा साहित्य में इसकी गवाही हम देख सकते हैं । चूँकि मानव जीवन में भावों की प्रधानता होती है इसलिए कविता में इसकी अभिव्यक्ति अपने प्रखर रूप में उपलब्ध है । अनास्था, विसंगति जन्य विद्रोह, निराशा से उत्पन्न मृत्यु-बोध, कुछ न कर पाने की स्थिति आदि प्रवृत्तियाँ इन कविताओं में विद्यमान है । जहाँ एक ओर व्यक्ति में इतनी आस्था है वहीं दूसरी ओर वह व्यवस्था के प्रति आक्रोश से जल रहा है । क्योंकि भ्रष्ट व्यवस्था ने व्यक्ति को आघात ही अधिक पहुँचाया जिससे उसके जीवन का प्रत्येक पहलू आक्रान्त रह गया ।

कविता

असंतोष, अनास्था, विद्रोह एवं निराशा आदि प्रवृत्तियाँ ही स्वातंत्र्योत्तर कविता का मूल स्वर नहीं है, बल्कि इन सब प्रवृत्तियों के विकास के कारण किसी बेहतर व्यवस्था के प्रति आकर्षण, उसके प्रति आस्था भी है । प्रचलित व्यवस्था के प्रति विद्रोह के माध्यम से उसकी यह आस्था व्यक्त हुई है ।

"व्यूह
संख्यातीत
दैत्याकार
हम फंसे जिनमें ।
किन्तु हैं सन्नद्ध
प्राण-पण से आज हैं कटिबद्ध
इनको तोड़ देंगे
धार अत्याचार की
हम मोड़ देंगे ।"[1]

इन पंक्तियों में भ्रष्टाचार, अत्याचार, अवसरवाद आदि के प्रति विद्रोह प्रकट किया है मगर उनके स्थान पर मानवीय गुणों को प्रतिष्ठा भी प्रस्तुत पंक्तियों में प्रमुखता पा रही है, यही है वह आस्था जो हमें अधिकतर स्वातंत्र्योत्तर कविता में उपलब्ध होती है । नवीन के प्रति व्यक्ति की इस आस्था की वजह है उसमें निर्माण की नयी संभावनाएँ अपनी आस्था के प्रति व्यक्ति को इतना मोह है कि वह जीवन में कितनी भी समस्याएँ आने पर उसे त्यागना नहीं चाहता, और अपनी आस्था के माध्यम से संपूर्ण परिवेश को प्रकाशमय करना चाहता है । आधुनिक व्यक्ति ने समाज, सरकार, आकांक्षा सभी के प्रति अनास्था व्यक्त करते हुए अपनी आस्था को ही प्रमुख स्वर दिया है ।

व्यवस्था के प्रति आक्रोश

जहाँ एक ओर व्यक्ति में इतनी आस्था है वहीं दूसरी ओर वह व्यवस्था के प्रति आक्रोश से जल रहा हैं क्योंकि भ्रष्ट व्यवस्था ने व्यक्ति

---

1. सुन्दरलाल कथूरिया - व्यूह में जूझता अभिमन्यु - पृ. 60

को आघात ही अधिक पहुँचाया जिससे उसके जीवन का प्रत्येक पहलू आक्रान्त रहा । व्यक्ति इस व्यवस्था को बदलने के लिए बेताब हो उठा है । इस बेताबी के प्रमाण है बच्चे, बच्चे में भ्रष्ट व्यवस्था को समूल उखाड़ फेंकने की आकांक्षा -

यहाँ तक कि बच्चे की वेभें भी उडती
तेज़ी में लहराती घूमती
मुन्ने की सलेट-पट्टी
एक-एक वस्तु या एक-एक प्राषाग्नि बम है,
ये परमास्त्र है, प्रक्षेपास्त्र है, यम है ।[1]

व्यवस्था के प्रति आक्रोश, उसको बदल देने की आकांक्षा व्यक्ति-सजगता का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है, एक अनिवार्य परिणति है । व्यवस्था के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति से भी भ्रष्ट व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया है, कोई नई सुधार नहीं हुआ है । इस संबंध में व्यक्ति को निराश ही होना पड़ा है, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में भी हो रहा है ।

विसंगतिजन्य विद्रोह

परिवेश में व्याप्त विसंगतियों ने व्यक्ति को पूर्ण सजग कर दिया । वह समझ गया कि आज आज़ादी के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है वह मात्र दिखावा है, छल है, अन्यथा आज़ादी ने उसके जीवन की किसी समस्या का समाधान नहीं किया -

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - अन्धेरे में - पृ. 385

अस मुहावरे से समझ गया हूँ
जो आज़ादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम
बदल रहा है ।

आज़ादी तो किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकी । व्यक्ति को अहसास हुआ कि वह सिर्फ कहने के लिए ही आज़ाद है, वास्तव में तो वह गुलाम है, भूख का भ्रष्ट व्यवस्था का । इस अहसास ने उसके विद्रोह को चिनगारी दी और वह आज़ादी को भी निरर्थक स्थापित करने लगा । जब व्यक्ति का विद्रोह भी कुछ न कर सका तो वह सिर्फ कुण्ठित होकर रह गया । इसी विद्रोह की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध दुष्यंतकुमार, राजकमल चौधरी, नरेश मेहता आदि की कविताओं में भी हुई है ।

कुछ न कर पाने की स्थिति

आक्रोश की अभिव्यक्ति निरर्थक रही, कुछ न कर पाने की स्थिति ने व्यक्ति में कुण्ठा और खीझ उत्पन्न कर दी । और यह भी व्यक्ति की समस्या का समाधान न कर सकी अपितु लक्ष्य सिद्धि में बाधक बन खडी हुई । उन्होंने व्यक्ति को किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में ला खडा किया -

"मेरा सिर गरम है,
इसलिए भस्म है ।
सपनों में चलता है आलोचन,
विचारों के चित्रों की अवलि में चिंतन

---

1. धूमिल - संसद से सड़क तक - पृ. 18

निजत्व माफ है बेचैन,
क्या करूँ, किससे कहूँ,
कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैनी ।"[1]

स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों ने व्यक्ति को उस स्थिति में ला खड़ा किया है जहाँ वह चाहते हुए भी कोई निर्णय नहीं ले पाता । उसकी यही विवशता उसे सालती है । फिर भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह संघर्ष करता है ।

अस्तित्व के लिए संघर्ष

इन परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए व्यक्ति संघर्ष करता रहा । व्यक्ति प्रत्येक स्थिति में अपने अस्तित्व को रक्षा करना चाहता है, उसके लिए चाहे उसे कुछ भी करना पड़े । यहाँ तक कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह दूसरों को मिटाना भी अनुचित नहीं समझा -

"मैं न मिटने के लिए
कुछ भी करने में न हिचकूँगा
जीना हो तो पहला धर्म है,
यानी अस्तित्व बनाये रखने को
सबका अस्तित्व मिटाना भी पड़े,
तो भी नहीं झिझकूँगा ।"[2]

निराशा से उत्पन्न मृत्युबोध

उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्ति अस्तित्व रक्षा के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं मगर जब उसका संपूर्ण संघर्ष असफल रहता है, तो उसका

---

1. मुक्तिबोध रचनावली - भाग दो - पृ. 364
2. बच्चन - दो चट्टानें (गैंडे की गवेषणा) - पृ. 75

अस्तित्व वेदना से भर उठता है और वह बेहद निराश हो जाता है । यह निराशा व्यक्ति के चिंतन को मृत्यु तक ले जाती है ।

विज्ञान की प्रगति परिवर्तित संवेदनाएँ

विज्ञान की उन्नति ने व्यक्ति की संवेदनाओं को ही बदल दिया है, जिससे उसकी वैचारिकता ही परिवर्तित हो गई है । आज व्यक्ति धर्म पर प्रश्नचिह्न लगा रहा है, उसके अन्तर में धर्म के प्रति अनास्था की प्रवृत्ति घर करती जा रही है । यहाँ तक कि आज व्यक्ति के मन में भी ईश्वर के प्रति आस्था नहीं पनपने देना चाहता है । आज प्रत्येक व्यक्ति ने ईश्वर को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए, अपनी रक्षा के लिए अपने अनुकूल गढ़ा है । आधुनिक कविता में व्यक्ति-चेतना को अभिव्यक्ति का एक माध्यम ईश्वर के प्रति अनास्था भी है । विज्ञान के विकास ने व्यक्ति को भौतिकता की ओर अग्रसर किया है । भौतिकता ने व्यक्ति को इतना प्रभावित किया कि वह प्रेम के आध्यात्मिक अर्थ के स्थान पर सिर्फ भौतिक अर्थ को ही ग्रहण कर रहा है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों ने व्यक्ति को प्रभावित किया है, विशेष रूप से वैज्ञानिक उन्नति एवं भ्रष्ट राजनैतिक व्यवस्था ने । अत: व्यक्ति के चिंतन की दिशा ही बदल गयी है, मूल्यों में परिवर्तन आ गया है । इसी कारण व्यक्ति चेतना में अनास्था, विद्रोह, खीझ, निराशा, व्यंग्य आदि प्रवृत्तियों ने विकास पाया । चूँकि व्यक्ति ही साहित्य का लक्ष्य है इसलिए साहित्य में भी यही प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

नाटक

साठोत्तर नाटककार भी उपर्युक्त विषमताओं से अछूता नहीं रह सका है । स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य की समर्थ परंपरा इसका प्रमाण है । भ्रष्ट व्यवस्था, स्वार्थ, नीति, पाखण्ड का बोलबाला आदि समस्त परिवेश में व्याप्त हो रहे थे, जिसमें जीने के लिए व्यक्ति अभिशप्त था । फिर भी वह उससे मुक्ति चाहता था । इस मुक्ति की चाह में व्यक्ति ने स्वीकृत मूल्यों, मान्यताओं का विरोध किया । फलत: वह समाज से कटने लगा । व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधों में कटुता व्याप्त हो गयी । कुल मिलाकर इस विरोध ने व्यक्ति को कुण्ठा के सिवाय कुछ नहीं दिया । नरेश मेहता की "खण्डित यात्राएँ", मन्नु भण्डारी के "बिना दीवारों के घर", मोहन राकेश के "आधे अधूरे" और "लहरों का राजहंस" आदि अनेक नाटक इसके उदाहरण हैं ।

दृश्यकाव्य होने के कारण नाटक व्यक्ति के जीवन से सीधा संबंध रखता है । इसलिए उसमें व्यक्ति के इस रूप का यथातथ्य चित्रण मिलता है । कहीं वह समाज से ठुकरा रहा है तो कहीं भ्रष्ट व्यवस्था से । कहीं गरीबी उसे तोड रही है तो कहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न होने से वह कुंठित हो रहा है । ये सभी बन्धन उसे विद्रोही बना रहे हैं । वह व्याकुल है । इन बन्धनों से मुक्त होने की अपने बनाये मार्ग पर चलने की -"मैं सब कुछ अस्वीकारा चाहता हूँ । मैं किसी आदर्श मूल्य, परंपरा को नहीं स्वीकारता । ये सब भुस भरे शेर है ।.... पापा अपना जोज़ो जी चुके हैं मैं इन विक्टोरियन युग की चोज़ों की लाशों को नहीं ढो सकता । मैं अपना मार्ग चाहता हूँ, मैं अपनी प्राप्ति चाहता हूँ ।[1]

व्यक्ति स्वयं अपने बनाये मार्ग पर ही चलना चाहता है क्योंकि तभी उसके व्यक्तित्व का विकास संभव है, उसकी प्रतिष्ठा संभव है ।

---

1. नरेश मेहता - खण्डित यात्राएँ - पृ. 34

इसके लिए वह कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं - "मैं टूटकर बिखर सकता हूँ अंकिल, मगर झुकूँगा नहीं बेबसी से समझौता करना मैं ने नहीं सीखा ।"[1]

व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं व्यक्ति-प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष आज व्यक्ति की रंग-रंग में बसा है । यहाँ तक कि आज नारी भी अपने अस्तित्व के प्रति अपनी स्वतंत्रता के प्रति सजग है । "बिना दीवारों के घर" की शोभा के कथन से इस तथ्य को पुष्टि होती है -"इस घर की चहारदीवारी के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्यक्तित्व है ।"[2]

सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी आज व्यक्ति का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है । वह धन को ही सबकुछ मानता है पैसा कमाने के लिए वह कुछ भी कर सकता है । फलतः उसके लिए दया, माया, ममता आदि मानवीय मूल्यों का कोई महत्व नहीं है । आज संबंधों का आधार भी अर्थ है । स्त्री भी उसी पुरुष को महत्व देती है जिसके पास पैसा हो । पैसे के अभाव में पति-पत्नी संबंधों में तनाव बना रहता है । अर्थाभाव के कारण प्रेमिका तो अपने प्रेमी को त्यागने से भी नहीं चूकती । इसी कारण "सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" की शीलवती अपने प्रेमी प्रतोष से विवाह नहीं करती । प्रतोष के कथन से इस तथ्य को पुष्टि होती है - हाँ तुम्हारे ब्याह के साथ जब जाना कि कहीं कोई आस्था, कोई विश्वास नहीं, कोई मूल्य, कोई सिद्धांत नहीं है, अगर कुछ है तो केवल मुद्रा.... व्यक्तिगत सुख की खोज तो बस फिर सारे मनोबल से जुड गया उसी के संग्रह में.... सुबह और दोपहर, अपराह्न और संध्या, रात और दिन केवल एक धुन,

---

1. विनोद रस्तोगी - बर्फ की मीनार - पृ. 55
2. मन्नु भण्डारी - बिना दीवारों का घर - पृ. 60

केवल एक चिंता, केवल एक लक्ष्य तब जाना कि अर्थ का अर्जन उतना कठिन नहीं है.... बस तन और मन का पूरा समर्पण चाहता है.... और इस तरह मैं मुद्रा राक्षस बन गया ।"[1]

स्पष्ट है कि आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति अर्थ को ही देवता समझ रहा है, प्रतिष्ठा का माध्यम समझ रहा है । और मानवीय मूल्य समझ रहा है और उसके उपार्जन में लगा है । समस्त संवेदनाएँ समाप्त होती जा रही है, समस्त संबंध टूटते जा रहे हैं । व्यक्ति सबसे कटकर अपने तक ही सीमित है । इसी प्रकार राजनैतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में भी व्यक्ति-चेतना अभिव्यक्ति पा रही है । राजनैतिक क्षेत्र में राजनेता अपने स्वार्थों की सिद्धि कर रहा है और व्यक्ति संघर्ष कर रहा है इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध । दूसरी ओर साहित्यिक क्षेत्र में व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा है ।

कथा साहित्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कथा क्षेत्र में भी नवीनता आया है । कथा साहित्य में उपलब्ध समकालीन बोध वर्तमान समस्त परिस्थितियों को अपने में समेटे हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् जिस जीवन का प्रारंभ हुआ उसका स्पष्ट रूप साठोत्तर कथा साहित्य में मिलता है । अर्थात् स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य समसामयिक जीवन की सही पहचान प्रस्तुत करता है । समाज में फैली अव्यवस्था और भ्रष्टाचार ने व्यक्ति के आक्रोश को तीव्रता प्रदान की है और व्यक्ति अपने आसपास के नारकीय वातावरण से घृणा करने लगा, उससे किसी भी प्रकार छुटकारा पाने के लिए संघर्ष करने लगा । इस संदर्भ में डा. लक्ष्मीकांत सिन्हा का कथन -"समाज से व्यक्ति लड़ रहा है और समाज

---

1. सुरेन्द्र वर्मा - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - पृ. 38

उसे मात्र कुण्ठा दे रहा है, आघात दे रहा है, उसे कुछ निर्णय नहीं कर लेने देता ।"[1] इस संघर्ष में प्राप्त कुण्ठा और निराशा ने व्यक्ति में विद्रोह का विकास किया । इस स्थिति में परंपरा का विद्रोह और आदर्शों का खण्डन व्यक्ति ने अपना लक्ष्य निर्धारित किया । यहाँ भी व्यक्ति के हाथ निराशा ही लगी फलतः उसमें अनास्था की प्रवृत्ति घर करती गयी । व्यक्ति अविश्वासी हो गया । इसके संबंधों में बदलाव आया और व्यक्ति स्वकेन्द्रित हो गयी । इस कारण व्यक्ति-चेतना में टूटन-अनास्था, भय, विश्वास, निराशा, निरीश्वरवादिता आदि नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा, चयन की स्वतंत्रता आदि प्रवृत्तियाँ विकसित हुई, जिनकी अभिव्यक्ति साठोत्तर कथा साहित्य में उपलब्ध है ।

ईश्वर के प्रति अनास्था का चरम रूप तो वहाँ दिखाई पडता है जहाँ वह ईश्वर को गालियाँ देने का भाव भी आया । लेकिन यह सोचकर रह गया कि संसार के अधिकांश लोगों को अब ईश्वर से कोई प्रयोजन नहीं है ।

इसी प्रकार गिरिराज किशोर की कहानियाँ "एक ईश्वर की मौत तथा पोली सड़क" में भी ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव व्यक्त हुआ है । "एक ईश्वर की मौत" कहानी का नायक हिन्दु अनाथालय छोड़कर आता है तो अधीक्षक उसको विदा देते हुए कहता है कि "ईश्वर तुम्हारी मदद करेंगे" । अधीक्षक को इसी बात ने उसे विश्वास दिलाया कि ईश्वर ही सब की रक्षा करता है परन्तु जीवन में ईश्वर ने कभी उसका साथ न दिया । जीवन में संघर्ष करता हुआ वह सिर्फ एक चपरासी बन सका, यह नौकरी भी छूट गयी । उसका विवाह तो उस लडकी से नहीं हुआ जो उसे पसंद थी । ऐसी स्थिति में वह ईश्वर के प्रति उपेक्षा भाव लिए मुस्कुरा पड़ा -"उस रोज़ फिर अधीक्षक की आवाज़ ईश्वर तुम्हारी मदद करेंगे, मेरे कानों में गूँजती रही । और बार बार

---

1. डा. लक्ष्मीकांत सिन्हा - हिन्दी उपन्यास साहित्य उद्भव और विकास - पृ. 447

मैं ने उस बात पर विश्वास करना चाहा परन्तु मैं उस पर हंस-भर सका । .....मेरे अन्दर जो बिना धर्म का एक ईश्वर था ।.... वह धीरे-धीरे मरता गया... और अब बिलकुल मर गया है ।"[1]

रामदरश मिश्र की कहानी में प्राचीन मूल्यों के प्रति तीव्र विद्रोह दिखाई पड़ता है । "मुक्ति" नामक कहानी में टाइपिस्ट पिता अपनी पुत्रियों का विवाह न कर आर्थिक स्तर पर संपन्नता प्राप्त करने, मकान बनाने आदि कार्यों के लिए उनसे नौकरी करवाता है । चन्दा नामक लड़की इसका विद्रोह कर किसी युवक के साथ घर से भाग जाती है । "तो एक व्यक्ति मशीन का पुर्जा बनने से बच गया... कथन के माध्यम से लड़की के भाग जाने का समर्थन करते हैं और नवीन मूल्यों की स्थापना के माध्यम से उसने व्यक्ति चेतना की अभिव्यक्ति की है ।

वर्तमान समय में रिश्तों से संबंधित दृष्टिकोण भी बदल गया है । आज व्यक्ति बहिन-भाई आदि शब्दों के संबंध मानने के लिए तैयार नहीं है । वह सदियों से चले आ रहे मानदण्ड स्वीकारने को तैयार नहीं । और संबंधों का आधार मन व विश्वास को मानता है । सुरेश सिन्हा ने अपनी कहानी "सीढ़ियों से उतरता सूरज" में संबंधों को इस प्रकार स्पष्ट किया है । शेखर ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा, वे भाई-बहिन नहीं है... संबंध तो मानने से..... वह मेरा भाई है शताब्दियों से चले आ रहे ये कोई मानदण्ड नहीं मानेंगे ।"[2]

अपनी स्वतंत्रता में किसी का भी हस्ताक्षेप व्यक्ति को स्वीकार नहीं क्योंकि इसे वह गुलामी समझता है । "समाज का हस्ताक्षेप किसी

---

1. गिरीराज किशोर - एक ईश्वर की मौत - पृ. 33
2. सुरेश सिन्हा (संकलन सारिका) - सीढ़ियों से उतरता सूरज - पृ. 75

प्रकार भी न होने दें अपने जीवन में । क्योंकि हस्ताक्षेप को मंज़ूर करना गुलामी की निशानी है, जो आज़ाद इनसान कभी मंज़ूर नहीं कर सकता ।"[1]

परंपरा का विद्रोह और नवीन के प्रति आस्था व्यक्ति-चेतना की प्रमुख प्रवृत्ति है । आज व्यक्ति निसंदेह होकर प्राचीन मूल्यों का विरोध कर रहा है क्योंकि भविष्य को बदलने के लिए वर्तमान का विद्रोह आवश्यक है । इसी संदर्भ में "टूटा टी सैट" उपन्यास के नायक अरूण का कथन "हमें ऐसा समाज बनाना है जो पुरानी व्यवस्था के पैर काट डाले ।"[2]

वैवाहिक संबंध जो प्राचीन काल से चला आ रहा है, जो हमारी संस्कृति का आदर्श है, उसके संबंध में भी आज मान्यताएँ परिवर्तित हो रही हैं । "जंकल के फूल", उपन्यास के नायक सुलक का कथन - हम अपने जाति के ढंग से विवाह नहीं करेंगे । अनबिहाए रहकर भी एक साथ रहेंगे ।[3]

व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए स्वतंत्रता को एक आवश्यक शर्त मानता है और स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है । अपनी स्वतंत्रता में कोई बाधा उसे स्वीकार नहीं यहाँ तक कि वह विवाह को भी एक बन्धन मानता है इसलिए उसका विचार है कि "बन्धन चाहे जैसा हो आखिर आदमी को बांध लेता है । तब आदमी दास बन जाता है बिक जाता है । परवशता बुरी चीज़ है..... चाहे वह आदमी को ब्याह करने से मिले या अपने देश पर पराये शासक के अधिकार कर लेने से ।"[4]

---

1. कुलभूषण (संकलन) - अंजु और राजीव - पृ. 318
2. भगवतीप्रसाद वाजपेयी - टूटा टी सैट - पृ. 23
3. राजेन्द्र अवस्थी - जंकल के फूल - पृ. 36
4. वही - पृ. 37

आज स्वतंत्रता व्यक्ति का प्रमुख मूल्य हो चुका है, उसमें किसी का भी हस्ताक्षेप अब उसे स्वीकार नहीं । यदि कोई संबंध उसकी स्वतंत्रता में बाधक बनता है तो वह उसको भी अस्वीकार कर देता है । व्यक्ति संबंधों का निर्वाह वहीं तक करता है जहाँ तक उसकी स्वतंत्रता में कोई बाधा उपस्थित न हो । वह अपने स्वतंत्र जीवन में परिवार यहाँ तक माता-पिता का हस्ताक्षेप भी स्वीकार नहीं करता ।

इतने पर भी यदि कोई व्यक्ति की स्वतंत्रता का मार्ग बाधित करता है तो उसका अन्दर विरोध और अस्वीकृति से भर उठता है । वह स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा बननेवाले व्यक्ति को कुछ नहीं समझता । नरेश मेहता के उपन्यास "डूबते मस्तूल" में इसका प्रतिपादन किया गया है ।

व्यक्ति स्वयं निर्णय लेता है क्योंकि इसके माध्यम से वह अपने अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करना चाहता है । इसलिए वह यह कभी नहीं चाहता कि लोग उसके अस्तित्व को नकारकर उसे अपनी स्वार्थ पूर्ति का साधन बनाये । इसी संबंध में "मुक्तिबोध" उपन्यास के सहाय का कथन -"यह सब जो है - अपना नहीं है । बेटे-बेटी दुनिया में अपनी तरह जियेंगे । जमाई लोग अपने बूते बढ़ेंगे । मैं सीढ़ी नहीं हूँ कि पैर रखकर मुझ पर चढ़ा जाये ।"[1] यहाँ स्पष्ट है कि अपने अस्तित्व की स्वार्थकता ही व्यक्ति का प्रमुख लक्ष्य है । उसके लिए वह कोई भी चुनौती स्वीकार कर सकता है । सहाय के मिनिस्टर के पद त्यागने के निर्णय पर उनकी पत्नी उन्हें चुनौती देती है, उस समय उनका कथन - विधान निर्मम होता है, विधाता भी निर्मम होता है । उनके तले हम सब को भी ममताहीन और दृढ़ होकर चलना है । व्यक्तित्व को किसी हालत में, किसी कीमत में नहीं दिया जा सकता ।"[2] स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व

---

1. जैनेन्द्र कुमार - मुक्तिबोध - पृ. 19
2. वही

को सार्थक करना चाहता है । इसलिए वह समूह में अपने स्व को समाहित करना नहीं चाहता ।

व्यक्ति चेतना की एक प्रमुख प्रवृत्ति ईश्वर के प्रति अनास्था है जो हमें साठोत्तर उपन्यास साहित्य के अधिकांश उपन्यासों में प्राप्त होती है । ईश्वर है या नहीं इसका व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । सच्चिदानन्द धूमकेतु के उपन्यास "माटी की महक" में मुखर्जी बाबू के कथन - आज के ज़माने में धर्म-कर्म सभी उठता जा रहा है । ईश्वर के नाम नहीं लेने में मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा समझ रहे हैं । भगवान के भक्तों को लोग ओछी निगाहों से देखते हैं ।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति ईश्वर को नहीं मानता और माननेवाले के प्रति भी मन में घृणा का भाव प्रकट करता है । यही नहीं व्यक्ति का ईश्वर के स्थान पर मनुष्य को महत्ता प्रदान करना उसकी ईश्वर के प्रति घोर अनास्था को सूचना देता है । अज्ञेय के अपने-अपने अजनबी में सेलमा की मृत्यु के पश्चात् योके का ईश्वर के प्रति घोर अनास्था तथा उपेक्षा तथा सेलमा से क्षमा माँगना इस तथ्य को पुष्टि करता है -"फिर भी क्षमा सेलमा से, ईश्वर से नहीं जो कि बीमार है गन्धाता है - मृत्यु गन्धी ईश्वर ।"[2] ईश्वर को मृत्यु गंधी मानना उसके प्रति अनास्था भाव प्रदर्शित करता है । उसी प्रकार मनहर चौहान के उपन्यास "सीमायें" में भी सलूजा को ईश्वर में विश्वास करना निरर्थक लगता है । और साठोत्तरी उपन्यास के अंतिम चरण में दिखायी पड़नेवाली कुछ प्रवृत्तियाँ यहाँ विशेष उल्लेखनीय है । व्यवस्था के प्रति चुनौती, मूल्यों का अस्वीकार, संबंधों का तिरस्कार आदि प्रवृत्तियाँ भी साठोत्तरी उपन्यासों में दृष्टिगत होती है । रमेश बक्षी कृत "जलता हुआ लावा" भगवतीप्रसाद वाजपेयी का "सपना बिक गया" गंगाप्रसाद विमल का "अपने से अलग" आदि उपन्यासों में इनका चित्रण प्राप्त होता है ।

---

1. सच्चिदानन्द धूमकेतु - माटी की महक - पृ. 42
2. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ. 111

निष्कर्ष

व्यक्तिवादी चेतना आधुनिक युग की देन है । इसमें व्यक्ति विरोधी रूढ़ मान्यताओं तथा धारणाओं का विरोध है । और उस विरोध को विचार एवं सृजन का आधार स्वीकार किया गया है । व्यक्तिवादी चेतना व्यक्ति को समाज में महत्व प्रदान करके उसे एक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करती है । आत्मनिष्ठता को व्यक्ति-चेतना की एक प्रमुख विशेषता स्वीकार की गयी है । इसलिए इससे प्रेरित साहित्य में व्यक्ति के मन का विश्लेषण अत्यधिक महत्व रखता है । आरंभिक युग के सोफिस्ट चिंतन में सर्वप्रथम व्यक्ति-चेतना के साफ लक्षण नज़र आये हैं । मध्ययुग में पाश्चात्य देशों में व्यक्ति-चेतना राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक धरातल पर विकसित होने लगी । पुनर्जागरण-काल में व्यक्ति-चेतना अपने व्यक्तित्व की खोज में लग गयी । इस खोज में उसने विज्ञान स्वतंत्रता, स्वावलंबन एवं अनुभव को आधार बनाया । आधुनिक युग तक आते-आते व्यक्ति-चेतना "मैं क्या हूँ ?" - प्रश्न का उत्तर खोजने लगी । डेकार्ते से लेकर सार्त्र तक के चिंतन ने व्यक्ति चेतना को दिशा प्रदान की । इस यात्रा में हेडगर, कीर्केगार्ड, कामू, काफ्का वैसे पाश्चात्य चिंतक और लेखकों ने बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । सार्त्र ने आधुनिक युग में व्यक्ति-चेतना को यह अहसास कराया कि व्यक्ति ही सर्वोपरि है और उसी का अस्तित्व सत्य है । इस प्रकार पाश्चात्य चिंतकों ने व्यक्ति-चेतना को एक वैज्ञानिक धरातल प्रदान किया ।

भारत में वैदिक चिंतन के पहले भी द्रविड, यक्ष, किन्नर, आग्नेय, गंधर्व, देव आदि जातियों में यह चिंतन प्राकृत रूप में विद्यमान था । वैदिक युग के आशावादी दृष्टिकोण ने व्यक्ति-चेतना का सामूहिक विकास किया । उस काल में विचार एवं कर्म में व्यक्ति स्वतंत्र था, परन्तु परहित को

लेकर व्यक्ति के विकास की दिशाएँ निर्दिष्ट की जाती थी । अत: व्यक्ति-चेतना का रूप भौतिक न होकर आध्यात्मिक था । फिर गीता के चिंतन ने व्यक्ति चेतना को तीन आधारों पर प्रतिष्ठित किया - आध्यात्मिक, व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक । चारवाक दर्शन ने व्यक्ति-चेतना में वर्तमान में जीने तथा भविष्य का विचार न करने की नवीन दृष्टि विकसित की । मध्यकाल में व्यक्ति चेतना को दिशा ज्ञान कराने का महत्वपूर्ण प्रयास भी देखा जा सकता है । आधुनिक युग में व्यक्ति चेतना के स्वरूप पर सुधारवादी आन्दोलन, अंग्रेज़ी शिक्षा, तथा अरविन्द, टैगोर और महात्मागांधी के दर्शन आदि का प्रभाव स्पष्ट है । अंतत: हम इस समस्त विश्लेषण की वैज्ञानिकता को प्रकट करते हुए कह सकते हैं कि व्यक्ति-चेतना अपने वर्तमान रूप में दो प्रमुख आधारों पर प्रतिष्ठित है । समय सापेक्षिता व्यक्ति चेतना को प्रभावित करती आयी है । समय की बूँदों को ग्रहण करने की इच्छा मानवीय मानसिकता को हमेशा परिवर्तित करती रही है । व्यक्ति-चेतना का विकास और परिणाम की दिशाएँ इस बिन्दु से शुरू होती है और अनेक छोरों को छूने लगती है । वस्तुत: व्यक्तिवादी चेतना को सीमाबद्ध करना और उसकी विशिष्टताओं को रेखांकित करना इस कारण अधिक श्रमपूर्ण कार्य हो जाता है । संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक चेतना की जंजीरें जब व्यक्ति को जकडने लगती और तब उन्हें छोडकर स्वतंत्र होने की स्वाभाविक इच्छा और प्रतिक्रिया कालानुगत रूप में प्रकट होती रहती है । और इसलिए व्यक्ति-चेतना का अध्ययन परिवेश सापेक्ष है, काल सापेक्ष है, प्रतिक्रिया सापेक्ष है और परिवर्तन सापेक्ष है ।

व्यक्तिवादी चेतना की अभिव्यक्ति विश्व भर के साहित्य में हुई है । हिन्दी साहित्य में इसकी खूब अभिव्यक्ति मिलती है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता, नाटक, कथा साहित्य में इसकी बानगियाँ हमें मिलती हैं ।

अध्याय दो

अज्ञेय की रचना धर्मिता उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी क्षेत्र को अपनी सीमा के बाहर सर्वाधिक चर्चित रचनाकार हैं अज्ञेय । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी मौलिक प्रतिभा की प्रखरता का परिचय दिया है । वे मूलत: कवि हैं । उनकी कविताएँ अपनी मौलिकता की उत्तम गवाही हैं । उनकी कविताओं की ख्याति केवल हिन्दी भाषियों में सीमित नहीं है । इसलिए वे हिन्दी के बाह्य जगत में भी चर्चित रहे हैं । कविता के साथ-साथ उपन्यास, कहानी, आलोचना, निबन्ध, यात्रा-विवरण,नाटक आदि विधाओं में अपनी कलम सफलतापूर्वक चलाई है । यद्यपि स्वयं अज्ञेय ने अपने को सबसे पहले कवि के रूप में देखा और उपन्यासकार के रूप में बाद में, फिर भी उनकी रचना क्षमता का पहला अंकुर अपनी तीक्ष्णता के साथ "शेखर एक जीवनी" के शेखर के माध्यम से हुआ । प्रस्तुत उपन्यास के दो भाग प्रकाशित हुए हैं और जिसका प्रस्तावित तीसरा भाग प्रकाशित नहीं किया गया है । उपन्यास के क्षेत्र में "नदी के द्वीप" उनके दूसरा कदम था । और "अपने अपने अजनबी" के साथ उनकी औपन्यासिक यात्रा समाप्त होती है । फिर कविता के क्षेत्र में उनके बढते रहने के बावजूद उनके उपन्यासों की सान्दर्भिकता और रचनागत प्रासंगिकता कभी भी नष्ट नहीं हुई । शेखर के विभिन्न पक्षों पर आलोचकों ने अपनी असहमति प्रकट की है । पर उनकी समग्रता और केन्द्रीकरण ने हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा दी । "नदी के द्वीप" की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । सच तो यह है कि अज्ञेय के उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास के लिए आधुनिक भावबोध का नया संस्कार प्रदान किया ।

अज्ञेय के उपन्यास सामान्य परिचय

अज्ञेय के उपन्यास "शेखर एक जीवनी", "नदी के द्वीप", "अपने अपने अजनबी" हिन्दी के कुछ नयी रचनायें मात्र नहीं हैं, वे आधुनिकता

की परिचायक कृतियाँ भी हैं । ये उपन्यास एक सफल यात्रा की परिणति है । इनमें जीवन संघर्ष का एक अनूठा परिदृश्य मिलता है । यह सही है कि वह वाद-विवाद से मुक्त नहीं है । उन पर अति कठोर आघात हुए हैं । अनगिनत आघातों के बावजूद उनके उपन्यासों में उपलब्ध व्यक्ति का नैतिक द्वन्द्व विस्फोटक एहसास देता है । यह द्वन्द्व औपन्यासिक पात्रों के जीवन दर्शन से उपजा हुआ नहीं है । और यह द्वन्द्व समय के हर मोड़ पर चलता रहा है । और हमारी सांस्कृतिक दृष्टि को स्थापित करने में साथ देता रहा है । व्यक्ति और समाज के इस नैतिक द्वन्द्व को अज्ञेय ने अपनी औपन्यासिक यात्रा का पाथेय बनाया है ।

उन्होंने अपने उपन्यासों में भारतीय चिंतन की यथार्थ वस्तुनिष्ठ अस्तित्वमूलक विशेषताओं को मनोवैज्ञानिक कसौटी में कसक कर स्थापित करने का पूरा प्रयत्न किया है । तद्युगीन हिन्दी उपन्यास की परंपरा से हठकर नये भावबोध, चिंतन, दर्शन और शैली से उन्होंने हिन्दी उपन्यास को जोडा है । सामाजिकता के स्थान पर वैयक्तिकता को उपन्यास की एक विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप में उन्होंने स्थापित किया है । विराट और उदात्त सत्यों की अपेक्षा अनुभूत जीवन सत्यों का सृजनात्मक विश्लेषण उनके उपन्यासों का मूल तत्व है । वे बाह्य सत्यों के चितेरे नहीं थे अंत:सत्यों के बारीक विश्लेषण में उनको रुचि थी । पात्रों के विराट व्यक्तित्व को उन्होंने उजागर नहीं किया । क्षणवाद, खंडित व्यक्तित्व और लघुमानव की खूबियाँ उनके उपन्यासों में दृष्टव्य हैं । निरंतर अन्वेषण की त्वरा उनके उपन्यासों की मूल प्रवृत्ति बन गयी । तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य का पूरा समर्थन उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

"शेखर एक जीवनी" हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । अज्ञेय के कवि व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के पहले उनके उपन्यासकार व्यक्तित्व को

प्रसिद्धि हो गयी थी । इसका प्रेरक तत्व "शेखर" का प्रकाशन है । सन् 1941 में "शेखर" का पहला भाग प्रकाशित हुआ । और दो वर्ष बाद उनसे संपादित तारसप्तक का भी प्रकाशन अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना थी । और उसकी अपनी विशिष्टतायें भी हैं । लेकिन तारसप्तक ने अपने प्रकाशन के समय ऐसा कोई प्रभाव नहीं छोडा । लेकिन शेखर एक जीवनी की बात ऐसी नहीं है । प्रेमचन्द के "गोदान" के बाद हिन्दी में ऐसा कोई महत्वपूर्ण उपन्यास नहीं प्रकाशित हुआ था । और शेखर ने प्रथमत: एक नयी औपन्यासिक अभिरुचि की माँग की ।

"शेखर एक जीवनी" की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है कि - "शेखर एक जीवनी" जो मेरे दस वर्ष के परिश्रम का फल है - दस वर्षों में अभी कुछ देर है, लेकिन जीवनी भी तो अभी पूरी नहीं हुई । घनीभूत वेदना को केवल एक रात में देखे हुए विशन को शब्द-बद्ध करने का प्रयास है ।"[1]

उस रात के बारे में अज्ञेय ने यों कहा है कि जब आधी रात को डाकुओं की तरह आकर पुलिस अज्ञेय को बन्दी बना ले गयी । और उसके तत्काल बाद पुलिस के उच्च अधिकारियों से उनकी बातचीत, फिर कहा - सुनी और थोडी सी मार पीट भी हो गयी । तब उनको ऐसा लगा कि उनके जीवन के इति शीघ्र होनेवाली है । फाँसी का पात्र वह अपने को नहीं समझता था, लेकिन उस समय की परिस्थिति और उनकी मनस्थिति के कारण यह उनको असंभव नहीं लगा, बल्कि उनको दृढविश्वास था कि यही भविष्य उनके सामने हैं । अज्ञेय ने कहा कि -"घोर यातना व्यक्ति को दृढ बना देती है और घोर निराशा

---

1. अज्ञेय - शेखर: एक जीवनी - भूमिका - पृष्ठ

उसे अनासक्त बनाकर दृष्टा देने के लिए तैयार करती है । मेरी स्थिति मानो भावानुभवों के घेर से बाहर निकलकर एक समस्या रूप में मेरे सामने आयी - अगर यही मेरे जीवन का अंत है तो उस जीवन का मेल क्या है ? अर्थ क्या है ? स्थिति क्या है ? व्यक्ति के लिए, समाज के लिए, मानव के लिए ।"[1]

इस जिज्ञासा की अनासक्त निर्माता के और यातना की मर्मभेदी दृष्टि के आगे उनका जीवन धीरे-धीरे खुलने लगा, एक निजी और अप्रासंगिक विसंगति के रूप में नहीं एक घटना के रूप में, एक सामाजिक तथ्य के रूप में और धीरे-धीरे कार्य कारण परंपरा के सूत्र उलझ-सुलझ कर हाथ में आने लगे । पौ फटने तक सारा चित्र बदल गया । बहुत से सूत्र उनके हाथ में थे, लेकिन देह जैसे झर गयी थी, धुल हो गयी थी । थक कर किन्तु शांति पाकर वह सो गया और दो तीन दिन तक सोया रहा । उसके बाद महीना भर तक कुछ नहीं हुआ । एक मास बाद जब वह लाहौर किले से अमृतसर जेल लाये गये, तब उन्होंने चार-पाँच दिन में उस रात में समझे हुए जीवन के अर्थ और उसकी तर्क संगति को लिख डाला । पेन्सिल से लिखे गये वे तीन एक सौ पन्ने शेखर एक जीवनी की नींव है । उसके बाद नौ वर्ष से अधिक उन्होंने उस प्राण दीप्ति को एक शरीर दे देने में लगाया था । अज्ञेय ने स्पष्ट कहा है कि "उसी को शरीर देने के लिए की वैसी intensity तीव्रता केवल कल्पना के सहारे नहीं मिल सकती, वह जीवन में ही मिल जाय, तो कल्पना से उसे संयत ही किया जा सकता है । पूर्व पर का जमा ही पहचाना जा सकता है ।"[2]

"शेखर एक जीवनी" का ऐतिहासिक, तथा रचनात्मक महत्व बराबर है । अज्ञेय का हिन्दी साहित्य में आगमन एक बौद्धिक रचनाकार

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - भूमिका पृष्ठ
2. वही

के रूप में हुआ । कविता हो, उपन्यास हो, या कहानी छायावादी रोमानी मानसिकता से पूर्ण रूप से मुक्त न होते हुए भी अज्ञेय ने ही सबसे पहले बौद्धिक रुझान का सही परिचय दिया है । परवर्ती युग में आधुनिकता की चर्चा हुई जिसका सही स्पन्दन अज्ञेय की रचनाओं में मिला । फिर उपन्यास की ओर ध्यान देते समय हमें एक और बात का परिचय मिल जाता है । प्रेमचन्द के बाद यद्यपि यथार्थवादी युग का समापन तो नहीं हुआ, फिर भी हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में व्यक्तिवादी धारा का प्रवृत्तन अज्ञेय के उपन्यासों के द्वारा हुआ, जिसका पहला कदम शेखर ही है ।

"नदी के द्वीप" अज्ञेय का दूसरा उपन्यास है । इसका प्रकाशन 1951 में हुआ । हिन्दी उपन्यास के इतिहास में प्रस्तुत रचना का महत्वपूर्ण स्थान है । "नदी के द्वीप" के प्रकाशन के समय अज्ञेय का व्यक्तित्व हिन्दी पाठकों के लिए परिचित और स्वीकृत हो चुका था । "शेखर एक जीवनी" के बाद प्रकाशित उपन्यास होने के कारण एक स्वाभाविक तत्परता बनी रही थी । "शेखर एक जीवनी" से बढ़कर यह रचना चर्चित तो हुई । पर आस्वादन का तौर-तरीका उपन्यास की वांछित स्थिति के अनुकूल न रहा । नदी के द्वीप में आन्तरिक संघर्ष को प्रमुख रूप से चर्चित करने का प्रयास किया है । आगे के युग की रचनाओं की दृष्टि को रूपायित करने में, दिशा देने में उस संघर्ष का योगदान रहा है ।

पूर्व आधुनिकता युग के उपन्यासों में जीवन की सपाटता का वर्णन है । मानवीय संबंधों के सामाजिक सन्दर्भ को महत्व देने की प्रथा वहाँ देखी जा सकती है । सर्वमान्य/सर्वस्वीकृत तथ्य प्रधान रचनाओं की स्वाभाविकता को कसौटी पर प्रस्तुत करने का आग्रह लेखकों में अवश्य रहा है ।

सार्वजनिक स्तर पर अनुभूत विषयों की प्रासंगिकता पर पूर्व आधुनिकता युगीन उपन्यास का ढाँचा स्वरूपित है । पर आधुनिक युग में यह ढाँचा शिथिल होने लगा । इसके कई कारण हो सकते हैं । आधुनिक उपन्यासों में वैचारिकता का गहरा प्रभाव है । आधुनिक उपन्यास का नैतिक बल इतना संकोर्ण है कि उसकी रचनात्मक सत्ता ने आधुनिक वैचारिकताओं में से काफी बातें आत्मसात की हैं । सदियों से स्वीकृत मान्यताओं के स्थान पर नयी मान्यताओं ने स्थान ग्रहण किया । इन सब का चित्र "नदी के द्वीप" में देखा जा सकता है ।

"अपने-अपने अजनबी" अज्ञेय का तीसरा और अंतिम उपन्यास है । इसका प्रकाशन 1961 में हुआ । यह एक लघु उपन्यास है । अन्य दोनों उपन्यासों की तुलना में इसकी कई विशिष्टताएँ हैं । अनेक विशिष्टताओं के बावजूद यह उपन्यास उस हद तक चर्चित नहीं हुआ जिस सीमा तक उनके अन्य दो उपन्यास चर्चित हुए हैं । जिन जिन कारणों से शेखर तथा नदी के द्वीप हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण मोड सिद्ध हुए उससे बढकर प्रस्तुत उपन्यास का महत्व है । लेकिन वह रेखांकित नहीं हो पाया है । यह देखा जा सकता है कि अज्ञेय ने शेखर तथा नदी के द्वीप के लिए ऐसा एक रचना पटल तैयार किया जिसमें समकालीन जीवन के उतार चढाव की सूक्ष्म रेखाएँ हैं । अपने-अपने अजनबी उस दृष्टि से उसका और एक विस्तार है । व्यक्ति जीवन की असंख्य संभावनाओं सामाजिक नैतिकता के संदर्भ में परखते हुए अन्ततः व्यक्ति की नैतिकता को शेखर में महत्व दिया गया है । वहीं प्रश्न एक अन्य कोण से नदी के द्वीप में उठाया गया है । मगर अपने-अपने अजनबी में उठाया गया सवाल नैतिक न होकर दार्शनिक है ।

दर असल हिन्दी में इस प्रकार के उपन्यास लिखे नहीं गये हैं । सामाजिक यथार्थवाद का वातावरण हिन्दी उपन्यास में बराबर रहा है ।

स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यक्ति मन के विभिन्न परतों को अनावृत करने का कार्य उपन्यास में प्राप्त होने लगा है । इस दौरान जीवन को कुछ अनिर्णयात्मक स्थितियों का स्पर्श कुछ उपन्यासकारों ने किया है । मोहन राकेश का उपन्यास "न आनेवाला कल", निर्मल वर्मा के "वे दिन", रमेश बक्षी के "अठारह सूरज के पौधे", गंगाप्रसाद विमल के "अपने से अलग" आदि । इन उपन्यासों की तुलना में अपने-अपने अजनबी का स्थान विशिष्ट बनता है । उपन्यास की कथा एक वास्तविक घटना पर आधारित है । अज्ञेय अपने पुराने मित्र मार्टिन आलवुड के निमंत्रण पर स्वीडन में रहे और वहाँ लैपलैंड में बर्फ में यात्रा करते-करते एक भटके भी । इसी यात्रा के आस-पास स्वीडी लेखिका सारा लोडमैन ने बर्फ में कैद हो जाने की एक वास्तविक घटना को बात सुनाई थी और बतलाने की चेष्टा की थी कि ऐसी परिस्थिति की अन्तिम परिणति असहिष्णुता में होनी अनिवार्य है । पर अज्ञेय को लगा कि यही भारतीय दृष्टि भिन्न है, जो पीडा और पीडा के भोग को एक नहीं मानती । केवल पीडा होना पीडा का भोग नहीं है और पीडा का भोग करते हुए पीडा की प्रतीति अनिवार्य भी नहीं है । असहिष्णुता दोनों के तादात्म्य से ही उत्पन्न हो सकतो है । इसी यात्रा ने "इन्द्रधनु रौंदे हुए थे", "अपने-अपने अजनबी", "एक बूँद सहसा उछली" को प्रेरणा दी । मृत्यु के सम्मुख पडे दो अजनबियों की कथा इस उपन्यास का आधार है । मृत्यु साक्षात्कार के प्रश्न को उन्होंने अपने कोण से लिया है । आत्यन्तिक दर्शन उनसे निरूपित पूर्वी दृष्टि की विशिष्टताओं के समीप ही है । परन्तु उपन्यास आद्यन्त उस वास्तविक घटना के अनुरूप अनुमानित और विकसित है । मृत्यु साक्षात्कार एवं अजनबीपन के सवाल को उठाने के कारण इस उपन्यास को अस्तित्ववादी उपन्यास भी घोषित किया गया है ।

अज्ञेय व्यक्तिगत जीवन की झाँकियाँ

कलाकार अपने जीवन में व्यक्ति सत्य को ही व्यापक सत्य के रूप में प्रकट करता है । इसलिए कलाकार के व्यक्तित्व का परिचय कला संसार को समझने में सहायक बनता है । मानव विवेक से संपन्न व्यक्तित्व कला सृजन के लिए आवश्यक है । अज्ञेय का सही महत्व उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्मिलित प्रभाव में है ।

अज्ञेय का जन्म पंजाब में जलंधर के निकट करतारपुर के सारस्वत ब्राह्मण कुल में सात मार्च 1911 ई. में हुआ था । अज्ञेय को बचपन में सचा के नाम से पुकारा जाता था । बाद में वे सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" के नाम से प्रसिद्ध हुए । ये सब शेखर के जन्म के प्रसंगों से मेल खाते हैं । शेखर के जन्म की बातें अज्ञेय ने अपने जीवन से चुनी हैं । पिता पं. हीरानन्द शास्त्री भारत के पुरातत्व विभाग के एक उच्च अधिकारी थे । वे संस्कृत के पुराने ढंग के पंडित थे । अपने देश, ब्राह्मणत्व, कुल, वर्ण और भाषा संबंध में वह बहुत स्वाभिमानी थे । वे कठोर अनुशासन प्रेमी थे । मानव के व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार का हाथ बहुत अधिक होता था । अज्ञेय के लिए यह बात और भी अधिक सच है । उन्होंने चौदह वर्ष की आयु तक का जीवन घर में ही अधिक बिताया था । पिता डा. हीरानन्द के नौकरी के कारण खुदायी के क्षेत्रीय कार्य में अधिक काल तक रहना पड़ता था । इसलिए अज्ञेय पर माँ का नियंत्रण अन्य बच्चों की अपेक्षा कुछ अधिक ही होता रहा । इसी कारण उनके मन माँ की अपेक्षा पिता की ओर अधिक झुका हुआ था । और विचार के क्षेत्र में पिता प्रेरणा के स्रोत बने । मनोविज्ञान की दृष्टि से पिता की ओर उन्मुख बालक अधिक असाधारण होते हैं । परिवार के इस प्रकार के वातावरण के कारण वे प्राय: अकेलापन के अनुभव करते रहे थे । निर्भयता और

किसी से कभी दान न लेने का व्रत - ये दो बातें अज्ञेय को अपने पिता से मिलो । "शेखर एक जीवनी" के 138-139 पृष्ठ पर शेखर के पिता का स्मृति-चित्र बडी सीमा तक अज्ञेय के पिता का प्रतिबिंब प्रतीत होता है । "मेरी कोई संतान कभी दान नहीं लेगी ।" इस भावना का अज्ञेय ने सदा आदर किया । जब जेल से छूटकर अज्ञेय ने सन् 1936 ई. में एक आश्रम खोलना चाहा और एक परिचित ने उस हेतु ज़मीन और उस पर बनी इमारत भी दे दी । तब पिता ने इस दान को लेने से रोक दिया । पिता उदार ईमानदार व्यक्ति थे। हैट को नकारनेवाले और अपने आप को साहब कहलाने के शौकीन थे । आवेश में वे आततायी थे पर क्रोध शांत होने पर अच्छे सखा के समान व्यवहार करते हैं । शेखर एक जीवनी में इन सबका असर दर्शाया गया है । माँ की विषय में अज्ञेय बहुत उदासी है । शेखर की माँ का व्यक्ति-चित्र अज्ञेय की माँ की प्रतिच्छाया हो सकती है ।

जीवन के प्रारंभिक दिनों में पारिवारिक वातावरण के कारण अज्ञेय अंतर्मुख होते चले गये । उनका व्यक्तित्व इतना अंतर्मुख रहा है कि उनको अपने बारे में बातें करना नापसंद था । जीवन के इस काल में उनको रिश्ते को अपनी सगी बहिनों का संपर्क प्राप्त रहा था । अज्ञेय के व्यक्तित्व के निर्माण में इन बहिनों का भी बडा योगदान है । अज्ञेय को सबसे अधिक प्रेम अपनी बडी बहिन से मिला जो उनसे आठ वर्ष बडी थी । यहाँ यह स्मरणीय है कि बडी बहिन सरस्वती शेखर से पाँच वर्ष बडी थी । अज्ञेय के दोनों बडे भाई ब्रह्मानंद और जीवानंद जो 1934 में दिवंगत हो गये थे, उनसे बडी प्रतिस्पर्धा रखते थे । छोटा भाई वत्सराज था जिसे वे बहुत प्यार करते थे पर वह भी 1934 ई. में चल बसा । उसी समय माँ की मृत्यु हुई थी । बचपन की एक घटना बतलाते हुए अज्ञेय ने लिखा है -"मैं जब कोई छः वर्ष का था तब भाईयों के लिए गर्म सूट बनवाये गये थे । फिटिंग को मैं मुग्ध भाव से देख रहा था, तब माँ ने

उस भाव को लुब्ध भाव समझकर कहा कि भाईयों को देख कर ईर्ष्या हुई होगी । ईर्ष्या का यह झूठा आरोप सुनकर अज्ञेय उस आयु में भी इतने दु:खी हुए कि स्वयं के लिए सूट बन जाने पर भी उस अन्याय की भावना को कभी नहीं भूले । भाईयों के साथ उन सूटों में फोटो खिंचवाया जो मृत्यु तक भी उनके पास था । पर माँ का वह झूठा आरोप, वह क्लेश, वह अन्याय वे मरते तक नहीं भूले थे । शेखर की माँ का चित्र भी लगभग इसी भांति देखा जा सकता है । अपने परिवार से अज्ञेय को यायावरी की प्रवृत्ति मिली, वन,पर्वतों और देहाती प्रदेशों में रहने के कारण आत्मनिर्भर और अन्तर्मुखी स्वभाव मिला । परिवार में प्रेम भी खूब था, पर प्रदर्शन कम होता था । शेखर के बारे में वह सौ फीसदी सही है ।

पिता के पुरातत्व विभाग की नौकरी के कारण उनका बाल्य-काल अनेक नगरों में व्यतीत हुआ । उनका बचपन 1911 से 1915 तक लखनऊ में तथा 1915 से 1919 तक जम्मु और काश्मीर में बीता । उन्नीस सौ उन्नीस में पिता के साथ नलंदा गये वहाँ पिता ने उनको हिन्दी सिखाना शुरू किया । औपचारिक शिक्षा का अवसर न मिले पर घर पर रहते साहित्य एवं धर्म ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन किया । घर पर ही उन्होंने पंडितों से रघुवंश, रामायण, हितोपदेश आदि पढ़ा तथा पादरी से अंग्रेज़ी की शिक्षा शुरू की थी । व्याकरण के पंडित से उन्हें अरुचि रही । सन् 1911 से 15 तक लखनऊ और 1915 से 1919 तक काश्मीर के श्रीनगर और जम्मु में अपने पिता के साथ अज्ञेय ने देशाटन किया । 1921 ई. पिता के साथ नालन्दा आ गये 1921 से 1925 तक उटकमंड और कोटागिरी में पिता के साथ रहे थे । 1921 में उडुपी के माधवाचार्य द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार हुआ । उसी मठ के पंडितों से छ: माह तक तमिल भाषा के माध्यम से संस्कृत पढ़ी और अन्य धर्म ग्रन्थों का भी अध्ययन किया । उटकमंड से तीन मील दूर पुनर्हिन नामक स्थान के एक बंगले में जहाँ प्रकृति के स्पन्दन भरे एकान्त के अतिरिक्त कोई भी नहीं था, वहाँ पर उपेन्द्रनाथ ठाकुर तथा

उनकी नव वर्गसम्प्रदाय की दिव्य परंपरा के चित्र एकत्र किए और उनके आलम्ब बनाये । "चिंता" की छठी कविता अज्ञेय की पहली रचना है । उन्हीं दिनों अज्ञेय ने उटकमंड और कोटागिरी में रहकर अंग्रेज़ी साहित्य का गहन अध्ययन किया । गोडुस्मित, टालस्टाय और विक्टर ह्यूगो आदि के उपन्यास पढ़े । टैनीसन की लययुक्त रचनाओं का गहरा प्रभाव उन पर पडा । गोरीचन्द्र, हीराचन्द और विश्वनाथन की रचनाओं के अतिरिक्त मीरा, तुलसी, सूर आदि का अध्ययन किया ।

घर के नियंत्रण में रहते हुए अज्ञेय का मन स्वातंत्र्य की खोज में विह्वल हो उठा । उनके साहित्य में स्वातंत्र्य को एक चरम मूल्य के रूप में उपस्थित किया गया है । पिता से प्राप्त वैचारिकता की प्रेरणा के कारण स्वातंत्र्य की खोज दायित्वबोध से समन्वित है । यह दायित्व बोध उनमें सबसे पहले अपने प्रति है । बाद में समाज के प्रति । स्वातंत्र्य की खोज अनिवार्यतः बन्धनों से विद्रोह के साथ जुडी है । अज्ञेय में यह विद्रोह जन्मजात है । अज्ञेय की विद्रोही भावना उनके जीवन में विविध रूपों में व्यक्त हुई है । जालियनवाला बाग हत्याकांड के आसपास ही उन्होंने अपनी माँ की साथ पंजाब की यात्रा की जिससे उनके भीतर अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के प्रति विरोध का बीजारोपण हुआ । उनकी विद्रोही भावना के कारण नौ वर्ष की आयु में घर आये हुए अतिथि डा.काशी प्रसाद जयसवाल के अंग्रेज़ी में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर हिन्दी में देना, इसी वर्ष घर में विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, मद्रास में इन्टर की कक्षाओं में पढ़ते समय लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में स्वयं सेवकों का नेतृत्व करना, इन्हीं दिनों नौजवान भारत सभा का सदस्य बनना, प्रयोगवाद का आन्दोलन चलाना आदि उनकी विद्रोही भावना की अभिव्यक्तियाँ है । उन्होंने कान्वेंट स्कूल के एक अंग्रेज़ी लड़के को मारा था । इन सभी क्रियाओं की झलक शेखर में देखी जा सकती है ।

अज्ञेय ने 1925 में पंजाब विश्वविद्यालय से प्राइवेट मेट्रिक पास की । उसके पश्चात् 1927 में क्रिश्चयन कालेज मद्रास से विज्ञान में इण्डर पास किया । वहाँ पर अज्ञेय ने गणित, भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र विषय लिया। अंग्रेज़ी के प्रोफेसर हैण्डरसन जिन्हें अज्ञेय ने अपनी त्रिशंकु पुस्तक समर्पित की है, साहित्य की अध्ययन की बड़ी प्रेरणा दी । यहाँ पर अज्ञेय ने "टैगोर अध्ययन मण्डल" की स्थापना की, रस्किन के सौन्दर्य-शास्त्र और अचार-शास्त्र का विशद अध्ययन किया तथा दक्षिण के विशिष्ट स्थानों और मंदिरों का भ्रमण भी किया । मद्रास में जातिगत वर्णगत, संप्रदायगत भेदों और छुआ-छुत के विरुद्ध एक तीव्र प्रतिक्रिया अज्ञेय के मन में पैदा हुई । 1919 में फोरमन क्रिश्चयन कालेज लाहौर में बी.एस.सी. पास की । इसी दौरान चन्द्रशेखर आज़ाद सुखदेव, भगवतचरण वोहरा जैसे प्रसिद्ध क्रांतिकारियों के संपर्क में आये । सन् 1929 में एम.ए. कर रहे थे और इसी वर्ष हिन्दुस्तान सोशिलिस्ट रिपब्लिकन दल से सम्बद्ध हो गये । वहाँ देवराज और बालकृष्ण जैसे क्रांतिकारी से मिले । परिणाम स्वरूप बीच में ही उनका अध्ययन रुक गया । कालेज में प्रोफसर जे.एम. बर्ने और ए.डी. डेनियल ने उन्हें प्रभावित किया । बर्नड ने धार्मिक तुलनात्मक अध्ययन को प्रेरणा दी और प्रोफसर डानियल ने ब्राउनिंग के साहित्य में रुचि पैदा कर दी ।

सन् 1929 ई. से 1936 तक अज्ञेय का जीवन क्रांतिकारी रहा । क्रांतिकारी दल के परचे तैयार करते और बाँटते थे । उन्होंने भगतसिंह को छुडाने का प्रयत्न किया । भगवतीचरण वोहरा एक दुर्घटना में शहीद हुए । दिल्ली में हिमालय ट्वायलेट्स फैक्टरी के कारखाने को कायम करने में अज्ञेय वैज्ञानिक सलाहकार थे । अज्ञेय 15 नवंबर 1930 को जब वह लाहौर में एम.ए. अंतिम वर्ष का अध्ययन कर रहे थे तब अमृतसर में शस्त्रों की मरम्मत का कारखाना कायम करने का प्रयास में देवराज और कमलकृष्ण के साथ गिरफ्तार हुए ।

अज्ञेय के बचपन में उनकी शिशु-मानस की ग्रन्थियों में आंतरिक संघर्ष परिचालित होता था । अज्ञेय के बचपन को ठीक से परख कर देखनी चाहिए । इसके लिए एकमात्र साधन शेखर का बचपन है । शेखर की जीवनी की कुछ घटनाएँ जो उसके शिशु मन को उद्घाटित करती हैं, मूलतः अज्ञेय के अपने मन का दर्पण बिम्ब है । अज्ञेय के व्यक्तित्व गठन का काल देश में राष्ट्रीय संग्राम का काल है । अज्ञेय के शिशु मन पर क्रांति की ओर उन्मुख देश का और उसमें भी विशेष रूप से आतंकवादी दल की प्रवृत्तियों का सीधा प्रभाव पड़ा ।

शेखर की चित्तवृत्तियों में विद्रोह का चित्रण है । अज्ञेय की आन्तरिक और जन्मजात विद्रोह गठन का ही स्वरूप है । यह विद्रोह ईश्वर से लेकर व्यक्ति, धर्म, समाज, वर्ग व्यवस्था, शासक, नेता, शिक्षा, भाषा, राजनीति, सामाजिक परंपराएँ, रूढ़ियाँ, माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री पुरुष आदि के संबंध में, लगभग हर क्षेत्र में व्यक्त हुआ है । अज्ञेय स्वयं के प्रति भी विद्रोही बन जाते हैं ।

शेखर के बहाने अज्ञेय की मानवीय दृष्टि का पता चलता है जो दलितों, पतितों, अछूतों और दीनों को आत्मशक्ति देती है और उनके उत्थान के लिए प्रेरणा प्रदान करती है । समाज के प्रति विद्रोह का यह भाव अज्ञेय के व्यक्तित्व का समर्थ अंश है । अज्ञेय का विश्वास है कि लोगों के पास जिन चीज़ों का उत्तर नहीं हो उनको वे ईश्वर पर छोड़ देते हैं । वैसे ईश्वर कुछ नहीं करता । मनुष्य ही सब कुछ करता है । उनके व्यक्तित्व में विज्ञान, वैज्ञानिक सत्य और सत्य है । ईश्वर के नाम पर कितने भ्रम, धोखे, अन्याय, अनाचार, झूठ और कृत्रिम आचरण समाज और व्यक्ति में फैले हुए हैं, जिन्हें अवश्य ही नकारना चाहिए । यह जर्जर और कुण्ठित मानदंडों का शेखर के

माध्यम से वे विद्रोह करते हैं । यहीं उनकी स्वतंत्र इकाई, स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास, स्वातंत्र्य की खोज और सांस्कृतिक जीवन की गतिशील प्रगति का पता चलता है ।

31 दिसंबर 1929 के लाहौर में जवहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुए राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में अज्ञेय ने स्वयं सेवक बनकर ड्रिल की ट्रेनिग ली और एक उत्तरदायी अधिकारी बनकर अनुशासन में हाथ बढ़ाया । इसी दौरान अमृतसर में शस्त्रों की मर्मत का कारखाना कायम करने के प्रस्ताव में देवराज और बालकृष्ण के साथ 15 नवंबर 1930 को अज्ञेय गिरफ्तार हो गये । एक महीने लाहौर फिर अमृतसर की हवालत में यातना भोगते हुए "आर्म्स आक्टवाले" मुकदमे में छुट गये । परन्तु 1931-1933 तक के समय के दौरान किये गये षड्यंत्र के कारण दिल्ली जेल की काल कोटरी में बन्द रहे । यहीं पर चिंता और शेखर: एक जीवनी लिखा । शेखर एक जीवनी में चित्रित मदनसिंह, मोहसिंह और रामजी आदि पात्र प्रकारांतर रूप से सत्य पात्र है । इसी जेल में शेखर ने जीवन में कई जो सूत्र सीखे वह सब अज्ञेय के अनुभव सत्यों के सूत्र है । शेखर एक जीवनी में लिखा है -"हर एक को अपना रास्ता खुद चुनना चाहिए ।"

मानवेन्द्र राय का अज्ञेय पर बडा बौद्धिक प्रभाव है । वे तटस्थता और निष्पक्षता को ठीक नहीं मानते थे । वे निरी अकर्मण्यता के विरोधी रहे हैं । वे युद्ध को बरबर मानते हैं । उसे अप्रीतिकर मानकर भी वे फासिस्टों के विरोध में भारत की रक्षा के लिए 1943 में सेना में भर्ती हो गयी । युद्ध में वे कोहिमा फ्रंट पर 1945 तक थे । इनका मुख्य काम फ्रेट के पिछले हिस्सों का मनोबल परखकर युद्ध के प्रतिरोध का वातावरण उत्पन्न करना था । 1942 में ही अज्ञेय ने फासिस्ट विरोधी आन्दोलन का आयोजन किया । इसी सम्मेलन के बाद एक प्रगतिशील लेखक संघ का अलग गुट गठ गया था । वे युद्ध को

गलत,पर सुरक्षात्मक युद्ध को अनिवार्य मानते थे । अज्ञेय की कई कहानियों तथा निबन्धों में बर्मा और असम की पार्श्व भूमि तथा संस्कृति के दर्शन की छाप द्रष्टव्य है ।

अज्ञेय एक अच्छे संपादक भी रहे । उन्होंने 1935 से 36 तक "सैनिक" (आगरा), "आरती" (पाटना), "बिजली" आदि का संपादन किया । 1937 में बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर लगभग डेढ़ वर्ष तक आकाशवाणी में कार्य किया था । 1943 से 1946 तक सेना में रहे 1940 में संतोष मलिक से विवाह एवं तलाक और 1956 में कपिला से विवाह किया । 1947 से 1950 तक दिनमान का संपादन किया और 1977 से 79 तक नवभारत टाइम्स के संपादक भी रहे ।

अज्ञेय में पूर्व और पश्चिम के दर्शनों का सम्मिलन है । वे क्षण को सनातन मानते हैं । पश्चिम के अस्तित्ववादी क्षण को वास्तविकता और काल को अनंत असीम मानते हैं । वे नश्वरता को सृजन का प्रेरक तत्त्व घोषित करते हैं । यही सृष्टि का रहस्य है । आत्मा का साक्षात्कार जो काल मुक्त हो उनके लिए अनुभूति का क्षण है । आत्मा को सत्ता की स्वीकृति संपूर्ण भारतीय दर्शन में की गयी है और जीवन के चरम मूल्य के रूप में मोक्ष को स्थापित किया गया है । परन्तु अज्ञेय के आत्म-साक्षात्कार का संबंध ब्रह्म से उतना नहीं है जितना कि सत्य से है, स्व की सत्ता से है । अज्ञेय की संपूर्ण साधना को महत्ता और विलक्षणता उनकी "स्व" की शक्ति के उद्घाटन में है । जब वे "स्व" को उस सत्ता का ही अंग मानते हैं तो "स्व" के आधार पर निर्मित सभी धारणायें प्रकारान्तर ईश्वर की सत्ता पर ही आधारित है । लेकिन वास्तविकता यह है कि ब्रह्म की व्यापक सत्ता को अनुभूति से छिटकी हुई

"स्व" की तीव्रतम चेतना अहं की स्थिति का चरम अनुभव उनकी धारणाओं को भी व्यापकता प्रदान नहीं कर पाता ।

अज्ञेय की साधना अस्तित्ववादी चिंतन और भारतीय आत्मवादी चिंतन को एक साथ सामने रखकर चलती है । यही कारण है कि जहाँ कहीं वे आत्म या "स्व" की अनुभूति की बात करते हैं वहाँ क्षण भी अनिवार्यत: उपस्थित है ।

प्रेम के विषय में अज्ञेय ने जो कुछ लिखा है उसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह आत्मानुभूति का अनिवार्य साधन है । उनके लिए प्रेम एक स्वीकार है, व्यक्तित्व को परखता का प्रधान लक्षण है, संपूर्ण चेतना में व्याप्त हो जानेवाले एक तत्व है जिसकी सभी स्थितियों को परिभाषित कर पाना संभव नहीं है । अज्ञेय के प्रेम का मूल तत्व स्निग्धता है । स्त्री-पुरुष के घनीभूत प्रेम को ही उनकी चेतना का प्रमुख अंग माना जा सकता है । प्रेम के माध्यम से अज्ञेय स्वयं अपने ही अस्मिता का आस्वाद करना चाहते हैं ।

अज्ञेय का व्यक्तित्व असाधारण है । असाधारण व्यक्ति में असाधारण का तत्व नैसर्गिक है । यह उनको सच्चाई को ओर देखने को बाध्य करता है । रोमांटिकता तो उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पहलू है । खतरों से खेलने की प्रवृत्ति अज्ञेय में रोमांटिकता के कारण है । प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं मानव के संबंध मात्र में भी विश्वास करने को अज्ञेय बल देते हैं । अज्ञेय के रोमांटिक अन्तर्मुखी जीवन का एक पहलू प्रकृति का प्रेम है । सभ्यता के नगर केन्द्रों के प्रति उनके मन में अरुचि थी । सभ्यता को सुरक्षितता और व्यवस्था के जीवन की अपेक्षा उनको प्रकृति की जोखम का जीवन प्रिय था । प्रकृति प्रेम के कारण ही अज्ञेय में यायावरी की प्रवृत्ति बहुत अधिक थी । उनको यह प्रवृत्ति

मुक्त विचरण में आनन्द पाती थी । उन्होंने सन् 1955 में यूरोप यात्रा और 1958 में पूर्व एशिया की यात्रा की थी । सन् 1960 से 64 तक अमेरिका यात्रा की थी । सन् 1970-71 में वे पुनः अमेरिका यात्रा कर चुके थे । वे युगोस्लाविया-रूस, मंगोलिया आदि देशों की यात्रा कर चुके थे । "अरे यायावर रहेगा याद" और "एक बूँद सहसा उछली" में इसका वर्णन किया गया है ।

अज्ञेय ने भारतीय आध्यात्म के प्रति कहीं रुचि प्रकट नहीं की। उनकी संपूर्ण प्रक्रिया पाश्चात्य विधान के अनुकूल है, अतः उनके व्यक्तित्व पर पश्चिम का प्रभाव अधिक पड़ा है । वे एक प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है । शिक्षा या व्यवहार सिखाने को साहित्य के प्रयोजन के रूप में वे नहीं मानते । तुलसीदास के "स्वान्तसुखाय" से भी वे सहमत नहीं । उन्होंने मनोरंजन को कुछ अधिक गभीरता से ग्रहण किया था । अपने रचना व्यक्तित्व को अलग रखने के प्रति वे कुछ ज़्यादा सचेत दीखते हैं । समय-समय पर निकले उनके आत्मपक्ष से संबंधित लेखन से इसका परिचय हो जाता है । यह दृष्टिकोण बाद में चलकर एक रचनात्मक दर्शन में परिवर्तित होता है । अभिसंधियों का अवांछित बोझ उन्होंने अपने जीवन में भी झेला नहीं है । "मनुष्य के रूप में जब कभी कोई चुनौती उन्हें मिली तो उन्होंने कविता को शरण न लेकर उस चुनौती को मनुष्य के रूप में स्वीकारा है ।"[1] जीवन का यह खुला आमंत्रण उनके व्यक्तित्व को प्रशस्त करने में सहायक हो रहा । प्रामाणिकता और मौलिकता उनके लिए कोई सांकल्पिक अवस्था नहीं है बल्कि जीवनानुभव और जीवन दर्शन की तीक्ष्णता से जन्मी हुई रचनात्मक अवस्था ही है ।

अज्ञेय के चिंतन पर टी.एस.इलियट, डी.एच.लॉरेन्स, हापकिन्स जैसे रचनाकारों का प्रभाव पड़ा है । लगातार उन्हें अभारतीय

---

1. विद्यानिवास मिश्र - आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय की भूमिका - पृ. 296

अपारंपरिक ठहराया जाता रहा । पर वे अपनी परंपरा के परम उपासक बनते रहे । हमारी परंपरा के सभी गतिशील तत्वों को उन्होंने ग्रहण किया है ।

साहित्य को समाज से संपृक्त मानने के कारण, प्रगतिशीलता को सापेक्ष मानने के कारण या मार्क्सवाद को एक पूर्ण दर्शन न मानने के कारण अज्ञेय पर लगातार आरोप लगते रहे हैं । जीवन मात्र को उसकी समग्रता में जानने की इच्छा रखने के कारण उन्होंने किसी भी दर्शन को संपूर्ण नहीं माना । साथ ही कलाकार की स्वायत्तता की बात भी उन्होंने प्राय: उठायी है । उन्होंने कहा है कि मेरे लिए महत्व की बात यह है कि अपने और अपने आसपास के बीच जो संबंध है उसे जानने-पहचानने का प्रयत्न करूँ । उसके सभी स्तरों को उसकी समग्रता में और जटिलता में पहचानने के सहारे उस स्वाधीनता को बढाऊँ और पुष्ट करूँ जो मेरे मानवत्व को सबसे मूल्यवान उपलब्धि है । मेरे आभ्यंतर जगत् भी मेरे आस-पास हो जाता हैं, जब उसकी ओर देखता हूँ । इसलिए अपने आप से अपना संबंध पहचानना भी आस-पास अपने संबंध की पहचान का ही एक पहलू हो जाता है । मानव की स्वाधीनता मानव मात्र की होने के कारण अविभाज्य है, किसी एक की स्वाधीनता को विराट या सीमित करके दूसरे की स्वाधीनता बढायी नहीं जा सकती । यही अज्ञेय का दृष्टिकोण है जिससे अस्मिता के प्रति पूरी आस्था है और अपने से होकर बाहर प्रस्फुटित होने की बात है ।

व्यष्टि सत्ता और समष्टि सत्ता की पारस्परिकता दोनों का महत्व जैसी बातों का विकास उनके साहित्यिक चिंतन का प्रेरक और संवर्द्धक तत्व है । एम.एन.राय के रैडिकल ह्यूमनिस्ट विचारों का स्पष्ट प्रभाव उसमें लक्षित किया जा सकता है । अपने उपन्यास लेखन के दौरान विशेषकर "शेखर" के लेखन के दौरान अज्ञेय ने इस विचार को विकसित किया है जिसमें उनका समग्र दर्शन संकलित है ।

अज्ञेय के समस्त रचना संसार में ऐसे अनेकों स्थल है जहाँ उन्होंने अपने अकेलापन की चित्तवृत्ति का विश्लेषण किया है । शेखर को एकांत-प्रियता अज्ञेय ने ही तो बुनी है । यह एकान्त या सन्नाटे का बुनाव उनकी चरम आसक्ति है । उन्होंने लिखा है -

"मैं पहले सन्नाटा बनता हूँ
उसी के लिए स्वर तार चुनता हूँ ।"[1]

इस अकेलापन ने उन्हें सृजन की नयी क्षमता दी, शिल्प के नये आयाम दिये । चिंतन के इन अकेले क्षणों ने हिन्दी को अज्ञेय जैसा सर्जक दिया जिसका व्यक्तित्व एकान्त आभा से प्रदीप्त है । 1997 अप्रैल चार को इस महान साहित्यकार का निधन हुआ ।

कृतित्व कविता साहित्य

अज्ञेय के कृतित्व का बीज विद्रोह की आंधी और प्रथम प्रणय की वर्षा के बीच बोया गया है । वह अंकुरित हुआ केतकी फूलों की उन्मादिनी चांदनी की छाया में और पौधा हुआ इन्द्रधनु के आलोक में । इस पौधे की परिणति है एक ऐसे पेड़ में, जो जितना ही आकार में ऊपर उठा है, उतना ही उसके जड़ें नीचे दूर धरती में समाई है । अज्ञेय का प्रथम काव्य-संग्रह "भग्नदूत" 1933 में प्रकाशित हुआ है । इसमें कवि की 1929-32 तक की रचनाएँ संगृहीत है । इन कविताओं में उनके छायावादी संस्कार देखे जा सकते हैं । संबोधनात्मक, वार्तालाप, शैलीगत और आत्मकथात्मक शैली की रचनाएँ भी इसमें दर्शाया गया है । इसके बाद 1941 ई॰ में चिंता का प्रकाशन हुआ । इसमें चिरंतन पुरुष और चिरंतन नारी का संबंध अपने विशेष टेकनिक और नवीन प्रयोग में अज्ञेय ने व्यक्त किया है । स्त्री और पुरुष का

---

1. अज्ञेय - पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ - पृ. 11

यह चिरंतन संघर्ष चिंता का विषय है । उनका बृहत् काव्य-संग्रह "इत्यलम्" का प्रकाशन 1946 ई. में हुआ था । इसमें पाँच खण्ड हैं । इन कविताओं में बन्दी जीवन, क्रांति, राष्ट्रीयता, विफल प्रेम आदि को देखा जा सकता है । उनकी कविता संग्रह "हरी घास पर क्षण भर" की रचनाएँ वस्तु, विषय, रूप, शैली, कथ्य आदि की दृष्टि से एक नवीन और क्रांतिजनक स्थिति की गवाही है । "बावरी अहेरी" उनका एक प्रसिद्ध काव्य संग्रह है जिसका प्रकाशन 1954 में हुआ था । इस संग्रह में 35 गीतात्मक कविताएँ हैं । इनमें से अधिकांश कविताएँ मुक्तक हैं । इन कविताओं में आत्म-विश्लेषण, प्रणय और प्रकृति की मिली जुली अभिव्यक्ति है । अज्ञेय की 1956 से 1959 तक की कविताएँ "अरे ओ करुणा प्रभामय" संग्रह में संकलित हैं । इनकी कविताएँ तीन उपशीर्षकों में रखी गयी है । "-रो पायेगी", "रूप कली" और "द्वारहीन द्वार" ।

अज्ञेय के आगे के काव्य-संग्रहों की कविताओं से पता चलता है कि आत्मान्वेषण से आध्यात्मिक और रहस्यान्वेषण की यात्रा पर वे निकल चुके हैं । उनकी मानवतावादी विचारधारा लगातार परिष्कृत और परिपक्व होती गयी है । आध्यात्मिक संवेदना से संपृक्त इस संग्रह की रचनाओं में औपनिषदिक, बौद्ध एवं ईसाई चिंतन की झलक दृष्टव्य हैं । इस संग्रह के द्वितीय खण्ड "चक्रान्त शिला" में 27 कविताएँ संग्रहीत हैं जिनका प्रधान स्वर रहस्यवाद है । "चक्रान्त शिला" समय की शिला है युगों के आवर्तन का क्रम इसमें है । प्रस्तुत संग्रह के तृतीय खण्ड असाध्यवीणा में इसी नाम की एक ही कविता है । अज्ञेय की अभी तक की काव्य रचनाओं में से सबसे लंबी रचना है यह । उनके अगला काव्य-संग्रह "सुनहले शैवाल" 1966 में प्रकाशित हुआ । अज्ञेय की 54 कविताओं का संग्रह "क्योंकि मैं उसे जानता हूँ" में 1965-68 तक की कवितायें संग्रहीत हैं । उनकी ये रचनाएँ उनके संपूर्ण और विविध व्यक्तित्व की छटायें हैं ।

"सागर मुद्रा" उनकी 1967-69 तक की कविताओं का संग्रह है । इसमें उनकी गत ग्रीस यात्रा के समय किये कुछ ग्रीक कविताओं के अनुवाद भी है । अज्ञेय का नवीनतम काव्य संग्रह है "पहले मैं सन्नाटा बनता हूँ" । इसमें 1970-73 तक की कवितायें हैं । इसमें तीन खण्ड हैं । कवि ने इन कविताओं में मौन, अकेलापन, एकान्तता और सन्नाटा पर बहुत कुछ लिखा है ।

निबन्ध साहित्य

अज्ञेय अपने निबन्ध साहित्य में पिछले सभी निबन्धकारों से एकदम भिन्न है । वे यात्रा निबन्ध, साहित्यिक निबन्ध और साहित्येतर निबन्ध आदि लिखते थे । "त्रिशंकु" आलोचना गर्भित निबन्ध है । उनके इन निबन्धों में हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन देखा जा सकता है । उनके निबन्ध "आल-बाल" में भी साहित्य, संस्कृति, जीवन मूल्य, आलोचना, कथा साहित्य, काव्य और लेखक तथा पाठक के विषय में भी अपने विचार व्यक्त किये गये हैं । "भवन्ती" में साहित्य, कला, आलोचना, काव्य संस्कृति, धर्म, राजनीति, इतिहास आदि विषयों का आलोचना की गयी है । "लिखी कागद कोरे", अज्ञेय के निजी और आत्मपरक निबन्धों का संग्रह है । इसमें उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर नारी संबंधी उनके विचारों पर भी प्रकाश डाला गया है । सप्तकों की भूमिका में भी प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, छायावाद, राहों के अन्वेषी, नये प्रतिमानों तथा जीवन सापेक्ष, मूल्यों का भी प्रदर्शन है । "आत्मनेपद", काव्याख्यान, आलोचना, स्थिति और मनोविज्ञान से संबंधित निबन्ध है । इसमें उन्होंने शेखर एक प्रश्नोत्तरी में शेखर संबंधी कई प्रश्नों का उत्तर दिया है । "नदी के द्वीप" क्यों और किसके लिए नामक निबन्ध में "नदी के द्वीप" उपन्यास संबंधी कुछ समाधान प्रस्तुत किये हैं । "हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य" में 18 निबन्ध संग्रहीत है । "अन्तरा" में अज्ञेय ने

अनेक अंत: प्रक्रियाओं द्वारा ईश्वर, धर्म, वाद, साहित्य, कला संविधान, समाज, व्यक्ति, सन्नाटा, आस्था, मुक्ति, सुख दु:ख काव्य का आस्वादन, संप्रेषण और सामाजिक अनुभव, अनुभूति, अस्तित्व, वरण, चुनाव, सत्य, शिव, सुन्दर आदि अनेक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ।

गीतिनाट्य और एकांकी

अज्ञेय की रुचि नाटकों में उतनी अधिक नहीं रही जितनी कविता और कथा-साहित्य में थी । "उत्तरप्रियदर्शी" उनका गीति नाट्य है । प्रस्तुत नाटक में आत्मा की आवाज़ आन्तरिक जीवन की वास्तविकता और मनुष्य की मानवीय दृष्टि का उद्घाटन किया गया है । यह पौराणिक कथा एक ऐतिहासिक परिवेश में छनकर आज की हिंसा-अहिंसा, क्रूरता और आर्द्रता, युद्ध और शांति, आस्था और अनास्था आदि का द्वन्द्व प्रकट करती है । "वसंत" एकांकी में नारी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत एकांकी एक मनोवैज्ञानिक निरूपण है । अन्तर्द्वन्द्व में भीतर और बाह्य का एक सामंजस्य है । इसका विश्लेषण प्रस्तुत एकांकी में दर्शाया गया है ।

कहानी-साहित्य

अज्ञेय ने लगभग 100 कहानियाँ लिखी हैं । उनका प्रथम कहानी-संग्रह "विपथगा" का प्रकाशन 1937 में हुआ । इस संग्रह ने कथाक्षेत्र में एक नवीन शिल्प और अद्भुत शैली का सूत्रपात किया । अज्ञेय के अभी तक पाँच संकलन प्रकाशित हुए हैं । "विपथगा", "परंपरा", "कोठरी की बात", "शरणार्थी", "जयदोल" आदि । उनकी इन रचनाओं में सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर मनोविज्ञान का प्रयोग ही प्रमुख रूप से हुआ है ।

उनकी कहानियों में देश-भक्ति, क्रांति, राष्ट्रीयता, शरणार्थियों के कष्ट, जेल की मनोव्यथाएँ, स्वाभिमान युगबोध, नैतिक, अनैतिक, अश्लील, प्रेम विवाह, यौन आदि की समस्याओं का चित्रांकन बड़ी कुशलता से हुआ है ।

उनकी आरंभिक कहानियाँ क्रांति और जेल जीवन के अनुभवों की कहानियाँ हैं । अज्ञेय की ये क्रांति संबंधी कहानियाँ भी आम तौर पर दो प्रकार की हैं । पहले प्रकार की कहानियाँ वे हैं जिनमें जेल की बन्द कोठरी में बैठकर चीन, रूस, क्यूबा, ग्रीस आदि किसी भी देश की पृष्ठभूमि पर कहानी लिखी गयी है । ये कहानियाँ मूल स्रोत से हटकर क्रांति और अव्यावहारिक आदर्शों के अमूर्तन की कहानियाँ हैं । "हारिति", "विपथगा", "अकलंक मिलन", "कैसाड्रा का अभिशाप" आदि कहानियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं । इन कहानियों में बड़े सशक्त ढंग से क्रांति के लिए मर मिटनेवाले लोगों को अंकित किया गया है ।

विदेशी पृष्ठभूमि पर आधारित क्रांति संबंधी इन कहानियों के मुकाबले में अपने देश की पृष्ठभूमि और सन्दर्भों को अंकित करनेवाली क्रांति संबंधी कहानियाँ अधिक सहज और प्रभावशाली बन पड़ी हैं । छाया, एक घंटे में, दारोगा, अमीचन्द्र और पगोडा वृक्ष जैसी कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं । इन कहानियों में भी देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेवाले लोगों की कथा अंकित है ।

सामाजिक धारा की कहानियों में समाज व्यवस्था या समाज की किसी स्थिति या समस्या पर प्रकाश डाला गया है । "सभ्यता का एक दिन" "जीवन शक्ति", "एक घंटे में", "रोज़" आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं ।

चरित्र विश्लेषणात्मक कहानियों में "मन के चेतन अवचेतन की ग्रन्थियों के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । पुरुष का भाग्य" में एक स्त्री के चरित्र का विश्लेषण इसी आधार पर किया गया है । "होली बोन की बतखें" में लोमड़ी को हत्या में होनी बोन के स्त्रीत्व में उसका आत्म चिंतन परख कहानियाँ है । पटार का धीरज, कोठरी की बात, नंबर दस, सांप, आदि इस श्रेणी की कुछ रचनाएँ हैं । इन पाँच कहानी-संग्रहों के अतिरिक्त अज्ञेय की कहानियाँ भाग 1, भाग 2, आदि में भी निकली हैं जिनमें उनके पूर्व प्रकाशित कहानियाँ हो हैं । उनके नये कहानी-संग्रह -"ये तेरे प्रतिरूप" में कुछ पूर्व प्रकाशित कहानियों के अतिरिक्त चार नयी कहानियाँ भी छपी हैं ।

उपन्यास

अज्ञेय ने अभी तक तीन उपन्यास लिखे हैं । शेखर एक जीवनी, उनकी प्रथम औपन्यासिक रचना है, जो दो भागों में प्रकाशित है । यह आत्म कथात्मक संस्मरण शैली में लिखी गयी अपने युग को प्रतिनिधि रचना है । उनका दूसरा उपन्यास है "नदी के द्वीप" । यह एक प्रेम संबंधी कथा है । द्वीप यथार्थ में व्यक्ति सत्य का पर्याय है । उनका अंतिम उपन्यास है "अपने अपने अजनबी" जो तीन उपशीर्षकों में लिखा गया है । यह एक दार्शनिक उपन्यास है । मृत्यु से साक्षात्कार, वरण की स्वतंत्रता और परिस्थिति के चयन आदि समस्याओं में इस उपन्यास की परिधि सीमित है ।

अज्ञेय जी को अपने जीवन में काफी ख्याति, कीर्ति और श्रीसंपत्ति भी मिली । देश-विदेश में कई साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें देव पुरस्कार, अकादमी पुरस्कार, युगोस्लाविया का स्वर्ण-कमल, भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार और उत्तर प्रदेश राज्य का "शिखर सम्मान"(मरणोपरांत) आदि उन्हें मिले । अज्ञेय की अपनी एक विशिष्ट जीवन शैली और लेखन शैली थी ।

अज्ञेय की रचना दृष्टि का विकास

अज्ञेय की औपन्यासिक प्रतिभा हिन्दी उपन्यास साहित्य के उस काल की उपज है जब हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि उपन्यासकारों की अविस्मरणीय कथाकृतियों से संपन्न होकर एक परिनिष्ठ एवं प्रतिष्ठित स्थिति में आ चुका था । विश्व के अन्य भाषा- साहित्यकारों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने के पश्चात् अपने नित नूतन प्रयोगों द्वारा वे अंतर्राष्ट्रीय उपन्यास जगत में अपना स्थान बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे । हिन्दी के जैनेन्द्र और परवर्ती उपन्यासकारों की तुलना में अज्ञेय एक ऐसे उपन्यासकार हैं जो पाश्चात्य साहित्य के संपर्क में अधिक जुड़े रहे हैं । उनके उपन्यासों की वस्तु एवं शिल्प, उनकी विचारधारा, सैद्धांतिक मान्यताएँ आदि प्राच्य सभ्यता एवं संस्कृति से संबद्ध होते हुए भी पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता से युक्त है ।

हिन्दी को साहित्य जगत में अज्ञेय की औपन्यासिक रचनाओं के माध्यम से व्यक्त अज्ञेय के दृष्टिकोण के संबंध में आवश्यकता से अधिक मतभेद या विरोध उपलब्ध है । आलोचकों का एक बड़ा वर्ग है जिनमें से कोई अज्ञेय को व्यक्तिवादी, कोई कुंठावादी, निराशावादी, पलायनवादी, अहंवादी, अतियौनवादी, समाज विरोधी आदि विभिन्न विशेषणों से संबोधित करते हैं । अज्ञेय के संपूर्ण रचनाओं के अध्ययन करने पर इन में से कोई-न-कोई पक्ष अवश्य उभर भी आता है ।

अज्ञेयजी के आने पर ही हिन्दी उपन्यास साहित्य एक नया मोड़ ग्रहण करता है । उनके उपन्यास व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज करते हैं । वे मानव मन के आभ्यंतर के कथा शिल्पी है । वे घटना बाहुल्य में विश्वास नहीं करते हैं । व्यक्ति जीवन की अंतश्चेतना का उद्घाटन और निरूपण करना उनका

लक्ष्य है । सदैव उनकी दृष्टि व्यक्ति केन्द्रित रही है । आत्मनिष्ठ या व्यक्ति केन्द्रित होने के कारण उनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रबल हो गये हैं । अचेतन, अवचेतन और चेतन मन से संबंधित नयी विचारधारा ने उनके उपन्यासों को आधुनिकता का परिवेश प्रदान किया है ।

कथानक संबंधी दृष्टिकोण

अज्ञेय के किसी भी उपन्यास को प्रेमचन्द के उपन्यास के कथानक की तरह व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता । "शेखर एक जीवनी" जो उनका प्रथम उपन्यास है, वस्तुतः आधुनिक हिन्दी उपन्यास जगत में वस्तु एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से एक नितांत नूतन प्रयोग है । भारतीय आभिजात्य वर्गोत्पन्न बौद्धिक चेतना युक्त व्यक्ति विशेष का जीवनांश ही शेखर एक जीवनी तथा "नदी के द्वीप" के कथानकों का आधार है । "शेखर एक जीवनी" का कथानक हिन्दी के पूर्ववर्ती उपन्यासों के कथानकों जैसा सपाट और एक गतीय नहीं है, वरन इसके तल में अनेक कथासूत्र हैं जो विभिन्न स्वतंत्र दिशाओं में बढ़ते हुए कथानकों को विकसित करते हैं । अर्थात् कथानक में कोई सुनियोजना नहीं है वरन् उन विभिन्न दिशा-गतियों का विश्लेषण है जो उपन्यास को अपने अपने विकास द्वारा एक कथानक रूप देती है । "शेखर एक जीवनी" में घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए "विशन" को शब्दांकित करने का प्रयास है । लेखक ने इस एक चरित्र में शेखर के शैशव से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीवन से साक्षात् किया है । उसका कथानक तद्युगीन हिन्दी उपन्यास में वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से एक नितांत नूतन वस्तु है । कवि की प्रतिभा से संपन्न अज्ञेय के प्रायः हर उपन्यास में एक मौलिक कवि की गहन संवेदनशीलता, प्रखर और सूक्ष्म कल्पना तथा भावनात्मकता के दर्शन भी होते हैं । "शेखर एक जीवनी" में अज्ञेय ने कवि सुलभ काल्पनिकता को बड़े ही कौशलपूर्ण ढंग से उपन्यास के यथार्थ कथांशों

के साथ समायोचित किया है । इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता यह है कि इस में काल्पनिक और व्यावहारिक भावभूमियों का आश्चर्यजनक ढंग से समावेश हुआ है ।

"शेखर एक जीवनी" में हमें कथानक का जो स्वतंत्र और विश्लेषणात्मक रूप दिखाई देता है, नदी के द्वीप में आकर वह अत्यंत सुगठित एवं सुघटित हो गया है । नदी के द्वीप का कथानक डा. भुवन का कुछ जीवनांश है । इसमें कथानक का विकास पात्रों के चारित्रिक विकास के आश्रित नहीं हैं बल्कि इस में तो समस्त पात्र लगभग पूर्ण विकसित रूप में ही प्रवेश करते हैं । इसकी कथा अत्यंत संक्षिप्त है । नायिका रेखा पहले भुवन और चन्द्रमाधव नामक दो मित्रों के बीच आकर्षण का केन्द्र है किन्तु आगे चलकर वह भुवन के प्रति ही समर्पित होती है किन्तु अन्ततः वह डा. रमेश से विवाह कर लेती है तथा भुवन अपनी शिष्या गोरा से विवाह का प्रस्ताव करता है । इसी संक्षिप्त कथानक को अज्ञेय की सूक्ष्म और कलात्मक विश्लेषणप्रिय प्रतिभा ने एक संपूर्ण उपन्यास का रचनाधार बना दिया है । शेखर एक जीवनी के कथानक को देखते हुए अज्ञेय की रचना दृष्टि के प्रति अनियमित तथा अस्त-व्यस्त होने की शंका जहाँ उत्पन्न होती है वहीं नदी के द्वीप के कथानक को देखकर हम उसकी सुव्यवस्था के प्रति पूर्णरूपेण आश्वस्त हो जाते हैं । शेखर के द्वितीय भाग से लेकर "नदी के द्वीप" की औपन्यासिक कला में कथा की सरलता अधिक बढ़ी है । "शेखर एक जीवनी" की तुलना में इसका कथानक अधिक सुगठित है । किन्तु अपने आप में इतना संकीर्ण है कि वह खटकने लगा है । "नदी के द्वीप" का आकार और विस्तार कथा चयन के विपरीत है, अर्थात आनुपातिक दृष्टि से काफी फैला हुआ है । कथानक के इस प्रसारण के मूल में अज्ञेय की कवि चेतना ही है जो स्थूल कथांशों को सामान्यतया गति देती हुई सूक्ष्म एवं भावनात्मक अंशों में रम जाती है ।

इसी कारण इस उपन्यास में अनेक काव्य-रूपक प्रणय-प्रसंग हमें प्राप्त होते हैं । अज्ञेय के कवि की संवेदनशीलता इस उपन्यास के पृष्ठ-पृष्ठ पर मुखरित है ।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के कथानक में जो परिसीमिता आई है उसका आदर्श अज्ञेय के नवीनतम उपन्यास "अपने अपने अजनबी" में उपलब्ध है । इसका कथानक स्थूल प्रकार के विपरीत गहन व्यापकत्व धारण किए हुए है । मात्र दो नारियों के ईषत् साहचर्य का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण इस रचना के कथानक का आधार है केवल तीन अध्याय, दो पात्र कुछ न कुछ घटना बस यही इस उपन्यास के रचना उपकरण हैं । वृद्धा सेलमा किसी हिमाच्छादित पर्वत की उपत्यका में बने एक काठ के मकान में अपनी अतिथि तरुणी योके के साथ भीषण हिमपात से मकान में दब जाने के कारण सर्दी के दो महीनों तक एक प्रकार से कैद हो जाती है । कैंसर रोग से पीड़ित होने के कारण इसी मकान में उसकी मृत्यु हो जाती है । उपन्यास के प्रथम अध्याय की इतनी ही कथा है । द्वितीय अध्याय में सेलमा द्वारा वर्णित अपने पूर्व जीवन का कुछ अंश है । तृतीय में योके का जीवनांत का वर्णन है । मात्र इतनी सी कथा वस्तु को अज्ञेय की पैनी दृष्टि और सूझबूझ ने एक संपूर्ण उपन्यास का विषय बनाया है । कथानक में ऊपरी फैलाव न होने के कारण एक अद्भुत गहनता एवं अन्तसंगठन आ गया है । मृत्यु और उसके संदर्भ में जीवन की दर्शन समन्वित मनोवैज्ञानिक व्याख्या ही लेखक का उद्देश्य रहा है जिसके हेतु इस उपन्यास की रचना की गई है । इसके कथानक की श्रेष्ठता शास्त्रीय दृष्टि से मान्य प्रतिमानों पर तो सिद्ध नहीं हो सकती । किन्तु यदि इसमें अंतर्निहित संदेश प्राच्य एवं पाश्चात्य जीवन दृष्टियों के समन्वयीकरण को ग्रहण कर सकेंगे तो वस्तुतः यह उपन्यास सिद्ध हो सकेगा ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अज्ञेय के उपन्यासों के कथानकों का विकास व्यापकता से परिसीमिता की ओर है । शेखर एक जीवनी के कथानक का विस्तृत परिवेश "नदी के द्वीप" में आकर सूक्ष्म और "अपने-अपने अजनबी" में सूक्ष्मतम हो गया है ।

चरित्र संबंधी दृष्टिकोण

जैनेन्द्र-परवर्ती हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में चरित्रों की संख्या भी कम हुई है । प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों के समान चरित्रों की भरमार हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में नहीं रही । कथानक और चरित्र परंपराश्रित तत्व है । देश-काल एवं विषय वस्तु के अनुसार ही कथानक में विस्तार आता है और उसी विस्तार के अनुरूप उपन्यासकार चरित्रों का विधान करता है । किन्तु व्यस्तता के इस युग में जहाँ प्राय: हर व्यक्ति क्षण-प्रतिक्षण अपने तक ही सीमित अतिसीमित होता जा रहा है । वहाँ उसी के चरित्र को उपन्यास में विस्तार के लिए कोई स्थान ही नहीं रह गया है ।

अज्ञेय के उपन्यास सही अर्थ में आधुनिक हैं । बौद्धिकता, मनोवैज्ञानिकता, वैज्ञानिकता, प्रतिद्वंद्विता, व्यस्तता आदि के इस युग में व्यक्ति की क्या स्थिति है, इस प्रश्न का यथार्थ और कलात्मक उत्तर हमें अज्ञेय के चरित्र-चित्रण में प्राप्त हो जाता है । इस दृष्टि से "शेखर एक जीवनी" के नायक शेखर का चरित्र अद्वितीय है । अज्ञेय ने अपने चरित्रों को भारतीय जीवन के उस विशेष वर्ग में से चुन लिया है जिनकी चारित्रिक विशिष्टताएँ आभिजात्यता, बौद्धिकता, अहं व्यष्टिवादिता, कुंठा, संवेदनशीलता आदि हैं । अज्ञेय की निजी रुचि व्यक्ति-चरित्रों की रचना में रही है, टाईप चरित्रों की रचना में नहीं ।

यही कारण है कि "शेखर एक जीवनी" जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है शेखर नामक व्यक्ति का जीवन चरित्र है । अज्ञेय ने एक व्यक्ति चरित्र के माध्यम से उसके वर्ग युग संस्कृति, जीवन संघर्ष आदि का चित्रण करने का प्रयास किया है ।

विद्रोह, अहं, बौद्धिकता, यौन भाव, संवेदनशीलता एवं कुंठा शेखर की विशिष्ट चित्तवृत्तियाँ है । शेखर अपने शैशव से ही जिज्ञासु वृत्ति का है । भरे-पूरे परिवार में रहते हुए नाना प्रकार की जिज्ञासाएँ उनके मस्तिष्क में उठती रहती हैं, कभी ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में, कभी मानव-जन्म के संबंध में और कभी अपने निजी अस्तित्व के संबंध में । यथार्थ जीवन में उसको जिन जिज्ञासाओं का समाधान नहीं हो पाता वे ही उसके मस्तिष्क में ग्रन्थियों का रूप धारण कर लेती हैं जिससे उसकी आत्मा हर व्यक्ति के प्रति अनास्थाशील होकर विद्रोहणी हो जाती है । उसका विद्रोह किसी निश्चित व्यक्ति या वर्ग या संस्था या समाज के प्रति नहीं है, बल्कि यह विद्रोह तो उसका धर्म है, वह तो स्वयं के प्रति भी विद्रोही है । शेखर जैसे-जैसे वयस्क होता जाता है अर्थात् जैसे-जैसे उसे जीवन के संघर्षों एवं जटिलताओं का सामना करना पड़ता है वैसे-वैसे ही उसको यह विद्रोह-वृत्ति क्षीण होती जाती है । वह पूर्ण रूपेण सामंजस्यवादी यथार्थ मनुष्य के रूप में बदलता जाता है । व्यापक समाजवादी, आदर्शवादी या उपयोगितावादी दृष्टि से देखने पर शेखर तो एक नितांत असफल चरित्र सिद्ध होता है । क्योंकि समाज आदर्श और उपयोगिता ये तत्व अज्ञेय के विचारधारा के बाहर के हैं । वे व्यक्तिपरक दृष्टि से ही चरित्र निर्माण एवं उसका चित्रण करते हैं । व्यक्ति चरित्र का गहन विश्लेषणात्मक विवेचन, उसके अन्तर्प्रदेशों का सूक्ष्म अंकन, उसकी मूल वासनाओं का कलात्मक अभिव्यक्तीकरण तथा समाज एवं वातावरण के प्रति उसकी निजी प्रतिक्रियाओं का यथार्थ चित्रण जितनी सच्चाई के साथ अज्ञेय कर सके हैं संभवत: हिन्दी का कोई अन्य

आधुनिक उपन्यासकार नहीं किया । शशि अवश्य एक ऐसा चरित्र है जो पाठक का ध्यान अलग से आकर्षित करती है । उपन्यास के द्वितीय खण्ड के उत्तरार्द्ध एवं समाप्ति पर, तो सामान्य धारणा यही बनती है कि शशि ही वह लक्ष्य तथा जिसकी प्राप्ति के लिए संपूर्ण उपन्यास में शेखर इतना विचलित दिखायी देता है । अंत में शेखर का जीवन भी कुछ ऐसा व्यवस्थित अथवा शिथिल सा हो जाता है कि शशि के प्राप्त करने के पश्चात् जैसे जीवन में उसके लिए कुछ भी और शेष नहीं रह गया है । इसी प्रकार अन्य यत्किंचित् विशिष्ट किन्तु गौण एवं शेखर के वैचारिक प्रतीक पात्र बाबा मदनसिंह हैं । मोहसिंह तथा रामजी के चरित्र भी अप्रमुख है । इसलिए उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व उपन्यास में स्थापित नहीं हो पाए हैं ।

चरित्र अध्ययन के दृष्टिकोण से अज्ञेय की दूसरी औपन्यासिक कृति "नदी के द्वीप" है । "शेखर एक जीवनी" की चरित्र-रचना की एक प्रकार से पुनरावृत्ति, किन्तु एक विकसित रूप इस उपन्यास में दिखाई देता है । इस रचना का नायक भुवन है । "शेखर एक जीवनी" के दो खण्डों में जो शेखर अपनी युवावस्था तक ही पहुँच पाया है, वही "नदी के द्वीप" में पूर्णवयस्क होकर भुवन के रूप में चित्रित है । शेखर के चरित्र की प्राय: समस्त मनोवृत्तियाँ अहं, आत्मकेन्द्रीयता, यौन-भाव, आभिजात्य भावाकुलता, एकांतप्रियता तथा कुंठा एक विकसित रूप में भुवन में भी नज़र आती है । इसमें मुख्य चार पात्र हैं - भुवन, रेखा, गोरा और चन्द्रमाधव तथा दो गौण पात्र - हेमेन्द्र और डा. रमेश । किन्तु वस्तुत: भुवन ही संपूर्ण उपन्यास का वह अधिपति चरित्र है । शेष पात्र उसकी प्रतिच्छवियाँ मात्र है । इसकी नायिका रेखा के चरित्र "शेखर एक जीवनी" की नायिका शशि से अधिक विकासवान एवं पुष्ट है । शशि का चरित्र स्वतंत्र व्यक्तित्व शून्य पूर्ण रूपेण शेखर के आश्रित, शेखर के हेतु ही है, किन्तु

शशि की अपेक्षा रेखा अधिक निजी व्यक्तित्व रखनेवाला चरित्र है । अन्ततः "नदी के द्वीप" की चारित्रिक रचना अपने आप में किसी भी विशिष्टता से युक्त नहीं है । "शेखर एक जीवनी" के चरित्रों का विकसित, सुगठित एवं वयस्क रूप ही इस उपन्यास का चरित्र चित्रण का आधार है ।

अज्ञेय का तीसरा और नवीनतम उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" चारित्रिक अध्ययन की दृष्टि से यह कृति लेखक की पारंपरिक चारित्रिक रचना विधि से एकदम पृथक है । इसमें चरित्र केवल दो हैं । वृद्धा सेलमा और तरुणी योके । वृद्धा सेलमा अपने आप में एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है । उसका चरित्र एक ऐसे व्यक्ति का चरित्र है जो जीवन से नितांत निरपेक्ष, आत्मकेन्द्रित दमित और अहंपूर्ण है । अतः उसका जीवन समाज के साथ-साथ स्वयं के लिए भी व्यर्थ है । अपनी इस व्यर्थता की प्रतीति वृद्धा सेलमा को पूरी-पूरी है । वह कुछ तो कैंसर व्याधि की पीडा के कारण और कुछ अपनी निराशावादी चेतना के कारण प्रतिक्षण ही मृत्यु की प्रतीक्षा करती है । दूसरा पात्र तरुणी योके का है । योके वस्तुतः जीवन के संघर्ष का प्रतीक है । यह अज्ञेय की एक अत्यंत सशक्त प्रतीकात्मक रचना है । जीवन के खतरों से योके को विशेष आसक्ति है । वह अपने प्रारंभिक जीवन से ही दुस्साहसी रहे हैं । बर्फ के पहाडों की चढाई एवं देशाटन उसे प्रिय है । वह जीवन को उसके पूरे अर्थों में जीना चाहती है । किन्तु सेलमा के संपर्क में रहकर उस पर सेलमा के कुंठित व्यक्तित्व का यत्किंचित् प्रभाव पडता है । परन्तु वह इस प्रभाव से दब नहीं जाती । उसे दूर करने की चेष्टा करती है । कहा जा सकता है कि तरुणी योके - जो उन्नत, गतिशील आस्थावान एवं जीवन भावनाओं का पुंज है - हमारे पूर्व की जीवन दृष्टि है और वृद्धा सेलमा जो हर प्रकार से ह्रासोन्मुख है - पश्चमीय पतनशील जीवन दृष्टि है । अज्ञेय ने अपने असाधारण प्रतिभा के बल से इन दो चरित्रों के माध्यम से विश्व को

दोनों जीवन दृष्टियों का बड़ा ही सफल अंकन किया है। "अपने-अपने अजनबी" के चरित्रों में स्थूलता बाह्य क्रियाशीलता नाममात्र को भी नहीं है । वे पूर्णतः मानसिक रचनाएँ हैं, जो पाठक के मानस को भी प्रभावित करती हैं । अज्ञेय की चारित्रिक रचना की विकास यात्रा स्थूलता से सूक्ष्मता, सामान्यता से विशिष्टता तथा क्रियाशीलता से चिंतनशीलता की ओर है । शेखर की यथार्थ जीवन में जो क्रियाशीलता है वह "नदी के द्वीप" के भुवन में आकर समाप्त हो जाती है । "अपने-अपने अजनबी" में तो किसी भी पात्र में इसकी उपलब्धि नहीं होती ।

कथोपकथन संबंधी दृष्टिकोण

आधुनिक उपन्यास सृजन की एक प्रमुख विशिष्टता है - व्यक्ति मन के अन्तर्लोकों का स्पष्टीकरण । उपन्यास रचना के प्रायः सभी तत्व इसी हेतु प्रयुक्त किए जाते हैं । कथोपकथन भारतेन्दु युग से लेकर प्रेमचन्दकालीन उपन्यासों तक एक स्वतंत्र कला-रूप में लिखे जाते रहे हैं । किन्तु जैनेन्द्र - परवर्ती उपन्यास साहित्य में जहाँ मनोविश्लेषण क्रमशः प्रमुख अति प्रमुख होता गया है वहाँ अब कथोपकथनों का वह स्वतंत्र महत्व नहीं रह गया है । उनके रूप-आकार तथा प्रवृत्ति पूर्णतः बदल गयी हैं । अज्ञेय के औपन्यासिक कथोपकथनों का अध्ययन इसी दृष्टि में किया जा सकता है । "शेखर एक जीवनी" तथा "नदी के द्वीप" में कथोपकथन किसी-न-किसी रूप में प्राप्य भी है, किन्तु "अपने-अपने अजनबी" में आकर ये नितान्त ही गौण हो गये । "शेखर एक जीवनी" का प्रथम खण्ड कथात्मकता एवं घटनात्मकता से विशेषतः युक्त है, अतः उसमें छोटे बड़े कथोपकथन पर्याप्त रूप में उपलब्ध है ।

यथा "शेखर ने सरस्वती से पूछा ; मरते कैसे हैं ?"

"मर जाते हैं, और क्या ?"

"मर कर क्या होता है ?"

"पागल ! जान नहीं रहती, चल-फिर, बोल नहीं सकते, तब ले जाकर जला देते है ।"

"डूबने से ऐसे ही मर जाते हैं ?"

"हाँ

"क्यों करते हैं ?" आदि ."[1]

किन्तु इन कथोपकथनों की प्रकृति अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों के कथोपकथनों से बिलकुल भिन्न है । इसी उपन्यास के दूसरे भाग में जहाँ कथा कुछ व्यवस्थित हो गयी है तथा भावात्मकता बढ़ गयी है । कथोपकथनों की प्रकृति और भी आंतरिक हो गयी है । वे अपेक्षतया अधिक भावाकुल और सूक्ष्म हो गये है । यथा

"इस बार मोहसिन ने सुना ।" गाना सुनाऊँ ?

"हाँ सुनाओ ।"

"क्या करते थे ?"

"बैठा था ।"

"अच्छा सुनो ।"[2]

"नदी के द्वीप" उपन्यास मुख्यतया प्रेम के दर्द की दास्तान पेश करता है । अत: उसके कथोपकथनों की प्रकृति भी बहुत कुछ ऐसी ही है । रेखा ने कहा,

"आप तारों के बारे में कुछ कहते जा रहे थे -"

भुवन ने सकपकाकर स्वीकार कर लिया । "तो रुक क्यों गए ?"

भुवन चुपचाप उसकी ओर देखने लगा ।

"ओ - मैं समझ गई । तारों से मैं नहीं डरती, भुवनजी, कभी नहीं डरी ।

---

1. अज्ञेय - शेखर:एक जीवनी - पृ.87

2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ.66

और मैं ने कहा था न, जो दु:स्वप्न कह लूँगी, उससे मुक्त हो जाऊगी ? अभी तक कह नहीं पायी थी, यही उसकी ताकत थी । अब - अब नहीं । आप कहिए तो तारे गिन डालूँ । आकाश के ?"[1]

प्रस्तुत उपन्यास के कथोपकथनों की एक विशिष्टता यह भी है कि वे रवीन्द्र, डी. एच. लारेन्स तथा अन्य प्राच्य, पाश्चात्य कवियों की कविताओं के संदर्भ में ही रचे गये है । अत: बंगला - अंग्रेज़ी आदि भाषाओं का प्रयोग तथा उनके अर्थों का प्रस्तुतीकरण भी उनमें हुआ है । यदि सामान्य दृष्टि से देखा जाय तो अज्ञेय के उपन्यासों में ऐसे कथोपकथन भी प्राप्य है जो साधारण बातचीत के रूप में दैनंदिन जीवन की किसी सामयिक समस्या के संबंध में कहे जाते हैं । शेखर का कालेज जीवन क्रांतिकारियों के साथ का जीवन आदि के संदर्भ में प्रयुक्त कथोपकथन इसी प्रकार के हैं । लेकिन उनके कथोपकथनों का प्रतिनिधि रूप हमें "नदी के द्वीप" के भावाकुल, संतुलित, बौद्धिकता युक्त एवं सार्थक कथोपकथनों में दिखाई देता है । जिस प्रकार कथानक और चरित्र के संबंध में अज्ञेय की दृष्टि क्रमश: सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयी है उसी प्रकार कथोपकथन भी ।

"अपने - अपने अजनबी" के अधिकांश कथोपकथन सीमित आकार प्रकारवाले अधिकतम चार या पाँच वाक्यों के किन्तु अपने अर्थों में अधिक विस्तृत तथा गहन हैं । इस उपन्यास में प्रथमत: कथोपकथन बहुत कम है और जो हैं वे सभी दार्शनिकता, आत्माभिव्यक्ति, मनोविश्लेषण तथा बौद्धिकता से युक्त हैं - "योके तुम्हारा ध्यान हमेशा मृत्यु की ओर क्यों रहता है ।" मैं ने स्काई से कहा "क्योंकि वहीं एक मात्र सच्चाई है - क्योंकि हम सबको मरना है ।"[2]

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 117
2. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ. 74

इसी प्रकार के अर्थ गुंफित कथोपकथन पूरे उपन्यास में बहुत कम नहीं हैं । प्रस्तुत उपन्यास के कथोपकथनों के अध्ययन से एक बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है कि अज्ञेय में न्यूनातिन्यून शब्दों में अधिकाधिक अर्थ भर देने की एक अद्भुत क्षमता है । तरुणी योके के और वृद्धा सेलमा के मध्य हुए निम्नांकित संक्षिप्त वार्तालाप में सेलमा के शब्दों में उसका अहं स्पष्ट रूप से हमारे सामने व्यक्त होता है । सेलमा एक तो वृद्धा हैं फिर कैंसर की व्याधि से पीड़ित है, किन्तु फिर भी उसमें इतना साहस, इतना संकल्प और अहं है कि ऐसी दयनीय स्थिति में भी किसी का सहारा नहीं चाहती है । आंतरिक स्थितियों का बहुत ही थोड़े किन्तु सार्थक शब्दों में पूर्ण स्पष्टीकरण जिस कुशलता के साथ अज्ञेय के कथोपकथनों में परिलक्षित होता है, वह अन्यत्र नहीं है ।

वातावरण संबंधी दृष्टिकोण

"शेखर एक जीवनी" अज्ञेय की प्रथम औपन्यासिक कृति है । इसकी रचना एवं प्रकाशन स्वतंत्रता पूर्व हुआ । वर्तमान सदी का संपूर्ण पूर्वार्द्ध भारतीय जीवन में अनवरत संघर्ष का काल रहा है । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक जीवन का हर पक्ष एक गहरे उद्वेलन एवं परिवर्तन से पूर्ण रहा है । ऐसे ही देश-काल में "शेखर एक जीवनी" की रचना हुई है । "शेखर एक जीवनी" में चित्रित देश-काल का अध्ययन करते समय एक उल्लेखनीय बात हमारे समक्ष स्पष्ट होती हैं, वह है संपूर्ण वातावरण में व्याप्त लेखक का विशिष्ट दृष्टिकोण । अज्ञेय एक दार्शनिक विचारक की भाँति तटस्थ होकर अपने देश-काल का वर्णन करता है । प्रस्तुत उपन्यास में स्वतंत्रता पूर्व भारत में व्याप्त अंधविश्वास, जाति-धर्म वैषम्य, पारिवारिक रूढ़िवादिता, पाश्चात्य सभ्यता के आधुनिकीकरण का वृत्ति क्रांतिकारी आन्दोलन, ह्रासोन्मुख उच्चवर्ग, स्वार्थपरता, राष्ट्रीय चेतना आदि अच्छी-बुरी स्थिति परिस्थितियों

के बड़े ही सच्चे एवं मार्मिक चित्र प्राप्त होते हैं । किन्तु उनका अंकन मात्र एक व्यक्ति शेखर के सन्दर्भ एवं संबंध में ही हुआ है । अर्थात् उनका परिवेश संक्षिप्तता से युक्त है । अज्ञेय का लक्ष्य शेखर नामक व्यक्ति का जीवन चरित प्रस्तुत करना है । इसमें सन्देह नहीं कि अज्ञेय ने "शेखर एक जीवनी" में एक व्यक्ति के जीवन-चरित्र के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय समाज के अनेक पक्ष भी उजागर किए हैं, और वह भी पूर्ण सफलता के साथ किये हैं । शेखर के अपने परिवार के चित्र स्वतंत्रतापूर्व भारत के उच्चवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधि चित्र है । उसमें वे तमाम गुण-दोष अपने वास्तविक रूप में अंकित हैं जो तत्कालीन ऐसे परिवारों में व्याप्त थे । शेखर के कालेज जीवन के चित्र तत्युगीय युवकों की राष्ट्रीय एवं सुधारवादी भावनाओं तथा भावावेशों के चित्र हैं । अपने जीविकोपार्जन के लिए शेखर को जो-जो संघर्ष करने पड़ते हैं उनके होते तत्कालीन संपादकों, प्रकाशकों, समाज सुधारकों आदि के अत्यन्त यथार्थ एवं प्रभावोत्पादक चित्र हमारे सामने स्पष्ट हो जाते हैं । स्वतंत्रतापूर्वक भारत के जेलों, न्यायालयों आदि का चित्रण भी अज्ञेय के शेखर के जीवनांकन के माध्यम से बड़े ही कौशल से किया है । "शेखर एक जीवनी" की भूमिका में अज्ञेय ने कहा है "शेखर निसंदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज़ है (a record of personal suffering) है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग-संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है । इतना और ऐसा निजी वह नहीं है कि उसके दावे को आप एक आदमी की निजी बात कहकर उड़ा सके । मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समाज और मेरा युग बोले ।"[1] इसके बारे में डा. त्रिभुवन सिंह ने भी लिखा है "इसी भाँति "शेखर एक जीवनी" में हमें स्वतंत्रतापूर्व भारतीय देशकाल के कृष्ण शुक्ल पक्ष अत्यंत कलात्मक यथार्थ,

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - भूमिका पृष्ठ

प्रभावशाली एवं संतुलित रूप में अंकित दीखते हैं । दूसरे शब्दों में शेखर की जीवन-सरिता का पाट इतना चौडा है कि जिसके अन्दर देश-काल संबंधी, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक सभी समस्याएँ सिमटकर आ गयी हैं ।"[1] अंतत: कथनीय है कि "शेखर एक जीवनी" में चित्रित देश-काल स्वतंत्रतापूर्व भारत का देश-काल है, जिसे अज्ञेय ने अत्यंत यथार्थ रूपेण तथा पूर्ण कौशल के साथ चित्रित किया है ।

"शेखर एक जीवनी" में देश-काल का जितना स्पष्ट एवं वास्तविक चित्रण हुआ है उतना "नदी के द्वीप" में नहीं । कारण यह है कि "नदी के द्वीप" मुख्यत: एक प्रेम कथा है । अत: उसमें भावनात्मकता, कलात्मकता तथा श्रृंगारिकता जितने उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त है उतना देश-काल नहीं है । इस उपन्यास का प्रकाशन काल स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् का है किन्तु उपन्यास में चित्रित देश-काल स्वतंत्रता पूर्व का भारतीय आभिजात्य समाज का है । किन्तु यह आभिजात्य समाज भी अपने संपूर्ण जीवन के साथ इस उपन्यास में चित्रित नहीं हो सका है । क्योंकि उपन्यासकार का लक्ष्य प्रधान रूपेण नायक नायिका के प्रणय प्रकरणों को विवेचित-विश्लेषित करने में ही रहा है । उपन्यास के अंत में द्वितीय विश्वयुद्ध के सन्दर्भ में भारत की स्थिति तथा भूमिका एवं युद्ध संबंधी कुछ चित्र भी अंकित हैं ।

"पर उस दिन सबेरे उसके दोनों साथी शिविर में गये थे और अब तक लौटे नहीं थे, उधर लड़ाई की आवाज़ भी उसने सुनी थीं, निकट ही कहीं जापानी हैं, यह ज्ञात था और आक्रमण की संभावना भी की जा रही थी ।"[2]

---

1. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. 224
2. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 333

किन्तु इनसे भी इस उपन्यास के देश-काल के संबंध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं बनती । अज्ञेय का कथन है कि "मेरा विश्वास है कि "नदी के द्वीप" उस समाज का, उसके व्यक्तियों के जीवन का वह चित्र है, सच्चा चित्र है ।"[1] फिर भी यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने "नदी के द्वीप" में जिस आभिजात्य भारतीय समाज या देश-काल का चित्रण किया है वह आंशिक रूप से ही सच्चा है, पूर्णरूपेणा नहीं है । क्योंकि उपन्यास में इसी वर्ग से उद्भूत पात्र केवल प्रेम ही प्रेम करते हैं । अपना संपूर्ण जीवन व्यापन नहीं । इसी हेतु जहाँ तक प्रेम क्रियाओं का संबंध है वह एक असाधारण परिप्रेक्ष्य का विधान करनेवाला है एक सीमा तक यह संबंध मुक्त रति का समर्थन करते हैं ।

देश-काल के चित्रण में जो व्यापकता "शेखर एक जीवनी" में उपलब्ध है वह "नदी के द्वीप" में क्रमशः सीमित होती हुई "अपने - अपने अजनबी" में अत्यन्त संक्षिप्त रूप में विद्यमान है । "अपने-अपने अजनबी" का देश-काल विदेशी है । इस उपन्यास में निहित संदेश जितना स्पष्ट है उतना ही उसका देश-काल अस्पष्ट है । इसमें किसी भी स्थान समय आदि का कहीं भी उल्लेख नहीं है । यों प्रथम अध्याय में बर्फ से घिरे हुए एक मकान, द्वितीय में नदी के पुल पर बसे एक बाज़ार तथा अंतिम में किसी ऐसे शहर के बाज़ार का वर्णन है जो जर्मनों के अधिकारों में है । किन्तु किस पर्वत को उपत्यका में बने मकान में सेलमा मरी, पहले वह किस शहर को किस नदी पर बने पुल-बाज़ार पर दुकान करती थी, उपन्यास के अंत में योके किस नगर के बाज़ार में जाकर अपना दम तोड़ती है - इस प्रकार के स्वाभाविक प्रश्नों का उत्तर अज्ञेय का यह उपन्यास नहीं देता है । सारांशतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय के प्रारंभिक दो उपन्यासों में देश-काल या वातावरण जितने स्पष्ट है, यथार्थ, कलात्मक और भावोत्पादक

---

1. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ.83

रूप में चित्रित हैं उतना उनके तीसरे उपन्यास में नहीं है । देश काल के चित्रण में अज्ञेय की प्रवृत्ति वास्तव में स्थूल से सूक्ष्म, व्यापक से सीमित, बाह्य से अंतर की ओर रही है ।

उद्देश्य संबंधी दृष्टिकोण

किसी भी रचना की लक्ष्य युक्त होने की अथवा उसकी उद्देश्यता की परख दो दृष्टियों से की जा सकती है । प्रथमतः व्यापक सामाजिक दृष्टि से और द्वितीयतः रचनाकार की वैयक्तिक दृष्टि के संदर्भ में । यदि कोई रचना हमारे समाज का कोई यथार्थ चित्र या समस्या अर्थात् युग संघर्ष और युग चेतना तथा उत्थान की योजनाएँ प्रस्तुत करती है तो वह एक सलक्ष्य, सोद्देश्य रचना कही जायेगी । और यदि कोई कृति कृतिकार के किसी निश्चित मतवाद या दृष्टिकोण या उसके पूर्व निर्धारित उद्देश्य को पूर्ण और सफल रूप से वहन करती है तो वह भी सलक्ष्य अथवा अपने उद्देश्य में पूर्ण एवं सफल रचना होगी । उपन्यास जो कि मानव जीवन का चित्र होता है । वर्तमान समय में भी अपना यह कर्त्तव्य पूरा कर रहा है । इसलिए ही आधुनिक उपन्यास में सुसम्बद्धता एवं सोद्देश्यता नहीं दिखाई देती है क्योंकि वर्तमान जीवन ही उद्देश्यहीन और अनियोजित है । इसलिए आधुनिक उपन्यास अधिकतर उद्देश्यहीन नहीं, लक्ष्य युक्त नहीं है, उसका लक्ष्य ही अब निरुद्देश्यता या लक्ष्यहीनता है । अज्ञेय का प्रथम उपन्यास "शेखर एक जीवनी" का उद्देश्य एक व्यक्ति के जीवन को विविध परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके अन्तर्लोकों का विश्लेषण एवं समाज में उसका स्वतंत्र रूपेण स्थापन ही है । सामाजिक धरातल के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति शेखर के मन का प्रक्षेपण ही इस उपन्यास में अज्ञेय ने किया है । लेखक की चेतना में केवल एक व्यक्ति ही नहीं समाया हुआ है बल्कि उसके साथ ही समाज की वे स्थिति-परिस्थितियाँ भी हैं जो एक व्यक्ति के जीवन से अपने विविध स्वीकृति एवं अस्वीकृति मूलक रूपों में संलग्न रहती हैं । इसी सामाजिक अभिव्यक्ति के

कारण "शेखर एक जीवनी" मात्र जीवनी न रहकर उपन्यास का रूप धारण कर सकी है । बाल्य काल से लेकर युवावस्था तक शेखर का प्रयास समाज में स्वयं को स्थापित करना ही रहा । वह अपने परिवार एवं अपने समाज से विद्रोह करता हुआ अनवरत रूप से अपने स्थापन के प्रयत्नों में ही संलग्न रहा है । "शेखर एक जीवनी" में लेखक का उद्देश्य "व्यक्ति" का (शेखर) समाज में एक संपूर्ण एवं स्वतंत्र इकाई के रूप में प्रतिष्ठापन ही है । किन्तु उपन्यास के प्रकाशित दो भागों में - जिनमें शेखर युवावस्था तक पहुँच पाया है - लेखक का यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सका है । शेखर अभी जीवन के संघर्ष में है । वह अभी तक स्वातंत्र्य की खोज नहीं कर पाया है । किन्तु "शेखर एक जीवनी" की रचना तीन भागों में प्रस्तावित की गयी है । संभव है कि उपन्यास के पूर्ण होने पर उपन्यासकार अपने उद्देश्य में सफल हो जाए ।

जिस स्वातंत्र्य की खोज या स्व-स्थापना की समस्या "शेखर एक जीवनी" की उद्देश्य थी वह यत्किंचित् रूपायित होकर अज्ञेय के दूसरे उपन्यास "नदी के द्वीप" में भी विद्यमान है । चरित नायक भुवन अपने आप में पूर्णरूपेणा आश्वस्त नहीं हैं । वह सामाजिक परिवेश में अपना प्रतिष्ठापन चाहता है । यहाँ देखा जा सकता है कि चरितनायक केवल अपने मानसिक स्थापन के लिए ही प्रयत्नशील है, भौतिक नहीं । क्योंकि न तो वह अपने संदर्भ में संपूर्ण समाज को कोई महत्व देता है और न उसे अपनी भौतिक आवश्यकताओं की चिंता है । वह वैचारिक तौर पर तो व्यक्तिवादी है जिसके निकट स्वयं के व्यक्तित्व के अतिरिक्त संपूर्ण सामाजिक जीवन का कोई स्थान नहीं है । अर्थात् "नदी के द्वीप" में अज्ञेय का उद्देश्य ऐसे ही व्यक्ति चरित्र का उद्घाटन करते हुए उसके हेतु स्थापन की खोज है । उपन्यास के अंत में नायक भुवन के मानसिक संघर्ष के क्षणों के अंत में जब वह गौरा को पाकर स्वयं में कुछ आश्वस्त करता है तो लेखक का ध्येय व्यक्ति का स्थापन पूर्ण हो जाता है ।

मृत्यु के सामने पाकर कैसे प्रियजन भी अजनबी हो जाते हैं और अजनबी एक पहचाने हुए कैसे इस चरम स्थिति में मानव का सच्चा चरित्र उभरकर आता है । उसका प्रयत्न उसका अदम्य साहस और उसका विफल अलौकिक प्रेम भी वैसे ही और उतने ही अप्रत्याशित ढंग से क्रियाशील हो उठता है वैसे उसकी निरंतर प्रवृत्तियाँ । मानव मन की इन्हीं प्रवृत्तियों का मृत्यु क्षणों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करना अपने नवीनतम उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" में अज्ञेय का ध्येय है । उपन्यास के तीनों अध्यायों में ऐसी स्थिति परिस्थितियाँ चित्रित हैं जहाँ जीवन एवं मृत्यु का संघर्ष साक्षात् हो उठा है । उपन्यासकार ने ऐसे चिंतनीय वातावरण में मानव मन की मूल चित्तवृत्तियों का उद्घाटन बड़े ही कौशल से किया है । संपूर्ण उपन्यास में मृत्यु का भयावह वातावरण चित्रित है । लेखक ने अत्यंत कलात्मकता, लाघव एवं कुशलता के साथ ऐसे असाधारण क्षणों के परिप्रेक्ष्य में मानव मन की मूल प्रवृत्तियों का उद्घाटन किया है । इस दृष्टि से अज्ञेय अपने ध्येय में पूर्ण रूपेण सफल हुआ है । अन्ततः कथनीय है कि अज्ञेय अपने औपन्यासिक रचना ध्येयों में पूर्णतः सफल हुए है । किन्तु यह सफलता उनकी निजी दृष्टि के संदर्भ में जितनी पूर्ण है उतनी एक व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण से नहीं । वे एक व्यक्ति चरित्र के अन्तर्बाह्य प्रक्षेपणों में अधिक सफल हैं, अपेक्षाकृत एक वर्ग या समाज का अन्तर्बाह्य विश्लेषण करने में । संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने अपने ध्येयों को अपनी औपन्यासिक रचनाओं के माध्यम से सिद्ध करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है ।

भाषा शैली

अज्ञेय की औपन्यासिक भाषा शैली विषय के वस्तु-रूप के अनुसार बदल जाती है । दर्शन, राजनीति, समाज, व्यवस्था, प्रणय प्रसंग - हर विषय के अनुरूप भाषा-शैली का सही उपयोग अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में

अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है । उनकी भाषा की कलात्मकता, अर्थवत्ता, सहज स्वाभाविकता, प्रौढ़ता, रंगों की समायोजना, गंभीरता, सौष्ठव लाघव एवं विषयानुरूपता कतिपय ऐसी विशिष्टताएँ हैं जिनसे उनके उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य में भाषा शैली की दृष्टि से एक विशेष प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करते हैं । डॉ. देवराज ने यों लिखा है "अज्ञेय के उपन्यासों में हमारी भाषा एक अनोखी सादगी, स्वाभाविकता एवं स्वच्छता, कांति और परिपूर्णता लिए हुए दिखाई पड़ती है । उसका प्रत्येक शब्द मानों हाल ही में टकसाल से ढलकर नई चमक तथा व्यंजकता लेकर आगत हुआ है ।"[1]

"शेखर एक जीवनी" प्रथम खण्ड से लिये गये इस अवतरण ने समाज व्यवस्था को बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है ।

"दिन था जब धर्म की सत्ता थी । तब हमारे ठोंगी नेता विद्रोह को छोटा दिखाने के लिए कहा करते थे ; प्रजा का द्रोह धार्मिक नहीं सामाजिक है । हमें समाज सुधारने का अधिकार होना चाहिए । फिर समाज की सत्ता हुई । तब वे ढोंगी उसका सामना करते हुए डरे और कहने लगे कि हम राजनैतिक पुनर्गठन माँगते हैं । तब राज शक्ति की सत्ता हुई और वे कहने लगे कि हम राजनैतिक अपराध कब करते हैं, हम तो केवल अर्थ-संकट के विरोधी हैं ।"[2]

"तभी भुवन जगा । उसकी चेतना पहले केन्द्रित हुई उस हाथ में जो रेखा के वक्ष पर पड़ा उसकी सांस के साथ उठता गिरता - उफ़ कितने कोमल आलोड़न से, जिससे भुवन को लगा था कि उसकी समूची देह ही मानो धीरे-धीरे आलोड़ित हो रही है । मानो बहती नाव में वह सोया हो अवश्य हाथ जिन्हें वह हिला भी नहीं सकता, अवश्य देह - लेकिन एक स्निग्ध गरमाई

---

1. डा. देवराज - आधुनिक समीक्षा - पृ. 138
2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 34

की गोद में अवश - चाँदनी वह अधिक पी गया है - चाँदनी मदमाती उन्मादिनी ।.... और उस मीठी अवशता को समर्पित वह भी फिर सो गया ।"[1] प्रणय प्रसंग का यह चित्र कितना सुन्दर है ।

"शायद यही वास्तव में मृत्यु होती है, जिसमें वास्तव में कुछ भी होता नहीं, सब कुछ होते-होते रह जाता है । होते होते रह जाना ही मृत्यु का वह विशेष रूप है । जो मनुष्य के लिए चुना गया है जिसमें कि विवेक है, अच्छे बुरे का बोध है । वह उसमें न होता तो उसका मरण संपूर्ण हो सकता ।

यह हमारे युगों से संचे हुए नीति बोध की सजा है कि हमेशा मरना भी अधूरा ही हो सकता है - मरकर भी कुछ हिसाब बाकी रह जाता है ।"[2] दर्शन का स्वर यहाँ स्पष्ट रूप धारण कर लेता है । अंततः संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में अज्ञेय की भाषा शैली संबंधी उत्कृष्टता सर्वसिद्ध है । वस्तुतः अज्ञेय की भाषा शैली आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण है ।

अज्ञेय ने जब अपने उपन्यासों का रचनारंभ किया था, तब हिन्दी उपन्यास साहित्य शिल्पविधि की दृष्टि से पर्याप्त अविकसित अवस्था में था । ऐसे ही काल में अज्ञेय ने शेखर एक जीवनी की रचना करके शिल्प संबंधी नया प्रयोग किया । "शेखर एक जीवनी" में अज्ञेय ने आत्मविश्लेषण, पूर्वदीप्ति, चेतना प्रवाह तथा क्लोज़अप, स्लोअप जैसी अनेक नूतन शिल्प विधियों का प्रयोग किया है । "शेखर एक जीवनी" की शिल्प विधि अत्यन्त उन्मुक्त है । किन्तु इस उन्मुक्तता से रचना में कहीं अव्यवस्था नहीं आ पायी है । इस उपन्यास में अज्ञेय ने जिन औपन्यासिक शिल्पविधियों का प्रयोग किया है, वे ही उनकी

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ.148
2. अज्ञेय - अपने - अपने अजनबी - पृ.18

दूसरी औपन्यासिक कृति "नदी के द्वीप" में भी प्रयुक्त हुई हैं । "नदी के द्वीप" की कहानी का प्रारंभ हो लेखक ने पूर्वदीप्ति प्रणाली द्वारा किया है । "नदी के द्वीप" में भी अनेक नूतन शिल्प विधियाँ प्रयुक्त हुई हैं । "अपने-अपने अजनबी" शिल्प विधि की दृष्टि से कोई नवीन प्रयोग नहीं है । शिल्प इस रचना में भी ऊपर से आरोपित नहीं लगता बल्कि वस्तु से पूर्णरूपेण समायोजित ही है । अज्ञेय के उपन्यासों का शिल्पगत अध्ययन काफी विस्तार से आगे के अध्याय में किया जाएगा ।

निष्कर्ष

अज्ञेय व्यक्तिवादी चेतना को सर्वाधिक प्रभावशाली रंग-ढंग में प्रस्तुत करनेवाले सशक्त उपन्यासकार है । उनके उपन्यासों में मानवीय व्यक्तित्व की परिपूर्णता की ओर क्रमिक यात्रा लेखक को चिन्तन का केन्द्रीय तत्व है । उनके उपन्यास इस प्रकार व्यक्तित्व का और इसलिए अंततः यथार्थ का भी समग्र चित्र उपस्थित करते हैं । दोनों भागों में प्रकाशित शेखर एक जीवनी उनका पहला उपन्यास है, प्रस्तावित तीसरा छपा नहीं । लेखक का दूसरा उपन्यास "नदी के द्वीप" वयस्क शेखर की प्रणय कथा जैसा लगता है । "अपने-अपने अजनबी" उनकी तीसरी औपन्यासिक रचना है । यह एक दार्शनिक उपन्यास है । उनकी ये औपन्यासिक रचनायें उनकी रचनाधर्मिता के साक्ष्य हैं जो कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से बहुचर्चित है । उनकी इन रचनाओं से हिन्दी उपन्यास साहित्य को नई दिशा और दशा प्राप्त हुई । अज्ञेय की निजी रचना दृष्टि स्थूल से क्रमशः सूक्ष्म की ओर अग्रसर होती हुई एक प्रकार से संपूर्ण आधुनिक हिन्दी उपन्यास की स्थूलता के प्रति क्रान्ति का प्रतीक है । यही कारण है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यास अपने अंतिम प्रभाव में एक अन्वेषित स्थायित्व को प्राप्त करता जा रहा है ।

अध्याय तीन

कथ्यगत विशेषताएँ - अज्ञेय के उपन्यासों में

उपन्यासों का मूलभूत आधार उसका कथातत्व है । उपन्यास का कथ्य कहानी, अनुभव और विचार का त्रिकोण है । इसका अनुपात तो प्रत्येक उपन्यासों में अलग-अलग होता है । उपन्यासकार अपने अनुभव क्षेत्र में बिखरी हुई किसी रोचक यथार्थ घटना को लेकर उपन्यास की नींव डालता है । प्रेमचन्दपूर्व एक ऐसा युग रहा है, जबकि उपन्यासों में कथानक का होना आवश्यक समझा जाता रहा है । लेकिन कथानक कल्पना तथा रोमान्स प्रधान होता था । प्रेमचन्द ने पहले-पहल उपन्यास के कथानक को कल्पना तथा रोमान्स के जगत से हटाकर यथार्थ जगत में ले आने का सराहनीय कार्य किया था । इस युग के उपन्यासों का कथानक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषयों से संबंधित है । सुसंगठित कथावस्तु इस युग के उपन्यासों की विशेषता है । प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का प्रारंभ कथा मुख्य समस्या से संकेतित करते हुए किया गया है । कथा विकास को भावी घटनाओं का संकेत भी जगह-जगह पर देते रहे है ।

इधर स्वतंत्रता के बाद का युग संत्रास का युग रहा है । चारों तरफ असंतोष, घुटन, छटपटाहट और आक्रोश के बादल मण्डरा रहे । आज का आम आदमी भी प्राचीन एवं रूढिग्रस्त मान्यताओं से पूर्ण रूप से ऊब चुका है । इसी की अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में खास तौर से उपन्यास साहित्य में भी कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर परिलक्षित होने लगी । आज के साहित्यकारों को पूर्व प्रेमचन्द युग के साहित्यकारों की भाँति लंबे कथानकों के प्रयोग में एकदम रुचि नहीं है, क्योंकि आज प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अतिव्यस्त है । साहित्यकार भी इससे अछूते नहीं हैं । उनका कार्य कथानक के लघु रूप से संपन्न हो रहा है । यही कारण है कि आज कथानक की लम्बाई अति लघु हो गयी या उसका ह्रास हो गयी । मतलब यह है कि आज की परिस्थितियों ने मानव को एक सीमित दायरे में रखा है, या मानव अधिकतर व्यक्तिकेन्द्रित हो गया है । यही व्यक्ति-केन्द्रित रूप हम आज साहित्य में भी देख सकते हैं ।

व्यक्तिवादी साहित्य पर पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि आज के प्रत्येक व्यक्ति पाश्चात्य संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के संपर्क में रहनेवाला है या उसके अनुसार जीवन यापन करनेवाला है । इसलिए आज का साहित्य दरअसल व्यक्ति केन्द्रित है । इसमें व्यक्ति मन की अतल गहराई को नापने एवं विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है । इसका कथ्य बिलकुल निराला है । इसका शिल्प भी पूर्ववर्ती औपन्यासिक शिल्प विधान से एकदम भिन्न है ।

यह भिन्नता या कथ्य का ह्रास अज्ञेयजी के तीनों उपन्यासों में देखा जा सकता है । जहाँ एक ओर "शेखर एक जीवनी" में घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए विशन को शब्दबद्ध करने का प्रयास है, वहीं "नदी के द्वीप" में दर्द भरी प्रेम की कहानी है और "अपने-अपने अजनबी" तो बर्फ के नीचे काठघर में दबी तरुणियों की कथा है । अज्ञेयजी के "शेखर एक जीवनी" और "नदी के द्वीप" के कथानक में जो लम्बाई थी वह "अपने-अपने अजनबी" में आते-आते एकदम लघु हो गयी ।

अज्ञेय ने व्यक्ति मन में घुमड़ती कुण्ठाओं और ग्रन्थियों को आधार बनाकर अन्तर्मुखी पात्रों की सृष्टि की है । नितांत आत्मजीवी, स्वच्छन्द रोमानी जीवन-धारा का चित्रण करनेवाले उनके उपन्यास सामाजिक जीवन में व्याप्त संघर्ष और उथल-पुथल से सर्वथा असंपृक्त है । सामाजिक जीवन मूल्यों के स्थान पर व्यक्तिगत मूल्यों और मान्यताओं के समर्थन ने कथ्यगत नवीनता का परिचय दिया है । साथ ही साथ उपन्यासकार ने प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक, रुग्णता, सामाजिक निरपेक्षता और जड़-मान्यताओं के प्रति व्यक्ति मन के विद्रोह को रेखांकित भी किया है ।

अज्ञेय के उपन्यासों में व्यक्ति अपने समूचे यथार्थ और नियति के साथ प्रस्तुत हुआ है । व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों के कथ्य को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है । प्रथम वर्ग के उपन्यास का कथ्य सैक्स और प्रेम के जटिल सन्दर्भों से जुडा हुआ है । जबकि दूसरे प्रकार के कथ्यवाले उपन्यासों में व्यक्ति के अकेलापन और अजनबीपन की बात कही गयी है । अज्ञेय के "शेखर एक जीवनी" और "नदी के द्वीप" प्रथम वर्ग में आते हैं तो "अपने-अपने अजनबी" दूसरे वर्ग के अन्तर्गत ।

शेखर एक जीवनी

अज्ञेयजी के उपन्यासों का कथानक तो छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित है । उनका पहला उपन्यास "शेखर एक जीवनी" के पहले भाग "उत्थान" में कुल पाँच खण्ड हैं । वे इस प्रकार हैं - प्रवेश, ऊषा और ईश्वर, बीज और अंकुर, प्रकृति और पुरुष, पुरुष और परिस्थिति । दूसरे भाग "संघर्ष" में भी कुल चार खण्ड हैं । वे हैं - पुरुष और परिस्थिति, बन्धन और जिज्ञासा, शशि और शेखर, धागे रस्सियाँ और गुंझर अब पहले भाग के प्रत्येक खण्ड का कथ्य संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा हैं ।

प्रथम खण्ड - ऊषा और ईश्वर

इस खण्ड में शिशु मानस की विविध जिज्ञासाएँ उभरकर सामने आती हैं । शेखर को जनम-मरण से संबंधित प्रश्नों को ठीक से उत्तर नहीं मिलता है । उसने जो-जो प्रश्न पूछे उन सब का उत्तर "ईश्वर करता है" रूप में ही मिलता है । उदाहरण के लिए "बच्चे कहाँ से आते हैं", "कैसे मरते हैं", "मरकर क्या होता है ?"[1] इन सभी प्रश्नों का एक ही जवाब एक प्रकार से शेखर के

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 83

अंतरमन में आशंका उत्पन्न कर देता है । वह सोचने लगता है कि ईश्वर है या नहीं ?

द्वितीय खण्ड - बीज और अंकुर

इस खण्ड के प्रारंभ में शेखर का जीवन सूना दिखायी देता है । इस सूनेपन के कारण उनके जीवन में एक झूठी तेज़ी आ गयी थी । गति का एक भ्रम, जबकि वास्तव में वह निश्चल खड़ा था । खण्ड के मध्य भाग में आते-आते मालूम हो जाता है कि शेखर के मन में विदेशी चीज़ों के प्रति घृणा हो गयी है । वह गाँधीवाद की ओर झुक जाता है और उसे समझने लगता है । पिता के यह पूछने पर "तुम हर वक्त गाँधी का नाम क्यों चिल्लाया करते हो तो शेखर ने कहा "मैं गाँधी को मानता हूँ । मैं उसके बताये पथ पर चलूँगा ।"[1] पिता ने हँसकर कहा उस पथ पर चलोगे । गाँधी की शिक्षा तुमने समझी भी है । कोई तुम्हारे गाल पर थापड़ लगाये तो क्या करोगे । शेखर ने बिना हिचकिचाहट से कहा दूसरे गाल आगे कर दूँगा ।

शेखर की माँ को जब एक लड़की पैदा होती है, उस समय शेखर के मन में जन्म संबंधी प्रश्न पुन: उठ खड़े होते हैं । वह सरस्वती से ठीक बताने के लिए आग्रह करता है । इस बार वह इन उत्तरों को ग्रहण नहीं करना चाहता कि बच्चों को दायी लाती है । डाक्टर लाता है, ईश्वर देता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर को ठीक-ठीक जानने के लिए इच्छुक है । खण्डांत में शेखर के भीतर काम भावना का भी बीजारोपण स्पष्टत: दिखायी देता है । इसका संकेत खण्ड का अंतिम स्वप्न से मिल जाता है । स्वप्न का अल्पांश यहाँ उद्धृत है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 124

"रात को शेखर ने एक स्वप्न देखा । एक विस्तीर्ण मरुस्थल । दुपहर की कड़कड़ाती हुई धूप । शेखर एक ऊँट पर सवार कर मरुस्थल को चीरता हुआ भागा जा रहा है.... सबेरे से याकि पिछले रात में वह वैसे भागा जा रहा है और उसके पीछे कोई आ रहा है.... और देखते देखते एक दिव्य शांति उसके ऊपर छा जाती है और जानता है कि जिसे खोजने वह आया था जिसके लिए वह भाग रहा था... और यह शान्ति इतनी मधुर है कि शेखर को रोमांच हो आता है । वह दबाकर सरस्वती का हाथ पकड लेता है ।..... वह जाग पडा । स्वप्न इतना सजीव, इतना यथार्थ था कि शेखर ने हाथ बढ़ाया कि सरस्वती का हाथ पकडे । वह उसने नहीं पाया ।"[1]

तृतीय खण्ड प्रकृति और पुरुष

खण्डारंभ में ही यह दिखाया गया है कि शेखर को सरस्वती में अपने छिपा हुआ हितैषी अथवा शुभचिंतक दिखायी देने लगा था । उसे लगा था कि जिस प्रकार जो वांछित है, प्रिय है, समझने और सहानुभूति करनेवाला है । उसका पूँजीभूत रूप सरस्वती है । इसी खण्ड में शेखर को नारी एवं पुरुष के परस्पर संबंधों के रहस्य का भी पता लगता है । एक स्थान पर शेखर एक बडी सी सिसकी लेकर अपने अथाह आँसुओं को पीकर कहता है, "शारदा मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ ।"[2]

शेखर एकांत में जाकर रवि ठाकुर की "गीतांजली" पढ़ने लगा था । इस रहस्यवादी कविता में उसे एक ऐसा रस मिलने लगा था कि जिसे उसने कभी किसी भी वस्तु में नहीं पाया था । एक पद्य पढ़ते ही उसका

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 139-140
2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, पहला भाग - पृ. 184

सारा पिछला जीवन मानो मैल की तरह धुलकर उससे अलग हो जाता है । और उसे अनुभव होता है कि वह किसी देवता की अर्चना के लिए मनसा वाचा, कर्मणा पवित्र होकर खड़ा है । और कभी एक उल्लास उसके खून में नाचने लगता है । अब वह शांति से भी प्यार करने लग जाता है । एक स्थान पर शांति से अपने कोमल स्वर में कहा शान्ति मैं तुम्हें छू सकता हूँ ? शांति ने आँखों से ही अनुमति देते हुए कहा आओ ।[1] शेखर के पास जाकर बड़े आदर से डरते डरते अपना एक हाथ शान्ति के ढोडी के नीचे कंठ पर रख दिया, रखा नहीं दिया, उँगलियों से कंठ छुआकर शांति ने सिर आगे झुकाकर उसकी उँगलियों ने चिबुक से दबा ली । बहुत ही हलके कोमल कृतज्ञता से दब से....[2]

खण्ड के अंत में आते-आते शेखर अपने आप को एक संपूर्ण मुक्त और पुरुष समझने लगता है । उस दिन उसने सिर उठाकर देखा कि वह समुद्र पारकर आया है, कि वह संपूर्ण है, मुक्त है और पुरुष है ।

चतुर्थ खण्ड पुरुष और परिस्थिति

इस खण्ड से यह स्पष्ट हो जाता है कि शेखर अब घर से निकलकर समाज के खुले संपर्क में आ गया है । उसका अन्तस्थल कुछ-कुछ घबराहट से भर उठता है । शेखर के ही शब्दों में "कैसा होगा कालेज ? कैसा होगा बोर्डिंग ? कैसे खडे लडके नौकर रसोइया, खाने का ढंग, रहने का कमरा...." कालेज में ही शेखर की कुमार से मित्रता होती है । यदा-कदा शेखर कुमार की आर्थिक सहायता करने लग जाता है । वैसे उसे यहाँ विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है । कुमार ने ही शेखर का परिचय कालेज और विद्यार्थियों

1.

2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 185

से कराया । धीरे-धीरे शेखर और कुमार की मित्रता इतनी प्रगाढ हो जाती है कि शेखर को लगने लगता है कि हम दोनों के अतिरिक्त इस दुनिया में तीसरा कोई नहीं है । शेखर के ही शब्दों में "देखो कुमार ऐसा लगता है, जैसे इस दुनिया में तीसरा कोई नहीं है ।"[1] वैसे शेखर को रूढ़ियों को प्रश्रय देनेवालों के घोर विरोधों से ही अपना मार्ग प्रशस्त करना पड़ता है । अंत में वह मद्रास से विदा लेने के लिए समुद्र तट पर चल पड़ता है ।

मद्रास के प्रान्त उसको अपरिचित हो गये थे । वह जानता था कि अब वहाँ नहीं लौटेगा । अब परिस्थिति से उसका संग्राम उस उच्छृंखल की मानलीला अब दूसरी युद्ध भुख पर होगी । शारदा से विदा, शारदा के देश से विदा । बहुत देर तक वह उस समुद्र के उमडने और उतरने को देखा किया, और उसकी अगाध रहस्यमयता को[2]

दूसरा भाग

पहले भाग के समान इस भाग के प्रत्येक खण्ड के विषय में थोडी जानकारी देने का प्रयास आगे किया जाएगा ।

प्रथम खण्ड पुरुष और परिस्थिति

नीलगिरी प्रदेश में शेखर अपने माता-पिता और भाईयों को पाँच सौ मील पीछे छोड आया था । और अब मद्रास भी पीछे छूटा जा रहा है । गाडी उसे खींचती हुई बेतहाशा उत्तर की ओर दौडी चली जा रही है, एक हज़ार मील जाकर ही दम लेगी । कहने का तात्पर्य यह है कि शेखर अब

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 201
2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 201

दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आकर संघर्ष करता है । होस्टल के लड़कों के विचार जानने के लिए तथा उनके आदर्श एवं उनकी कामनायें समझने के लिए वह उन लड़कों जैसी वेश-भूषा धारण करता है ।यहीं पर उसका परिचय मिस कौल नाम की तीन बहिनों से करा देता है । धीरे-धीरे उसके परिचय का क्षेत्र बढ़ता जाता है ।

शेखर श्रीनगर पहुँचकर गली-गली छान मारता है । उसे लगता है कि सौन्दर्य निरी कल्पना है । यही पर शशि के तीन लाईन का पत्र उसे मिलता है । पत्र में शशि के पिता की मृत्यु के बारे में लिखा हुआ है । वह अपने आप को ऐसा मानने लग जाता है कि जैसे व्यक्ति की अनुभूति सुख-दुःख उसे नहीं छूती । शेखर विद्यावती के पास आता है, वहाँ शशि बैठी पंख झल रही थी और शशि की छोटी बहिन गैरा हाथ में पानी के गिलास लिए खड़ी थी । यही पर शेखर के भीतर गहरी संवेदना का स्रोत भी उमड़ पड़ता है । और वह पुनः मानने लगता है कि मैं निर्वैव्यक्तिक नहीं हूँ । और ईश्वर को सरदार भी बनाया जाता है । वह स्वयं सेवकों की देख-रेख करने लग जाता है । अनुशासन के लिए दिन-रात पिसते शेखर ने एक दिन उसके विरुद्ध घोर अपराध भी किया । उसे शशि का यह वाक्य - दुख उसकी आत्मा को शुद्ध करता है, जो उसे दूर करने की कोशिश करता है और किसी का नहीं । बार-बार याद आने लगी है । सी.आई.डी. को पीटने के अपराध में उसे सिपाही खींच ले जाते हैं । पुलिस की मोटर में बैठने के बाद पुनः शेखर के मन को शशि के कहे हुए शब्द कुरेदने लगते हैं ।

द्वितीय खण्ड - बन्धन और जिज्ञासा

इसमें लेखक ने शेखर के जेल जीवन का चित्रण किया है । जेल जाते समय ही उसे सीख मिली थी कि खूब अकड़कर रहिएगा, वैसे अकड़ तो शेखर के भतीर मिला था, जो असहयोग के जुमाने में यहाँ आया था । शेखर ने

विद्याभूषण से ही हिंसा के उचित एवं अनुचित पहलुओं पर जानकारी प्राप्त की थी । शशि जेल में उससे मिलने आयी थी । शशि की याद उसे बराबर कुरेदती रहती थी, यहीं जेल में रोकर वह कहता हैं "रो सकना अपने प्रति - अपने हृदय के प्रति सच्चे रहने का लक्षण है । शेखर का परिचय यहीं पर ऊपर शुभ्रजटा और नीचे धवल दाढ़ीवाले मदन सिंह से हुआ । शेखर मदनसिंह के व्यक्तित्व से अति प्रभावित हो उठता है । मदनसिंह स्वर चित्र सूत्रों को पढ़कर वह और भी प्रभावित हो उठता है । जेल का एक और साथी है मुहम्मद मोहसिन, जिसे बगावत फैलाने के जुर्म में एक साल की सजा हुई है ।

इधर शेखर जेल में और उधर शशि का विवाह हो रहा था । यद्यपि शशि अभी विवाह नहीं चाहती थी, फिर भी आषाढ़ में तिथि नियत हो गयी थी । शेखर से मदद की अपेक्षा की थी । लेकिन वह निरर्थक हो था । क्योंकि वह जेल में कैद था । शेखर विवाह के विषय में जानकर सोचता है और कह उठता है, मैं बाहर होता तो कुछ करता ही । लड़ता-झगड़ता बहस करता ।[1]

शेखर बाबा मदनसिंह से हिंसा एवं अहिंसा पर भी काफी चर्चा करता है । शशि की शादी अन्ततोगत्वा हो ही जाती है । शशि के लिखे हुए पत्र शेखर के पास आते रहे हैं । जेल में ही मामी की हत्या के अपराध में पकड़ा गया रामजी भी शेखर का साथी हो जाता है । जो गाने गा गाकर शेखर का मन बहलाया करता था लेकिन कानून के शिकंजे में ऐसा फंसा था कि जिसने उसको फांसी के तख्ते पर लटकवा दिया । शेखर जेल से बाहर आ गया था । फाटक उसके पीछे बन्द हो गये थे । अब वह मुक्त था । और यहाँ पर दूसरा खण्ड समाप्त हो जाता है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 68

तृतीय खण्ड   शशि और शेखर

इस खण्ड का आरंभ शेखर की रिहाई पर मिस्टर बर्नेस द्वारा बधाइयाँ देने से होता है । शशि के घर शेखर का आना-जाना बराबर होने लगता है कि जैसे हम दोनों अपरिचित ~~सा~~ हो गये हैं । यह तो उसका केवल भ्रम ही था । शशि के हृदय में अभी भी वही भाव उसके प्रति विद्यमान था । शेखर अब एक किराये के मकान में रहने लग गया था । उसने साहित्य का क्षेत्र चुन लिया था और उसे अपना भविष्य हिन्दी में ही दिखायी देने लगा था । शशि और शेखर के बीच अटूट प्रेम पलने लगा था । एक बार शेखर जीवन से इतना उदासीन हो जाता है कि आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाता है । शेखर के ही शब्दों में "गया था तब नहीं जानता था, पर चलते-चलते जान पड़ा कि आत्महत्या का उपाय खोज रहा हूँ ।"[1] इसे सुनकर शशि काँप उठती है और वह शेखर को इस दुष्कृत्य से बचाती है । शशि के ही शब्दों में "अभी तुम्हारा मन नहीं धुला शेखर, मैं कहती हूँ तुम नहीं जाओगे ?"[2] और आगे वह फिर कहती है -"मेरी तरफ देखो शेखर - मेरी आँखों की तरफ क्या तुम मनमानी कर सकते हो अकेले हो ?"

चतुर्थ खण्ड   धागे रस्सियाँ और गुंझर

ये तीनों शब्द क्रमशः शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कार की बड़ी गाँठों के प्रतीक है । परित्यक्ता शशि भी शेखर के पास आ गयी है । शशि के ही शब्दों में आ गयी, बस अब वहाँ लौटना होगा - नहीं मुझे मत छूओ, मैं अभी चल जाऊँगा..... उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, दूसरा भाग - पृ. 168
2. वही - पृ. 168

पति की दृष्टि में भ्रष्टा एवं पापाचारिणी होने के बावजूद शशि अपने पति रामेश्वर के यहाँ ही लौट जाना अच्छा समझती है, लेकिन शेखर के आग्रह के कारण वह उसके पास ही रह जाती है । पति द्वारा बेरहमी से पीटे जाने के कारण शशि को किडनी में काफी आघात पहुँचा था । लेकिन चोट ऐसी कि शशि पुनः अस्वस्थ होने लगी और इतना हो गया कि एक दिन शशि का सारा शरीर निःस्पन्द हो गया ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि शेखर एक जीवनी के दूसरे भाग में शेखर एक गतिशील पात्र के रूप में हमारे सम्मुख आता है । बाबा मदनसिंह शशि आदि द्वारा उसके अहं एवं विद्रोह शक्ति का परिष्कार करता है । उसका अधूरा विद्रोह शिक्षा के लिए तथा विदेशी शासन के विरुद्ध लडने से अधूरा नहीं रह जाता । पात्रों के संपर्क में आते ही उसके अन्दर स्थित मानवता का उद्रेक होता है । अहंमन्यता नम्र हो उठती है और स्वस्थ विद्रोह शक्ति में परिवर्तित हो जाती है । शेखर की गतिशीलता के कारण कथानक में भी एक गति आयी है । उसका प्रवाह और बढ गया है ।

शेखर एक जीवनी के दूसरे भाग के चारों खण्डों की कथा से स्पष्ट हो जाता है कि इस में पहले भाग की अपेक्षा अधिक सुसंगठित प्रवाह, क्रमबद्धता एवं रोचकता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ शेखर एक जीवनी पहले भाग का कथानक स्मृतियों की बेतरतीब योजना के कारण अस्त-व्यस्त प्रतीत होता है ।

स्वतंत्र भारत में मध्यवर्ग की एक अलग अस्मिता है । मध्यवर्गीय परिवार में तनाव, गुस्सा, संबंधहीनता आदि शुरू हो जाता है । मध्यवर्ग की यही विडम्बना है कि वह रूढियों और टैबूज को तोडने की बलवती इच्छा रहते

हुए भी उन्हें तोड नहीं पाता । इस असफलता के फलस्वरूप उसमें कुंठा, एकाकीपन, घुटन, निरुद्देश्यता, नपुंसक, आक्रोश आदि मानसिक स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में युवावर्ग के आक्रोश और उसके फलस्वरूप व्यक्ति-विद्रोह ने देश के विचारों का पूरा ध्यान आकृष्ट किया । युवा वर्ग के आक्रोश और अनुशासन हीनता की समस्या कोई नयी नहीं हैं । युवा लोग स्वयं अपने भविष्य के निर्माण के प्रति सचेष्ट है और परिवर्तन की तलाश में हैं । यदि उसका विद्रोह गलत दिशाओं में भटकता है तो उसका प्रमुख कारण यह है कि उसके पास असंतोष है । क्षोभ है, विद्रोह है । आदर्शवादी ललक है । सही को सही, गलत को गलत कह सकने का साहस है । भारतीय युवा को अपने लक्ष्य की दिशा भले ही न ज्ञात हो, अपने देश का वर्तमान उसके सामने बिलकुल अस्पष्ट है । युवा पीढ़ी जान गयी है कि उसके सामाजिक परिवेश में ईश्वर, धर्म, निष्ठा, आस्था, कर्तव्य, ईमानदारी आदि हवा में तैरते शब्द रह गये हैं । ऐसी स्थिति में युवा आक्रोश के कथाकार अज्ञेय इस कथा को कल्पना एवं सत्य के सम्मिश्रण से उपन्यास के व्यापक परिवेश में अत्यंत कुशलता एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं । कथानक की महत्ता इसी पर आधारित होती है कि उसमें उपयोगिता का अंश कितना है और उसमें घटनाओं का संगुफन किस प्रकार किया है । इसी के आधार पर कथानक को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । एक तो सुगठित कथानकवाले उपन्यास, दूसरे प्रकार के कथानक में घटनायें बिखरी रहती है, उपन्यासकार उन्हें किसी एक सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास नहीं करता । अज्ञेयजी के उपन्यास के कथानक विश्रृंगलित है ।

नदी के द्वीप

"नदी के द्वीप" और "शेखर एक जीवनी" के प्रकाशन और साहित्य जगत में उनके मनोवैज्ञानिक आत्मविश्लेषण तथा व्यक्ति चरित्र को

अनूठी विषय वस्तु ने अज्ञेय को प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी आदि से आगे और सर्वथा भिन्न श्रेणी में उपस्थित कर दिया । "नदी के द्वीप" अज्ञेय के शेखर के रोमान्टिक विद्रोह की अगली कड़ी जैसा है । प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु ग्यारह खण्डों या परिच्छेदों में विभक्त है जिनका क्रम इस प्रकार है, भुवन, चन्द्रमाधव, गैरा, अंतराल, रेखा, भुवन चन्द्रमाधव, रेखा, अंतराल गैरा उपसंहार । प्रत्येक पात्र को दो परिच्छेद दिये गये हैं ।

यह एक प्रणयमूलक और रोमान्टिक उपन्यास है । घटना प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से काफी है । पर घटना प्रधान उपन्यास नहीं है । प्रस्तुत उपन्यास का केन्द्र बिन्दु यौनभाव है । भुवन एक वैज्ञानिक भावुक, संवेदनशील और कला रुचि संपन्न पात्र है जो रेखा को पाने के लिए एक आंतरिक तड़प से पीड़ित है । रेखा सुशिक्षित और संवेदनशील नारी है जिसने अपने पति हेमेन्द्र से संबंध विच्छेद कर लिया है । वह भुवन के प्रति समर्पित है और अंत में डा. रमेशचन्द्र के साथ विवाह कर लेती है । गैरा पहले भुवन की शिष्या और प्रेमिका बन जाती है । चन्द्रमाधव स्पष्ट रूप से यौन भाव से पीड़ित पात्र है ।

प्रस्तुत उपन्यास के कथ्य की कई विशेषताएँ हैं । स्वतंत्रता के बाद लिखे गये कुछ उपन्यासों में नर-नारी के काम संबंधों की खुली चर्चा हुई है । प्रेमचन्द युग में यौन भावना, समाज स्वीकृत रूप ही उपन्यासों में आ सका था । प्रेमचन्दोत्तर युग के व्यक्ति-केन्द्रित उपन्यासकारों ने प्रेम और यौन संबंधों का बहुत हद तक वर्जनामुक्त चित्रण करना चाहा था । आधुनिक उपन्यासों में डी. एच. लारेंस एवं ब्लादिमीर नाबोकाव से प्रभावित उपन्यासकारों द्वारा उन्मुक्त, स्वच्छन्द प्रेम और यौन भावों का नग्न आवरणहीन चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है । इस प्रकार प्रेम और यौन को सहज मुक्त और स्वाभाविक बनाकर वर्जना के क्षेत्र से बाहर का दिखाया गया है ।

दाम्पत्य जीवन में सैक्स का उल्लेखनीय स्थान है । लेकिन यही सबकुछ है यही मानना ठीक नहीं है । यौन संबंधों पर आधारित प्रेम ही वैवाहिक जीवन का एकमात्र कपोनेन्ट नहीं है । साहचर्य रोमान्स और बौद्धिक प्रेम आदि भी विवाह के बाद आवश्यक होते हैं । इनकी अनुपस्थिति में अनेक संतानों के होने के बावजूद भी दाम्पत्य जीवन कटुआहटों का पुंज बनकर रह जाता है । प्रस्तुत उपन्यास के, रेखा और हेमेन्द्र के दाम्पत्य संबंधों में आये तनाव के मूल में कोई-न-कोई सैक्स संबंधी विसंगति है । रेखा अपने पति के साथ एडजस्ट नहीं कर पाती क्योंकि वह उसे अपनी पत्नी के रूप में न स्वीकार करता । अर्थात् रेखा अपने पति से संतृप्त न होने के कारण उनके दाम्पत्य जीवन में तनाव आ गयी । इसलिए रेखा भुवन की ओर आकर्षित होती थी । परिणाम स्वरूप रेखा और हेमेन्द्र के दाम्पत्य को परिणति संबंधहीनता और विवाह विच्छेद में होती है । इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यासकार ने नयी कथाभूमि चुनकर दांपत्य संबंधों के सीमित संसार को काफी विस्तार किया है ।

अपने-अपने अजनबी

"अपने अपने अजनबी" के कथानक में एक गहन व्यापकता है । कथ्य के आधार मात्र दो नारियों के इषत्-साहचर्य का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण है । उपन्यास तीन खण्डों में विभक्त है । योके और सेलमा खण्ड, सेलमा खण्ड, योके खण्ड । पहले खण्ड में योके और सेलमा की वर्तमान दशा का चित्रण किया गया है । एक अनाम देश की हिमगिरी पर एक लकडी के मकान में कैंसर से पीडित वृद्धा सेलमा रहती है । जाडे में इसके बच्चे नीचे मैदान में चले गये हैं । सेलमा जानती है कि उसका अंत निकट है । और वह मृत्यु से अकेला मिलना चाहती है । किन्तु संयोगवश योके नामक एक तरुणी भी उसकी मेहमान बनकर उस मकान में ठहर जाती है । दुर्भाग्यवश वह मकान बर्फ के नीचे दब जाता है ।

तब से वे दोनों संसार से अलग और काल से भी अलग हो जाती हैं । आंटी सेलमा वृद्धा है और उसके लिए तो बर्फ के नीचे दब जाना कोई नयी बात नहीं थी । लेकिन तरुणी योके के लिए यह बिलकुल नयी बात है । दोनों के भीतर मानसिक द्वन्द्व सा छिडा हुआ है । तरुणी योके जीना चाहती है । इसलिए वह मृत्यु के भय से अति पीडित दिखाई देती है । बूढ़ी सेलमा रुग्णावस्था में है । वह कैंसर से पीडित है । उसकी हालत दिन-प्रति-दिन बिगडती ही जाती है । और मृत्यु के वरण में ही वह अपना कल्याण समझती है । उसके लिए मृत्यु ही जीवन का सबसे बडा सत्य है । आशा और यौन से भी गतिशील चेतनावाली योके निर्वाणोन्मुख सेलमा के साथ रहने के लिए विवश है । किन्तु योके की जिजीविषा हारना नहीं चाहती है ।

दूसरे खण्ड में सेलमा के अतीत जीवन की कथा है । जो स्मृति के आधार पर योके को सुनाती है । नदी के पुल पर एक बाज़ार का चित्र है जो बाढ़ की विभीषिका की चपेट में आ जाने के कारण लगभग आधा नष्ट हो चुका है । दूसरी बाढ़ में तो सारे पुल की नींव हिल गयी दोनों सिरे तो टूटकर बह गयी । चारों ओर अथाह पानी है । उस अथाह पानी के बीच तीन खंभोंवाले एक पुल पर सेलमा, यान्एक्लोफ और फोटोग्राफर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाये गये हैं । प्रलयकारी बाढ़ ने सब कहीं मृत्यु का दृश्य उपस्थित किया है । फोटोग्राफर तो अपने अस्तित्व को खतरे में देखकर नदी में कूद जाता है । अधिक दिनों तक बाढ़ के रुकने की संभावना देखकर वहाँ बचे हुए लोग भी मृत्यु के भय से त्रस्त हो जाते हैं । सेलमा और यान परस्पर अजनबी है । लेकिन अपने अस्तित्व को खतरे में देखकर ये दोनों मिल जाते हैं । और संयोगवश एक नाव आकर उन लोगों का उद्धार करती है । सेलमा और यान पति-पत्नी बनकर नया जीवन आरंभ करते हैं । उनको तीन संतानें होती हैं । सेलमा की मृत्यु से यह अध्याय समाप्त हो जाता है ।

तीसरे अध्याय में प्रकृति और मानव के बीच का संघर्ष नहीं है । मानव की पशुता और मानव के विवेक के बीच का संघर्ष है । यहाँ मानव अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने नैतिक विवेक की विशिष्टता कायम करता है । शहर पर जर्मनों का अधिकार और आतंक दिखाया गया है । दृश्यांत में जर्मन सिपाहियों के द्वारा वेश्यावृत्ति के लिए मज़बूर की गयी तरुणी योके के जीवनांत का वर्णन है । सेलमा की मृत्यु के उपरांत बर्फ घिरे घर से निकली योके अपने प्रेमी पाल की तलाश करती है । इस जीवन को वह पसंद नहीं करती । वह जीना चाहती है, सच्चे अर्थों में जीना चाहती है । वह यह भी चाहती है कि उसका जीवनांत एक अच्छे आदमी के पास हो । इसके लिए जगन्नाथन नामक अच्छे आदमी की गोद में अपने को समर्पित करके वह अपने जीवन के सार्थकता प्रदान करती है । यहाँ जीवन की सार्थकता उस मृत्यु में है जिसका वरण योके ने स्वयं अपनी स्वतंत्र चेतना से किया है ।

पहले अध्याय में बर्फ के नीचे दबे मकान का, दूसरे अध्याय में बाढ़ की विभीषिका और उसके ताण्डव नृत्य का चित्रांकन है । तीसरे अध्याय में जर्मन सैनिकों द्वारा पदाक्रान्त बाज़ार का चित्र दृश्य-योजना की प्रमुखता वाले कथानक की वास्तविकता को उभारता है । उसमें रोचकता एवं उत्सुकता का समावेश भी देखा जा सकता है । उसकी धारावाहिकता और भी बढ़ जाती है । लेकिन बार-बार मृत्यु भय का अंकन करने से कथानक अति लघु होते हुए भी बोझिल हो गया है । दार्शनिकता के पुट के कारण तो उसकी दुरूहता बढ़ गयी है । फिर भी उपन्यास का कथानक संक्षिप्त, सुगठित, प्रभावपूर्ण एवं सरल है । योके के जीवन का आंचलिक चित्र भी इसमें चित्रित किया गया है । निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि "अपने-अपने अजनबी" का कथानक अतिसंक्षिप्त एवं प्रवाहपूर्ण है । लेकिन उसमें दार्शनिकता की जो झलक है उसके साथ सामान्य पाठक उठ नहीं पाता इसलिए यह कथा उसे उलझी हुई मालूम पड़ती है । पूरे उपन्यास की कथा में मृत्यु का भय व्याप्त है, जो पाठक को ऊब से भरपूर कर लेता है ।

कथ्य-प्रस्तुति की शैलियाँ

अज्ञेय ने अपने कथ्य को अपने पूर्ववर्ती कथाकारों को अलग शैली में प्रस्तुत किया । यानी कथ्य की प्रस्तुति की उनकी शैली लीक से हटकर है । सुगठित एवं विस्तृत कथानक विशद चरित्रांकन, सूत्रबद्ध घटनाएँ, सहज स्वाभाविक भाषा एवं प्रयोजनांत प्रेमचन्द एवं उनके अनुवर्ती उपन्यासकारों की शिल्पगत विशिष्टतायें थीं । लेकिन अज्ञेय के उपन्यास मूलतः व्यक्ति केन्द्रित हैं । व्यक्तिकेन्द्रित उपन्यासों के रचनाकार मनुष्य के बाहरी जीवन की अपेक्षा अंतर्जगत की ग्रन्थियों को सुलझाते हैं । उसकी दृष्टि में मनुष्य की बाह्य परिस्थितियाँ उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती, जितना कि मानसिक जगत की । इस विधान के उपन्यासों के मनुष्य अपने अव्यक्त एवं उलझे हुए मानसिक संसार में भटकते हुए देखे जाते हैं । लेखक उस उलझती हुई दुनिया का प्रकाश करते है और उसके इर्द-गिर्द ही अपनी कथा का संपूर्ण ताना बाना बुनने का प्रयास करते हैं । व्यक्ति समाज से लड़ता हुआ नहीं देखा जाता और न सामाजिक यथार्थ के अनुरूप उसमें बदलाव आता है, बल्कि अपने से अपनी ही आंतरिक दुनिया से लड़ता हुआ देखा जाता है । इस प्रकार के उपन्यासों के आधार हैं मनोविज्ञान और दर्शन शास्त्र । मनुष्य के अंतर्मन के परस्पर विरोधी विचारों, घुटन, संघर्ष, तनाव, कुंठा, संत्रास, चिंता, आशंका आदि को ही इनमें अभिव्यक्ति मिलती है ।

इस विधान के उपन्यासों की कथा के केन्द्र में घटना या सामाजिक समस्या न होकर वैयक्तिक अन्तश्चेतना में वर्तमान कोई ग्रन्थि होती है, जिसका संबंध अधिकतर दमनता या काम ग्रन्थियों से होता है, जो व्यक्ति विशेष के जीवन में विसंगति ला देती है और उसमें असामाजिक अवांछित कार्य कराती है, जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार विचित्र और अकल्पनीय लगता है ।

व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों के शिल्प-विधान में कथानक सूक्ष्म व्यंजना-प्रधान तथा आंतरिक संसार को अभिव्यक्त करनेवाला होता है । ऐसा संसार जो जटिल सूक्ष्म और उलझा हुआ होता है । सूक्ष्म कथानक भी किसी नियोजित या संगठन क्रम में नहीं, प्रत्युत विश्रृंखलित होता है । इन उपन्यासों का लेखक एक दम स्वतंत्र होता है, वह कथा को चाहे अंत से आरंभ करें या बीच से, क्योंकि उसके लिए घटनाएँ तो उपलक्षण मात्र होती है । व्यक्ति के मानसिक संसार में इतनी शाखाएँ, इतनी विशाल सूक्ष्म परतें होती हैं कि उनका जटिल एवं बेमल होना स्वाभाविक है । लेकिन इन परतों के प्रकाशन में उत्सुकता, रोचकता अंतवर्ती एकता पर बराबर ध्यान देता है ।

एक उपन्यास में एक साथ कई व्यक्ति पात्रों के मानसिक संसार की अभिव्यक्ति और विश्लेषण जटिल है । इसलिए कथाकार प्राय: सीमित पात्रों की वैयक्तिक कहानी उपस्थित करता है । वह व्यक्ति की संपूर्णता का नहीं, उसके क्षणों का, उसके खण्डित जीवन की मानसिक दुनिया का अनुसंधान करता है । वह विविध घटनाओं का नहीं, बल्कि मनुष्य की दमित वासनाओं मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों, स्वप्नों, सुप्त अचेतन प्रसंगों, स्थितियों, कुंठाओं ग्रन्थियों का निरूपण करता है ।

अधिकतर उपन्यासकार साधारण एवं वर्ग पात्रों के स्थान पर असाधारण एवं रहस्यमय पात्रों का चयन करते हैं । व्यक्ति पात्र के माध्यम से सामाजिक विकृतियों की खोज की जाती है । इस रूप में उसकी सामाजिक महत्ता भी बढ़ जाती है । व्यक्ति के अचेतन में दबी अतृप्तियाँ ही सामाजिक विकृतियों का कारण है, यही स्पष्ट करना उनका इष्ट होता है । उसकी अचेतन वृत्तियों अथवा संस्कारों का दमन कर देने से वह विद्रोही, विस्फोटक

अथवा जड़ बन सकता है । इसलिए व्यक्ति-केन्द्रित उपन्यास का लेखक उन अचेतन विकृतियों का दमन नहीं करता, उनका प्रकाशन के लिए पूरा अवसर देता है ।

पात्रों के विश्लेषण एवं उसके अनुसार कथा विधान में लेखक अनेक साधनों एवं विधियों का उपयोग करता है । वह अस्पष्ट एवं उलझे हुए संसार को बिंबों के माध्यम से व्यक्त करता है । वह अचेतन एवं सुप्त इच्छाओं को कई शैलियों के सहारे अभिव्यक्ति प्रदान करता है । अज्ञेयजी के उपन्यासों में भी बहुत सारी शैलियों का उपयोग किया गया है । इनमें से प्रमुख शैलियाँ है आत्म कथात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली, संवाद शैली, उद्धरण शैली, पूर्वदीप्ति प्रणाली, पत्रात्मक शैलो, डायरी शैली आदि ।

आत्मकथात्मक शैली

कथानक की प्रस्तुति की विभिन्न शैलियाँ हैं । उन्हें उपन्यासकार अपनी आवश्यकतानुसार एवं कथानक के अनुरूप अपनाता है । उनसे वह कथानक में अधिक प्रभाव उत्पन्न करता है । लेखक का अपनी विचारधारा को निश्चित रूप से उपन्यासों में प्रकट करना चाहिए । लेखक को यह चाहिए कि वह घटनाओं पर प्रकाश डाले । इससे उसकी कथा पूर्ण सत्यता का आभास प्रदान कर सकती है । इसके लिए उपन्यासकार प्राय: प्रथम पुरुष में ही सारी कथा कहता चलता है । उपन्यास के "मैं" को साधारणत: सामान्य अर्थों में उपन्यासकार के "मैं" का प्रतीक समझ लिया जाता है । इस प्रणाली में पाठक सारी कहानी उस "मैं" के ही माध्यम से देखता या सुनता है । इस प्रणालो में नायक, नायिका या कोई अन्य प्रमुख पात्र स्वयं कहानी कहता है और एकता प्रदान करता चलता है । इसे आत्मकथात्मक शैलो कहा जाता है । "शेखर एक जोवनी" में आत्मकथात्मक शैलो के साथ साथ इतिहास शैलो भी समाविष्ट है,

क्योंकि शेखर ने स्वयं को प्रथम और अन्य पुरूष में विशेषित किया है । इस शिल्प योजना के माध्यम से उपन्यासकार अत्यधिक तटस्थ होकर चरित्र की अभिव्यक्ति सशक्त ढंग से करता है । "शेखर एक जीवनी" के प्रथम भाग के प्रारंभिक खण्डों की बाल्य कालीन छोटी-छोटी घटनाओं से ऐसा लगता है कि लेखक शेखर के माध्यम से स्वयं को घटनाओं को चित्रित कर रहे हो । "मैं अपने पहले बोते हुए असंख्य युगों का निचोड हूँ । एक निर्जीव धूमकेतु से इस पृथ्वी के जन्म की, उस पर अत्यन्त प्राथमिक जीवन के उद्भव की, और उससे उत्पन्न अनेक विभिन्न जातियों के उद्भिज अण्डज़ स्वेदज और पिण्डज जीवन-जन्तुओं की बसीयत की छाप मुझ पर है, पिछले करोडों वर्ष से निरंतर उन्नत होती हुई नृजाति के उच्चतम आदर्शों का केन्द्रीभत पुंज भी मैं ही हूँ । इस दृष्टि से मैं जो कुछ हूँ, अपना कुछ नहीं हूँ, नया कुछ नहीं हूँ । मैं किसी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ का नया संशोधित संवर्धित और सटीक-सटिप्पण संस्करण हूँ जिसके मूल लेखक का पता नहीं है ।[1]

मनोविश्लेषणात्मक शैली

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रयुक्त मनोविश्लेषणात्मक पद्धति फ्रायड-एडलर और युंग के मनोवैज्ञानिक निष्कर्षों से प्रभावित होकर विकसित हुई है । फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण का मूलाधार काम {सेक्स} बताया है । मानव की मानसिक विकृतियों का मूलकारण उसमें पायी जानेवाली हीनता ग्रंथि है । मनुष्य सदा उच्चता के उद्देश्य से प्रेरित रहता है । उसके कारण उसके सामाजिक एवं व्यक्तिगत आदर्शों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । परिणाम स्वरूप उसमें विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं । "शेखर एक जीवनी" में मानव मन को आंतरिक चेतनाभिव्यक्ति के लिए मनोविश्लेषणात्मक शैली का सहारा किया गया है । "अज्ञेय का "शेखर: एक जीवनी" हिन्दी का प्रथम उपन्यास है जिसमें

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, पहला भाग - पृ. 37

शिशु मानस के सपनों को, फ्रायड के शब्दों में आनंद प्रदान जीवन की झाँकियों को उसके कौतूहल और जिज्ञासाओं को तथा उसके जीवन व्यापी प्रभाव को कथाक्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया गया है । शेखर के प्रथम भाग के अधिकांश खण्ड शिशु मानस के विश्लेषण से भरे है । इसमें उसके मानसिक प्रोसस को पकडने का प्रयत्न किया गया है । शेखर को फाँसी होनेवाली है । प्रातःकाल उसे फाँसी दे दी जायेगी । इस घटना से उसके अतीत के कोने में दुबकी रहनेवाली बचपन की सारी स्मृतियाँ उसके मानस पटल पर उभरकर आ गयी है । शेखर मानो अपने अतीत में पूरे भावावेश के साथ जी रहा है ।"[1] इस शैली को अनेक पद्धतियाँ होती हैं । जैसे संवाद शैली, स्वप्न विश्लेषण शैली, कथाकाल विपर्यय, उद्दरण शैली, पूर्वदीप्ति शैली आदि ।

संवाद शैली

इस शैली में विविधता तथा रोचकता सर्वत्र देखी जा सकती है । पात्रों की मनःस्थिति तथा चारित्रिक अभिव्यंजना के लिए उपन्यास की संवाद शैली का स्थान प्रमुख ही है । "शेखर: एक जीवनी" का एक संवाद यहाँ दिया जा रहा है -"वायसराय आते हैं भूखे लोग अन्न की माँग करते हैं । महंगाई की शिकायत करते हैं, पर वायसराई क्या कर सकते हैं - इस पर शेखर पूछता है :-

ईश्वर कर सकता है ?

"हाँ, ईश्वर सबकुछ कर सकता है"

"महंगाई भी उसने ही की है ।"

"हाँ, अब भाग जाओ । अपनी पढ़ाई नहीं करनी ।"[2]

---

1. डा. देवराज उपाध्याय - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान -पृ. 245
2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 87

इसी प्रकार उनके द्वितीय उपन्यास "नदी के द्वीप" में भी संवाद शैली बहुत अधिक मात्रा में देखी जा सकती है । उपन्यास के प्रारंभ में ही इस शैली का प्रयोग रेखा, भुवन तथा चन्द्रमाधव इन तीनों के बीच के संवाद में होता है । रेल गाडी में, काफी हाउस में तथा रेखा भुवन के प्रसंग.... आदि में भी अज्ञेय ने संवाद शैली का प्रयोग किया है । भुवन और गैरा के बीच में हुई एक संवाद यहाँ प्रस्तुत है -"उसी प्रकार मौन की दीवार को तोडने में असमर्थ भुवन ने पूछा था - गैरा तुमने नौकरी जो कर ली तो क्या जीवन का मार्ग अंतिम रूप से चुन लिया ? माता पिता की क्या राय है ?

हाँ भुवनदा, नौकरी मैं ने नहीं चुनी, संगीत ही चुना है, पर आगे सीखने के लिए यह ज़रूरी है । माता-पिता पर बोझ बने रहना कहाँ तक ठीक होता ?

"भुवन उसे देखता रहा । माथे का नाडी स्पंदन वैसा था उसे मानों वह सुन सकता था फिर उसने पूछा था गैरा विवाह क्या कभी नहीं करेगी ।"[1] इसी प्रकार अज्ञेयजी के अंतिम उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" में भी संवाद शैली की झलक मिलती है । लेकिन उनके अन्य दो उपन्यासों की अपेक्षा इसमें बहुत कम मात्रा में इस शैली का प्रयोग हुआ है । एक उदाहरण पेश है

"फिर एकाएक उसने मुझे पूछा -
योके तुम चाहती हो न कि मैं मर जाऊँ
पत्ते मेरे हाथ से गिर गये और मैं ने
अचकचाकर पूछा
क्या यह कैसी बात है ? सेलमा । और
उसे आटी कहना भी मैं भूल गयी ।"[2]

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 263-264
2. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ. 36

उद्धरण शैली

इस शैली का प्रयोग तो अज्ञेयजी ने अपने प्रत्येक उपन्यासों में किया है । अपने पक्षानुमोदन सहज प्रक्रिया के लिए पात्र उद्धरण प्रस्तुत करते हैं । लेखक पात्रों की मन-स्थिति को व्यंजना उनको आन्तरिक अनुभूति के उद्वेलन तथा चरित्र के लिए उद्धरण प्रणाली का प्रश्रय लेते हैं । इस प्रकार उद्धरणों को प्रयुक्ति सप्रयोजन प्रतीत होती है । "शेखर एक जीवनी" के एक उदाहरण यहाँ दिया गया है -

"वह मानों संसार का दर्शक मात्र हो गया, दर्शक भी नहीं, केवल एक छाप लेनेवाली अंकित मशीन । स्वयं उसमें कोई शक्ति नहीं रही थी, उसका कोई आचरण कोई कवच नहीं था और मानों उसमें अनुभूति नहीं थी प्राण ही नहीं थे । वह मानों एक चिरह आंख मात्र हो गया था, जो सबकुछ देखती जाती थी, सबकुछ स्वीकार करती जाती थी ।"

तथा On the day the lotus bloomed alas
My mind was staying and I know it now.[1]

उनके द्वितीय उपन्यास में भी उद्धरण शैली का प्रयोग देखा जा सकता है । त्रिलियन में रेखा और भुवन चन्द्रिका के वातावरण में झील के किनारे बैठे हुए पानी से खिलवाड करते हैं, रेखा ऐसे उल्लसित क्षणों में एकदम मुक्त एवं पूर्ण अनुभव करती है और गुनगुना उठती है -

'Love made a Jipsee out of me'

भुवन आगे बढ़कर रेखा के ठिठुरे हुए हाथ को निकाल लेता है फिर छोडता नहीं -

'Love made a Jipsee out of me.'[2]

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 172
2. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 171

यह गीत उद्धरण रेखा के प्रणय की आकांक्षा को उद्दीप्त करता है और भुवन को आलिंगन के लिए प्रेरित करता है - भुवन एक ओर से आ रहा था, उसने देखा कि रेखा की आँखें बंद है, मानो प्रभात के सूर्य को अपना चेहरा वह सौंप रही हो ।

"ऊषा एशे... कल कण्ठ-स्वरा ।
मिलन हबे बले आलोय आकाश भरा
चलछे भेसे मिलन-आशा-तरी अनादि स्रोत बये,
कत कालेर कुसुम उठे भरि छेये....
तोमाय आमाय"[1]

इसी प्रकार "अपने अपने अजनबी" में भी उद्धरण शैली का प्रयोग किया गया है । सेलमा कहती है - मौत ही तो ईश्वर का एकमात्र पहचाना जा सहनेवाला रूप है । पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वर ज्ञान है । बाकी सब सहती बातें हैं और झूठ हैं ।"[2]

कथाकाल विपर्यय शैली

इस पद्धति में न तो कथा के विकास के क्रम में स्वाभाविकता रह जाती है और न ही पात्र के चरित्र का विकास सीधी गति से हो पाता है । इस पद्धति का प्रयोग "शेखर एक जीवनी" में देखा जा सकता है । "किन्तु मैं देखता हूँ कि तीव्रतम अनुभूति के ये घटनायें न तो स्मृति पट से मिटती हैं और न पत्थर पर लिखे हुए इतिहास की तरह नित्य और अचल हैं । देखता हूँ कि कुछ दृश्य है जो बिजली की कौंध की तरह जगमगा हैं कुछ और हैं जो बुझ गए है

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 131
2. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी - पृ. 31

और घटना के अनुक्रम के धागे तोड़ गए हैं, तोड़ ही नहीं उलझ भी गए जिसमें उन ज्वलंत घटनाओं को भी ठीक कालक्रम से नहीं देखता - मनमाने क्रम से जलती हुई आती है और चली जाती है, और मैं दावे के साथ नहीं कह सकता कि क्या पहले हुआ, क्या पीछे हुआ, इतनी ही कह सकता हूँ कि यह सब अवश्य हुआ, और उसमें यह ध्वनित नहीं है कि केवल इतना ही हुआ या कि इसी क्रम से हुआ....."[1]

स्पष्ट है कि घटनाएँ तो घटी अवश्य लेकिन कौन सी घटना पहले घटी और कौन सी बाद में, इसका निर्णय करना कठिन है । वे सभी बिना किसी क्रम के मनमाने ढंग से घटती चली गयी है । उनके घटना-काल में कोई क्रम नहीं दिखाई पड़ता है । एक घटना का दूसरी घटना से कोई ताल-मेल नहीं बैठ पाता ।

"नदी के द्वीप" में भी कथानक की काल विपर्यय पद्धति दो एक स्थलों पर प्रयुक्त हुई है । इस पद्धति के द्वारा कथाकार कथा में नाटकीय स्थिति का निर्माण करता है । उदाहरण के लिए तुलियन के पहलगाँव लौटते समय लेखक भुवन और रेखा के नीचे उतरने की बात कहता है । यहाँ तक कि पहलगाँव दीखने लगता है । रेखा के कहने पर भुवन आगे न बढ़कर कुछ झुक भी जाता है । तब लेखक कथाक्रम को पलटकर तुलियन से चलने के अवसर पर रेखा और भुवन में हुई बातों को देने लगता है ।

पूर्वदीप्ति प्रणाली

पूर्वदीप्ति तथा प्रत्यावलोकन या फ्लैशबैक प्रणाली का सर्वाधिक सफल प्रयोग अज्ञेयजी के उपन्यासों में द्रष्टव्य है । शेखर अपनी जीवन यात्रा के

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 183

अंतिम स्थान पर पहुँचकर अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करता है । वह अपने जीवन की अंतिम रात में अपने समूचे अतीत को पुनः एक बार जी लेना चाहता है । उसकी आँखों के सामने उसका सारा अतीत वर्तमान होकर नाचने लगता है । शेखर के ही शब्दों में -"मैं अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा हूँ । अपने अतीत जीवन को दुबारा जी रहा हूँ । मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन यात्रा के अंतिम पडाव पर पहुँचकर किमर-दिकर भूल भटक कर कैसे-कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहाँ तक आया हूँ और तब दीखता है कि मेरी भटकन में भी एक प्रेरणा थी, जिसमें अंतिम विजय का अंकुर था मेरे अनुभव वैचित्र्य में भी एक विशेष रस की उपभोगेच्छा थी जो मेरा निर्देश कर रही थी और जीवन यात्रा के पथ में जो पडाव-तराईयाँ, नदी-नाला, झाड़-झंखाड, आंधी-पानी आये उन सब में मेरे और केवल मेरे संबंध में ऐक्य था, जिसका ध्येय था किसी विशेष काल में, विशेष परिस्थिति में, विशेष स्थान पर, विशेष साधनों और उपायों से मेरे जीवन के विशेष रूप से समापन जिससे उसे अपनी सिद्धि, अपनी सफलता और अपनी संपूर्णता प्राप्त हो जाय, अब मैं अधूरा हूँ, पर मुझमें कुछ भी न्यूनता नहीं है, अपूर्ण है, पर मेरी संपूर्णता के लिए कुछ भी जोडने को स्थान नहीं है ।"[1]

शेखर के मानस पटल पर उसके विगत जीवन की घटनाएँ आती हैं और चली जाती है । लेखक की दृष्टि से वेदना में एक शक्ति है, जो दृष्टि देती है । जो यातना में है वह द्रष्टा हो सकता है । ऐसी स्थिति में शेखर का यह प्रत्यावलोकन असंगत नहीं है । इस प्रत्यावलोकन के कारण शेखर की दृष्टि बाल्यकालीन घटनाओं तक पहुँच सकी है । वैसे जीवन में घटित छोटी-छोटी घटनाएँ तो अपने आप ही कट गयी है, क्योंकि प्रत्यावलोकन स्मृतियों पर ही आधारित है । जो घटनाएँ जीवन में अत्यधिक प्रभावित करती हैं वे किसी-न-किसी प्रकार स्मृत्यवलोकित होती है । ठीक यही बात शेखर के साथ भी हुई है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, पहला भाग - पृ. 15, 16

इसी प्रकार अज्ञेयजी के "नदी के द्वीप" में भी प्रत्यावलोकन पद्धति का बहुत सारे प्रयोग दृष्टव्य हैं । प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम परिच्छेद में ही भुवन की स्मृति के रूप में रेखा और उसके प्रथम मिलन तथा प्रतापगढ़ तक की यात्रा का वर्णन है । विगतोन्मुख स्मृति के चित्रण के पूर्व उपन्यासकार ने लिखा है- भुवन ने भीतर प्रवेश करके दरवाज़ा बन्द किया और एक सीट पर बैठ गया । उसके विस्मय की जड़ता कुछ कम हुई तो उसकी स्मृति धीरे-धीरे पिछले कुछ घण्टों की दृश्यावली के पन्ने उलटने लगी ।"[1] रेखा और हेमेन्द्र के विवाहित जीवन की रेखा के स्मृति के रूप में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । "क्योंकि उसकी सोई हुई दृष्टि उसी स्थिति को देख रही थी, उसी ग्लानी को मन ही मन दुहरा रही थी ।... "[2]

पत्र एवं डायरीवाला शैली

आधुनिक उपन्यासकार ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पत्रों एवं डायरी का सहारा लिया है । इन विधियों में विशेष रूप से नाटकीयता ही परिलक्षित होती है । प्रेमचन्द युग के उपन्यासों को पाठक जिस रुचि, प्रसन्नता तथा उत्सुकता के साथ पढ़ जाते हैं, उसका अभाव ही यहाँ दिखाई पड़ता है । प्रेमचन्द युग से ही पत्रों एवं डायरीवाले कथानक का प्रचलन प्रारंभ हो गया था । उग्र के "चन्द हसीनों खतूत" का कथानक कुछ पत्रों के संचयन द्वारा निर्मित हुआ है । इस कथानक में चरित्र का विश्लेषण रहता है । तथा परोक्ष रूप से व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी रहती है । डायरी एवं पत्रों की योजना से कथानक की रोचकता एवं उसके आकर्षण में अत्यधिक अभिवृद्धि हो जाती है । इसी प्रकार के कथानक अज्ञेय के उपन्यासों में स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं ।

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 22
2. वही - पृ. 113

उदाहरणार्थ "शेखर एक जीवनी" से कुछ भाग यहाँ उद्धृत हैं शेखर, यह पत्र तुम्हें लिख रही हूँ कि तुम मेरे बाद पढ़ो.... बाद में तुम शायद पूछोगे कि शशि ने यह सब मुझे पहले क्यों न बताया जब यह इतना तीखा अभिशाप न होता पर यही ठीक है शेखर.... यदि मुझे बहुत जीना होता तब और बात थी, पर उस स्पष्ट दृष्टि में मैं ने यह भी देखा कि कुछ दिन ही और बाकी हैं..... इसलिए अब भी इस पत्र में अपने प्यार की बात नहीं करूँगी जो चला गया है, उसका प्यार केवल वेदना है और वेदना को चुप रहना चाहिए... केवल तुम्हारे प्यार की बात करूँगी "[1]

"नदी के द्वीप" में भी पत्रों का प्रचुर प्रयोग किया गया है । प्रस्तुत उपन्यास में पत्र टेकनीक का प्रयोग सुनियोजित ढंग से अन्तराल खण्ड में तथा अन्य स्थानों पर पर्याप्त कलात्मक तथा विशद रूप से किया गया है । इन पत्रों के माध्यम से लेखक ने पात्रों के आंतरिक मनोभावों का उद्घाटन किया है । इसके अतिरिक्त कथानक के विकास में भी इस विधि का पर्याप्त योग हैं, क्योंकि सभी पात्र एक स्थान पर एकत्रित नहीं रहते । प्रथम अंतराल खण्ड में रेखा भुवन को पत्र लिखती है । और कहती है कि चन्द्रमाधव उससे ईर्ष्या भाव रहता है । दूसरे पत्र में चन्द्रमाधव रेखा के पूर्व पति हेमेन्द्र की कथा का संकेत तथा अपनी मनोदशा की अभिव्यक्ति करता है । भुवन द्वारा लिखे गये पत्रों के माध्यम से ही गैरा अपने भविष्य का निश्चय करती है । उपन्यास के सभी पात्र, अंतर्मुखी तथा व्यक्तिवादी हैं । इसलिए प्रत्यक्ष रूप से खुलने में उन्हें संकोच होता है और पत्रों के द्वारा अपने संपूर्ण निज को प्रकट करते हैं । इसके साथ अपने अंतर्द्वन्द्व को हल्का भी कर लेते हैं । भुवन द्वारा रेखा के नाम लिखे पत्र में लिखा है "प्यार मिलता है, व्यथा भी मिलती है, साथ भोगा हुआ क्लेश भी मिलता है, लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 240

एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलती नहीं, अलग कर देती हैं । सदा के लिए और अंतिम रूप से । अनुभूतियाँ गतिशील हैं, अतीत होकर भी निरंतर बदलती रहती हैं । और व्यक्तित्व को विकसाती हुई उसमें धुलती रहती हैं, लेकिन यह सीमा लांघ जाने पर जैसे वे गतिशील नहीं रहती, स्थिर जड हो जाती हैं..... जीवन एक चलचित्र न रहकर स्थिर चित्रों का संग्रह हो जाता है और हर नयी संभाव्य अनुभूति के आगे व्यक्ति किसी एक चित्र को प्रतिरोधक दीवार की तरह खडा कर लेता है ।"[1] रेखा के एक पत्र में "सचमुच यह दर्दभरी सहन शक्ति से परे है, मैं उसे नहीं संभाल सकती..... कोई भी नहीं संभाल सकता । शायद प्यार का दर्द इसलिए शायद प्यार रहता नहीं दर्द रह जाता हैं - केवल ईश्वर संभाल सकता है, अगर वह है - या कहूँ कि जो संभाल सकता है वही एक और कोई नहीं ।"[2]

पत्रों के माध्यम से पात्र जो बात नहीं कह पाते, वह डायरी पद्धति से व्यक्त करते हैं । डायरी शिल्प के द्वारा लेखक ने पात्रों की अधिक से अधिक निजी अनुभूतियों एवं मनोव्यापारों को व्यक्त करने का प्रयास किया है, क्योंकि डायरी में पात्र पूरी तरह से खुल जाते हैं जितने कि पत्र में नहीं खुल सकते थे । पात्र कभी अपने संतोष के लिए, कभी दूसरे पात्र को पढने के लिए तो कभी अनजाने ही डायरी प्रस्तुत करते हैं ।

"नदी के द्वीप" में रेखा, भुवन, गैरा के द्वारा लिखी गयी एक डायरी देखिए -"मैं मानती हूँ कि अगर प्यार यह भी परीक्षा नहीं सह सकता तो वह प्यार नाम का पात्र नहीं है । मैं - मैं ने तुम्हारे साथ आकाश छुआ है, उसका व्यास नापा है । उस सेटिंग में यह छोटी सी बात लगती है - फिर लगता है

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 269
2. वही

कि हमें जोडनेवाले सूक्ष्म सजीव तन्तु ही काट दिये जा सकते हैं क्या हम टूटकर अलग हो जायेंगे ? टूटकर नहीं बहकर सही, अनजाने बहुत रहकर भी इतनी दूर भी तो हट जा सकते हैं कि एक दूसरे को छोड दे मुक्त कर दे ।"[1] उसी प्रकार गैरा लिखती है - सचमुच मेरे जीवन का सबसे बडा इष्ट यही है कि मैं तुम्हें दुखी देख सकूँ । मेरे स्नेह शिशु मैं तुम्हारे लिए जीती हूँ, क्योंकि तुम में जीती हूँ तुमने मुझे विश्वास दिया, मैं तुम्हारी बहुत कृतज्ञ हूँ । मुझे लगता है, मैं ने बहुत बडी निधि पाई है, ऐश्वर्य पाया है और तुमसे । मेरे जीवन के सारे तन्तु तुम्हारे चारों ओर लिपट गये हैं । वे बहुत सूक्ष्म हैं, तुम्हें बाँधेंगे पर तुम उन्हें छुडा नहीं सकोगे और सब नष्ट करके ही । उनका कोई बोझ तुम पर नहीं होगा.....।"[2]

"अपने-अपने अजनबी" में डायरी का प्रयोग अत्यधिक देखा जा सकता है । मृत्यु साक्षात्कार से काठघर में दबी हुई योके के मन में स्वयं के प्रति तथा सेलमा के प्रति जो विचित्र विवाद उठे है, उनका अंकन अज्ञेयजो ने "अपने-अपने अजनबी" में डायरी द्वारा किया है । तीस तथा इकतीस दिसंबर की डायरी के पन्नों द्वारा किया है । 3। डायरी का कुछ अंश यहाँ उद्धृत है - उसके सामने ही नहीं अपने सामने भी कभी मेरा मन होता है कि चीख पडूँ कि अपने बाल नोच लूँ, कि आईने के सामने खडी होकर अपने को मारूँ, छोटी कैंची उठाकर अपने बालों में चुभा लूँ, कि नहरने से अपने माथे, नाक, कान ठोडी पर धार कर लू.... उफ कब फटेगी यह कब्र या कि कब निकलेगी यह बेशर्म जान.... उसकी या मेरी या दोनों की ।"[3]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पत्रों से दूर-दूर रहनेवाले

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 232
2. वही - पृ. 345
3. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी - पृ. 40

पात्रों के बीच संबंधों के साथ-साथ कथा का विकास भी होता है । अन्तर्मुखी पात्र पत्र में ही अपनी बात खुलकर लिखते हैं । इस प्रकार ऐसे पात्रों के मनोभावों को पत्रों से ही भली भाँति जाना जा सकता है । जैसे आरंभ से अंत तक गैरा के भुवन को लिखे पत्रों को ही देखा जाये तो उसके क्रमशः बढ़ते चरम तक पहुँचते प्रेम का प्रमाण मिल जाता है । डायरी पात्रों के मन की दुर्भावनाओं को प्रकट करने का अन्यतम साधन है । इसलिए व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों में डायरी का प्रचालन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है ।

दृश्य-योजना को प्रमुखता देनेवाले कथानक

कथा को धारावाहिकता के लिए आज के उपन्यासों में एक शैली का प्रयोग भी होता जा रहा है । वह है दृश्यविधान की शैली । नाटक में दृश्यविधान के कारण दर्शक को समूर्त प्रत्यक्षीकरण का आनंद मिलता है । उपन्यासकार अपनी इस कमी को दृश्य-योजना द्वारा पूरा करता है । और वर्णन विवरणों को कमी कर देता है । प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में दृश्यों की योजना कम हुई है, किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी सभी उपन्यासकारों ने दृश्यों को योजना की है । "झाँसी की राणी", "दिव्या", "चित्रलेखा", "नया मोड़", "रोड और पत्थर" आदि अनेक उपन्यासों में दृश्यों और विवरणों का संतुलित विनियोग हुआ है । सर्वप्रथम शेखर के प्रथम भाग में इसका विपुल प्रयोग हुआ । बाद में "मैला आंचल", "परती परिकथा" और "सोया हुआ जल" आदि में हुआ । शेखर एक जीवनी के प्रथम भाग में दृश्य योजना को प्रमुखता देनेवाले कथानक का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । एक उदाहरण पेश है -"टूटी हुई दीवारों से घिरा हुआ एक छोटा-सा आँगन । उसके एक कोने में, छोटा-सा बेरी का वृक्ष, जिसकी छाया में एक टूटा सा अन्धा कुआँ । कुएँ के पास पुराने ढंग की छोटी-छोटी ईंटों का एक ढेर, कुछ पीले-पीले,

उड़कर आये हुए पीपल के पत्ते आँगन के दायों ओर, दीवार के बाहर एक पीपल, जिसके नीचे एक गाय बंधी है उससे कुछ दूर एक छोटे से मंदिर का छत्र और सिरिस के पेड़ की कुछ फुनगियों की झाँकी । और यह सब दुपहर की प्रशान्त नीरवता में ।"[1]

"नदी के द्वीप" का कथानक भी दृश्य-योजना को प्रमुखता प्रदान करनेवाला है । इसके बारे में डा. सत्यपाल चुघ का कथन है - मन के यथार्थ की, भावाभिभूत और प्रेम से उद्दीप्त मन की, उसकी पीडा से तपे हुए आलोकित क्षणों की ऐसी कितनी ही भावावस्थाओं, मनस्थितियों और अनुभूतियों के चित्र "नदी के द्वीप" में है जो अन्यत्र संभवत: दुर्लभ है ।[2] एक जगह भुवन सोचता है "पर पुलकित होना क्या है उससे कुछ अधिक और कुछ अधिक गहरा रेखा और उसके निमित्त से जान सकी है - अधिक गहरा कि वह स्त्री और स्त्री होते हुए भी उसने वह साहस किया जाय शायद भुवन में नहीं है, अधिक गहरा इसलिए कि उसे जानने के लिए पहल जाना कई-कुछ भुलाना भी पड़ता है..... तो क्या यहीं फुलफिलमेंट नहीं है कि कोई किसी को वह चरम अनुभूति दे सके - देने का निमित बन सके - जो जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है ।"[3]

इसी प्रकार अज्ञेयजी के "अपने-अपने अजनबी" में भी दृश्य-योजना का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है । इस उपन्यास के दूसरे भाग में नदी के पुल पर बसे एक बाज़ार का चित्र है, जो बाढ़ की विभीषिका की चपेट में आ जाने के कारण लगभग आधा नष्ट हो चुका है । "जहाँ से पुल की उठान शुरू होती थी वहाँ से बल्कि उसके कुछ पहले सड़क की पटरी पर से ही अस्थायी दूकानें शुरू हो जाती थी । पहले नावे या रहेडीवाले, फिर उसके बाद बडी रेहाडियाँ आती थीं । जिन पर दूकानदार के रहने की भी जगह बनी हुई हो, उसके बाद

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 18
2. सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में शिल्प विधि - पृ. 87-88
3. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 130

धनुष्य के सबसे ऊँचे खण्ड पर कुछ पक्की दुकानें थी । लेकिन उस साल एकाएक सब बदल गया । पहली बाढ़ में ही पानी इतना चढ़ आया कि नावें रस्सियाँ तुड़ाकर बह गयी । बहते हुए जानवर या जानवरों की लाशें दुर्गंध की एक लकीर सी खिंचती हुई पुल के नीचे निकल गयी ।"[1]

इस प्रकार दृश्य-योजना से कथानक की धारावाहिकता में कमी तो आती हैं, लेकिन इससे दर्शक को जो आनंद नाटक देखने से प्राप्त होता है वहीं आनंद उन दृश्य-योजनाओं को पढने से उपन्यास के पाठकों को आता है । तात्पर्य यह है कि इस योजना से कथानक अधिक रुचिकर एवं आनंद दायक बन जाता है और पाठक ऊब नहीं जाता ।

प्रतीकों का प्रयोग

प्रतीक का प्रयोग गोपनीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए तथा मनस्थितियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करने के लिए किया जाता है । अज्ञेयजी के उपन्यासों में प्रतीकों को शीर्षस्थ स्थान दिया गया है । वह प्रतीकों को जीवन और संस्कृति से जुड़ा हुआ मानते हैं । इसलिए उनकी प्रतीक योजना सचेत और स्वस्थ हुई है । वे मानते हैं कि "प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण हैं जो सीधे-सीधे अभिधा में नहीं बंधता उसे आत्मसात करने का, प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं ।"[2] उनके प्रतीक सामान्य, नवीन, वैयक्तिक और यौन संबंधी है । "शेखर एक जीवनी" से कुछ प्रतीक यहाँ पेश है - प्रस्तुत उपन्यास के चतुर्थ खण्ड "धागो रस्सियाँ गुझर" क्रमशः शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कार को बड़ी गाठों के प्रतीक है । उपन्यासकार ने प्रतीक अर्थ में शशि का

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी - पृ. 72-73
2. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ. 45

नाम अंकित किया है । अर्थात् शशि एक ऐसा चन्द्रमा है जो पति और प्रेमि दोनों के सुख, शान्ति और विलास के लिए समर्पित है किन्तु चन्द्रमा का कलंक उसके माथे पर है । शेखर के प्रति उसके प्रेम समाज की दृष्टि से कलंक ही है ।

"नदी के द्वीप" के कुछ प्रतीक इस प्रकार है - गैरा भुवन को प्यार से शिशु कहती है, क्योंकि वह शिशुवत् ही व्यवहार करता है । भुवन गैरा को जुगनू कहता है क्योंकि वह तीक्ष्ण चमकनेवाला व्यक्तित्व धारण करती है । दोनों के संबोधन से गुरु शिष्य का संबंध भी व्यंजित होता है । तथा निश्चल प्यार की अभिव्यक्ति भी । रेखा अपने गर्भस्थ शिशु को सर्जन वायलिस्ट या बोनकार सर्जन नाम देती हैं, जो भुवन और अपनी इच्छाओं के अनुरूप है । रेखा गैरा से प्रथम बार जब मिलती है तब उसे अंगूँठी भेंट करती है तथा बाद में उसे चूड़ियाँ भेजती हैं । इससे यह व्यंजित होता है कि वह भुवन को गैरा के हाथों सौंप रही है । उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है । वह अर्थसंगत भी है । दीप सत्य यथार्थ में व्यक्ति सत्य का पर्याय है और द्वीप की ऐकान्तिकता, यथार्थ में व्यक्ति की समाजगत भीड़-भाड से दूर उसकी अपनी व्यक्तिगत संवेदनात्मक चेतना के अलगाव की प्रतीक है । अज्ञेय ने रेखा का नामकरण भी प्रतीकात्मक रूप में रखा है । रेखा बिन्दु की गतिशील अभिव्यक्ति में है । उसमें न मोटाई है, न चौडाई है, वह मात्र अस्तित्व है, सत्ता है, उपाधिरहित सत्ता । उसी प्रकार गैरा का नाम भी प्रतीक अर्थ में दिया है । गैरा-भारतीय पत्नीत्व का प्रतीक है पार्वती । भारतीयता का प्रतीक अनुराग, दायित्व और भक्ति इन सबका समन्वय गैरा में है । अपने-अपने अजनबी में भी अज्ञेय के प्रतीकों का प्रयोग किया है । उपन्यास के अंतिम परिच्छेद में उपन्यासकार के हृदय में पाश्चात्य संस्कृति के प्रति अनादर और भारतीय संस्कृति के प्रति अभिमान प्रकट हुआ है । पश्चिमी वातावरण के उपन्यास में पश्चिमी पात्र योके की अन्तिम इच्छा अच्छे व्यक्ति के पास मरने की दिखायी गयी है । अच्छे आदमी के प्रतीक में एक भारतीय

नवयुवक को सोद्देश्य लाकर यह दिखाना चाहा है कि वह संपूर्णत: मानवतावादी है । अजनबी के प्रति भी आत्मीयता, सेवाभाव सुसंस्कार उसके हृदय में विद्यमान है जो कि हमारी भारतीय संस्कृति की परंपरा है । इस प्रकार उनके प्रत्येक उपन्यासों में प्रतीकों का सफल प्रयोग दृश्यमान है ।

शिथिल एवं रसक्षीण कथानक

प्रेमचन्द युग में कथानक प्राय: घटना प्रधान हुआ करते थे, इसलिए इस युग के उपन्यासों में कथा की विपुलता थी, इस विफलता के साथ-साथ कथा की गति भी अति तीव्र थी । लेकिन आधुनिक युग में उपन्यासों की कथा लघुता की ओर उन्मुख दिखाई पड़ती है । इस युग के उपन्यासों की कथा में पात्रों की विविध प्रकार की स्थितियों तथा कर्म प्रेरणाओं की व्याख्या के साथ-साथ विश्लेषण का कार्य भी संपन्न होता चलता है । यही कारण कथा में अप्पाशत: वृद्धि हो जाती है । और उसके परिणाम स्वरूप उसकी गति में शिथिलता आ जाती है ।

पूर्व प्रेमचन्द युग की चेतना में कर्म ही सर्वोपरि माना जाता था । आधुनिक युग की चेतना में बड़ा भारी अंतर आया है । आज का उपन्यासकार सत्य की खोज में अधिक व्यस्त है, इसलिए इस मनोवैज्ञानिक युग की चेतना में दर्शन की प्रधानता भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । इसी के कारण कथा में रसक्षीणता एवं शिथिलता आयी है । कहीं-कहीं तो कथानक इसलिए भी क्षीण हो गया है, क्योंकि उपन्यासकार ने किसी न किसी नयी शिल्प पद्धति को प्रतिष्ठित करने का मोह नहीं छोड़ा है । इस नई शिल्प-पद्धति से उपन्यासों में चरित्रांकन अच्छा बन पड़ा है । "अपने-अपने अजनबी" में यही कथा शिथिलता एवं रसक्षीणता दिखाई देती है ।

अज्ञेयजी के "शेखा एक जीवनी" के कथानक में सामंजस्य के अभाव का प्रभाव कथानक में पडा है । कथा में कहीं कहीं शैथिल्य का भी आभास होता है । अंग्रेज़ी शब्दों के बाहुल्य से भी कथानक की रोचकता में प्रभावित जान पड़ती है । लेकिन "नदी के द्वीप" के कथानक में अपेक्षाकृत न तो रसक्षीणता परिलक्षित होती है, और न ही उसकी कथा के प्रवाह में शैथिल्य । वैसे अज्ञेयजी ने भी स्थिति के चमत्कारों से कथा को रोचक एवं प्रवाहमान बनाया है ।

आधुनिक युग के अधिकतर उपन्यासों के प्रारंभिक पृष्ठों पर प्राय: अंग्रेज़ी में कविताओं को उद्धृत करने का प्रचलन चल पडा है । लेकिन अज्ञेय जी ने "नदी के द्वीप" में इसी तरह हिन्दी कविता का प्रयोग किया है । यहाँ कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

"दु:ख सबको माँजता है ।
और
चाहे स्वयं मुक्ति देना वह न जाने किन्तु -
जिन को माँजता है ।
अन्य यह सीख देता है सबको मुक्त रखें ।"[1]

इन पंक्तियों के अतिरिक्त शैलो की एक कविता उसी पृष्ठ में सब से ऊपर देवनागरी लिपि में उद्धृत की गयी है और सबसे नीचे हिन्दी में चार पंक्तियों का एक गीतांश भी दिया गया है ।

"मेनी ए ग्रीत आइल नीट्स मस्ट बी
इन द डीप वाइड सी आफ मिज़री,
आर द मैरितर, वोर्न एण्ड वात
नेवर दस कुड वायेज़ आन ।" शैली

कई हरे-भरे द्वीप अवश्य ही होंगे
व्यथा के गहरे और फैले सागर में
नहीं तो थका-हारा सागरिक
कभी ऐसे यात्रा करना न रह सकता ।"[1]

आधुनिक युग के उपन्यासों में उपर्युक्त योजना से उपन्यासों के प्रयोजनों एवं प्रेरणा स्रोतों का संकेत मिलता है । इसी युग के उपन्यासकारों में से कुछ ने उपन्यास के पहले कौशलपूर्ण प्रारंभिक लिखे हैं तो कुछ ने इसी प्रकार का चमत्कार अंत में संयोजित किया है । अज्ञेयजी ने "शेखर एक जीवनी" के पहला भाग में, उपन्यास के प्रारंभ में कौशलपूर्वक भूमिका के साथ-साथ प्रवेश लिखा है, जो अपने आप में चमत्कार लिये हुए हैं । इस योजना से कथारस की क्षीणता में बहुत कमी आयी तथा रोचकता में वृद्धि भी हुई ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि पूर्व प्रेमचन्द युग के उपन्यासों की कथा में व्याप्त तीव्रता इस युग में आते शिथिल हो गयी । उनके रस में क्षीणता भी आयी, लेकिन पृष्ठों को अधिक आश्चर्य में डालने लायक रसक्षीणता एवं शिथिलता नहीं आयी ।

अज्ञेयजी के कथानक की विशेषताएँ एवं न्यूनताएँ

अज्ञेयजी के तीनों उपन्यासों के कथानक के विश्लेषण के उपरांत हमारे समक्ष उसकी कुछ विशिष्टतायें स्पष्ट हो जाती है । उनके कथा कहने का ढंग सरल एवं रोचक है । ये कथा का प्रारंभ करना अच्छी तरह जानते हैं । प्रारंभ इस प्रकार करते हैं कि पाठक की उत्सुकता पहले से ही बढ़ने लगती है और वह

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 7

उपन्यास की कथा को प्रारंभ से लेकर अंत तक पढ़ने के पश्चात् सास लेना उचित समझता है उदाहरणार्थ "शेखर एक जीवनी" को ले सकते हैं - प्रस्तुत उपन्यास के प्रारंभ का एक शब्द "फांसी" ही पाठक को ऐसे आश्चर्य में डाल देता है कि उसकी उत्सुकता प्रतिदिन चौगुनी बढ़ने लगती है । और यह उत्सुकता अंत तक बनी रहती है । कथा के मार्मिक स्थलों को पकड़कर उन्हें उपयुक्त स्थान एवं वातावरण में उपस्थित करके उसने कथा के सौंदर्य को बढ़ावा दिया है ।

"शेखर एक जीवनी" पहले भाग में प्रदेश के आगे के कथानक में क्रमबद्धता एवं सम्बद्धता देखी जा सकती हैं । पहले भाग में बाल जीवन के बाद की शारदा शेखर की कथा में सरसता आयी है, क्योंकि कथा कुछ-कुछ बंधकर आगे बढ़ी है । शांति और शेखर का लघु प्रसंग भी बहुत मार्मिक है । प्रस्तुत उपन्यास के दूसरे भाग के उत्तरार्द्ध के दोनों खण्डों में प्रारंभ से अंत तक शशि एवं शेखर की कथा उत्सुकतावर्द्धक एवं मार्मिक है । अज्ञेयजी के कथानक में निश्चित रूप से स्वाभाविकता भी देखी जा सकती है । "नदी के द्वीप" की कथा दर्दभरी प्रेम की है । इस उपन्यास का कथानक अपेक्षाकृत अत्यधिक सुगठित एवं संक्षिप्त है । पूरे उपन्यास का कथानक क्रमबद्धता एवं सम्बद्धता लिए हुए है । उनके नवीनतम उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" के कथा तो उपर्युक्त दोनों उपन्यासों की तुलना में अतिसंक्षिप्त है । पूरे उपन्यास की कथा सुगठित एवं सुनियोजित लगती है ।

"शेखर एक जीवनी" का कथानक विशृंखलित लगता है । इसलिए उसका प्रवाह, सरल, अविरल एवं अबाध न होकर अस्त-व्यस्त दिखाई पड़ता है । इस उपन्यास के दोनों भागों और "नदी के द्वीप" में भी अंग्रेज़ी के बहुल प्रयोग के कारण कथानक के प्रवाह में गतिरोध उत्पन्न हुआ है ।

यद्यपि अंग्रेज़ी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद दिया हुआ है फिर भी अंग्रेज़ी के अल्पज्ञ पाठकों के लिए यह उतना आनंददायक सिद्ध नहीं हो सका है । इसके कारण पाठक पात्रों के भावों एवं विचारों को भी सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता ।

अज्ञेय जी के उपन्यासों की भाषा

अज्ञेयजी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं । उनका व्यक्तित्व भी विद्रोही के रूप में सामने आया । यही कारण है कि उनकी भाषा अन्य उपन्यासकारों की तुलना में कहीं अधिक चमक-दमक लिए हुए उभर कर आयी है । उनके अधिकांश पात्र बुद्धिजीवी वर्ग के हैं । इसीलिए उनकी भाषा साहित्यिकता लिए हुए है । प्रसंगानुसार उसमें परिवर्तन भी होता गया है । उनके एक-एक शब्द का चयन कुछ इस प्रकार का है कि यदि वाक्य में से एक ही शब्द इधर से उधर कर दिया जाय तो ऐसा लगने लगता है कि जैसे वाक्य अपंग हो गया है । यही कारण है कि उनकी भाषा में जीवंतता तथा विशिष्टता है ।

उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव तथा देशज या स्थानीय शब्दों को भी स्थान मिला है । अंग्रेज़ी शब्दों की भी भरमार है । अरबी-फारसी, बंगला तथा पंजाबी के शब्दों का भी यथा स्थान प्रयोग देखा जा सकता है ।

जैसा कि बताया गया है कि अज्ञेयजी के अधिकांश पात्र बुद्धिजीवी वर्ग के है । कुछ पात्र तो इस वर्ग में नहीं आते । बुद्धि जीवी वर्ग के पात्र संस्कृत निष्ठ हिन्दी के साथ अरबी फारसी बंगला पंजाबी तथा अंग्रेज़ी में

बातचीत करते हुए दिखाई देते हैं । अनपढ़ तथा कम पढ़े-लिखे पात्र टूटी फूटी हिन्दी में अपने विचारों को अभिव्यक्त कर लेते हैं । इस प्रकार अज्ञेयजी ने पात्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । पात्रानुकूल भाषा के कुछ उदाहरण देखिए - "रोहित, सत्य हरिश्चन्द्र का पुत्र था । इस युग में हिन्दी गद्य साहित्य जन्म ही ले रहा था, इसलिए रोहित से इसी प्रकार की प्रयोग कराया गया है । मरता हुआ रोहित अपने साथियों से जाकर कहता है -

"माता को हाल सुनाइयो -
साप ने मुझको डस लिया, हाय गजब सितम गजब ।"[1]

शेखर कानवेंट में पढ़ा हुआ है । उसे अंग्रेज़ी का ज्ञान है । इसलिए वह अंग्रेज़ी में भी बातचीत करता है । एकाएक शेखर उठ खडा हुआ और दीवार से अंग्रेज़ी में बोला आई हेट हेर, आई हेट हेर । इस प्रकार "शेखर एक जीवनी" में अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है । उसी प्रकार "नदी के द्वीप" में रेखा अंग्रेज़ी में कहती है "दि हाऊस ओफ हेवन आर एवरी हवेयर" स्त्री स्वर सुनकर चौकीदार ने कहा "बाबूजी इतनी रात को इधर नहीं घूमते जमाना ठीक नहीं है बडे चोर बदमाश फिरे हैं ।"[2]

भुवन ने कहा, "अच्छा भइया, जाते हैं । आजकल तो यही वक्त होता है घूमने का इतनी गर्मी होती हैं....."

अस्पताल की नर्सें भी हिन्दी तथा अंग्रेज़ी दोनों से बात करती है । भीतर की ओर से एक नर्स निकली । उसने कुछ अचम्भे से पूछा, "आप कैसे ?" फिर सहसा समझकर कहा, "वह एमरजेंसी केस...." भुवन ने कहा "हाँ हाउ इज़ शी ?"[3]

प्रसंगानुसार भी उनकी भाषा बदलती गई है । मन:स्थितियों का प्रसंग आने पर भाषा अंतर्वेदना, भावोन्माद तथा अंत ज्वाला से भरी हुई दिखाई देती है ।

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, पहला भाग - पृ. 115
2. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 210
3. वही - पृ. 238

जहाँ कहीं विद्रोह के भाव की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ भाषा की ओजस्विता एवं अल्पांशतः उन्माद का भाव परिलक्षित होता है । उनकी रचनाएँ भाषा के संदर्भ से भी वंचित नहीं हैं । शब्दों तथा वाक्यों की आवृत्ति के साथ संकर शब्द का भी प्रचुर प्रयोग भी देखा जा सकता है । प्रसंगानुसार उत्प्रेक्षा रूपक उपमा आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी प्राप्त होता है । अज्ञेयजी शब्दों में भी माहिर हैं । उनके नवीन शब्दों के निर्माण तथा सटीक प्रयोग से भाषा में नया चमत्कार दिखाई पड़ता है । निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रसंगानुसार भाषा में जो परिवर्तन हमें अज्ञेय की कृति में परिलक्षित होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग "शेखर एक जीवनी" से

एक स्थान पर शेखर कहता है - साहित्य में, समाज में, कला में, जीवन में, सब जगह वही मनमोहक आरंभ, वही मनमोहक प्रवाह और अंत में वही गहरी खड्ड । प्राणों का पक्षी उड़ान भरता है, लगता है कि वह आकाश की छत को छू लेगा, लेकिन एकाएक वह टूटकर गिर जाता है, मानो बिजली की मार से नष्ट हो गया हो । हम लोग खूब बढ़िया इमारत बनाते हैं, एक-एक पत्थर जोड़कर मंदिर सजाते हैं, लेकिन अंत में जब पलस्तर होने लगता है, तब सारा घटाटोप पैरों की धूल हो जाता है, मिट्टी में मिल जाता है.... यह क्यों ? यह इसलिए है कि हमारे आदर्श डर की भीत पर कायम हैं, हमारे विशाल भवनों की नींव खोखली है, और जैसे कि शास्त्र भी कहते हैं, हमारे देवताओं के पैर भूमि पर नहीं टिकते हैं । समाज की सड़ती हड्डियों को भड़कीले लाल रेशम में लपेटकर हम कहते हैं - देखो, हमारा युवक -समुदाय [1]

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - पृ. 223

नदी के द्वीप

दोनों किनारे बढ़ते हुए काफी आगे निकल गये । यहाँ पानी के बिलकुल पास एक चट्टान पर बैठकर रेखा झुककर हाथ से पानी उछालने लगी । भुवन भी बैठ गया, पानी में हाथ उसने भी डाल दिये । पानी बहुत ठंडा, ऊँचाई और चाँदनी से निखरे हुए वातावरण में उसमें छोटे घुँघरूओं की-सी झुनझुनाहट थी ।"[1]

काले बादलों के नीचे सारा दृश्य घटकर बन्द हो जाता है । पेड़ छोटे हो आते हैं, बंगला खिलौना-सा बन जाता है । मानो पूरा दृश्य अजायब घर के कौच के शो-केस में रखा हुआ एक माडेल हो केवल पहाड उभर कर बड़े भारी और तीखे हो आते हैं । जैसे आकाश के तेवर चढ़ गये हो, घनी काली भौंहें उभर-सिकुड़कर और भी काली हो गयी हो ।"[2]

"मैं प्रेतात्मा तो नहीं हूँ..... या कि हूँ भुवन ? पर मेरी शुभाशंसा तुम्हारे चारों ओर मंडराएगी और तुम पथ दिखा दोगे तो तुम्हें छू जायेगी ।"[3]

अपने अपने अजनबी

"एक धुँधली रोशनी.... एक ठिठका हुआ नि:संग जीवन । मानो घड़ी ही जीवन को चलाती है । मानों एक छोटी सी मशीन ने, जिसकी चाबी तक हमारे हाथ में है, ईश्वर की जगह ले ली है और हम हैं कि हमारे इतना भी वश नहीं है कि उस यंत्र को चाबी न दे, घड़ी को रुक जाने दें, ईश्वर का स्थान हड़पने के लिए मंत्र के प्रति विद्रोह कर दें, अपने को स्वतंत्र घोषित कर दें ।"[4]

---

1. अज्ञेय - नदी के द्वीप - पृ. 149
2. वही - पृ. 198-199
3. वही - पृ. 278
4. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी - पृ. 20

"उसके सामने ही नहीं, अपने सामने भी कभी मेरा मन होता है कि चीख पड़ूँ, कि अपने बाल नोच लूँ कि आईने के सामने खड़ी होकर अपने को मारूँ, छोटी कैंची उठाकर अपने गालों में चुभा लूँ, कि नहरने से अपने माथे नाक-कान ठोढ़ी पर घाव कर लूँ....

अज्ञेय जी ने अपने तीनों उपन्यासों में मुहावरों का प्रयोग किया है ।

शेखर एक जीवनी

काली छाया मंडराना, ठौर न रहना, पौ पटना, चौकन्ना रहना, चक्कर काटना, सिर खाना, मिट्टि में मिल जाना, मातम छा जाना.. "कन्धे से कन्धा भिड़ाना, खुशामद करना, माथा पच्चो करना, उधेड़बुन में पड़ना, निठतले बैठे रहना, मौन साध लेना, सिर पर आफत मोल लेना, मटियामेट कर देना आदि...."[2]

नदी के द्वीप

आँखें चार होना (155), तिलमिला जाना (169), दाव तोलना (172), वारा न्यारा करना (175), बात काटना (186), आँख उठाना (200).

अपने अपने अजनबी

गला घोंटना (34), मन कुढ़ना (46), सन्न रह जाना (73),

---

1. अज्ञेय - अपने-अपने अजनबी - पृ. 40-41
   शेखर एक जीवनी (पहला भाग - 7, 56, 57, 60, 62, 63, 65, 73,

एकटक देखना §84§, दिल धड़कना §64§, नज़र दौड़ाना §11§.

अज्ञेयजी की औपन्यासिक भाषा-शैली विषय के अनुरूप हैं । दर्शन, राजनीति, समाज, व्यवस्था, प्रणय प्रसंग हर विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है । किन्तु कहीं-कहीं अर्थगर्भित पद्यमयी भाषा का प्रयोग उनमें मिलता है, जो कि उपन्यास को क्लिष्ट बना देती है । संपूर्ण उपन्यास में तो एक ओर संस्कृत निष्ठ एवं तद्भव शब्द के साथ देशज शब्दों का प्रयोग भी देखा जा सकता है । इन सबके अतिरिक्त उनके उपन्यासों में शब्द शक्ति भी द्रष्टव्य है । श्री ओमप्रभाकर ने अज्ञेयजी की भाषा की कलात्मकता, प्रौढ़ता, रंगों की समायोजना, गंभीरता, सौष्ठव, लाघव एवं विषयानुरूपता कतिपय ऐसी विशिष्टताएँ है, जिनमें उनके उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य में भाषा शैली की दृष्टि से एक विशेष प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करते हैं ।"[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अज्ञेय की तमाम औपन्यासिक रचनाएँ अपनी कथ्यगत विशिष्टताओं के कारण पूर्ववर्ती, परवर्ती और समकालीन उपन्यासकारों की रचनाओं से बिलकुल भिन्न हैं । यही उसकी विशिष्टी और पहचान है ।

---

1. डा.ओम प्रभाकर - अज्ञेय का कथा साहित्य - पृ. 72-73

अध्याय चार

अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र : एक अध्ययन

रचनाकार अपने विचारों को पात्रों के ज़रिए प्रस्तुत करता है । ये पात्र ही उनके विचारों के संवाहक हैं । अत: पात्र योजना उपन्यास का एक प्रमुख तत्व है । पात्र योजना और चरित्र-चित्रण ही एक ऐसा ज़रिया है जिसके माध्यम से लेखक अपने विचारों को पाठकों की तरफ प्रेषित करता है और उनमें यथार्थ की प्रतीति जागृत करता है ।

किसी भी पात्र या मनुष्य के बाहरी एव भीतरी व्यक्तित्व के स्वरूप को ही चरित्र कहा जा सकता है । मनुष्य का बाहरी आकार-प्रकार, आचार-विचार, चाल-ढाल, रहन-सहन, वेश-भूषा, बात-चीत का निजी ढंग और कार्यकलाप उसके अंतकरण का बहुत कुछ प्रतीत होता है । मानव का चरित्र कोई ऐसी स्थिर वस्तु तो नहीं है । वह तो परिस्थितिजन्य होता है । ठीक इसी पात्र का चरित्रांकन उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

भारतेन्दु युगीन उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-चित्रण आदर्शवादी दृष्टिकोण से किया गया है । इस युग के ऐतिहासिक पात्र चारित्रिक उच्छृंखलता, गैर जिम्मेदारी तथा अनैतिकता के विरोधी होने का भी परिचय देते हैं । प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में चित्रित पात्र भारतेन्दु युगीन औपन्यासिक पात्रों से सर्वथा भिन्न रहते हैं । इस युग में प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम आदर्शोन्मुख सुधारवादी पात्रों को ही पाते हैं । उनके बाद के उपन्यासों में यह दृष्टिकोण नहीं रह पाता ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में अधिकतर उपन्यास व्यक्ति केन्द्रित उपन्यास की कोटि में आते हैं । व्यक्तिकेन्द्रित उपन्यासकारों ने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में आंतरिक पक्ष को अधिक प्रमुखता दी है । किसी भी व्यक्ति

के व्यक्तित्व आंतरिक पक्ष सुप्तावस्था में पडा रहता है । उपन्यासकार ही चरित्र-चित्रण करते समय उसके आभ्यंतरिक विशिष्टताओं को आलोकित करने का प्रयास करता है । इस प्रकार परिस्थितियों, घटनाओं तथा कथा के व्याज से पात्रों के चरित्र का विकास होता है । व्यक्तिकेन्द्रित उपन्यासकारों में, विशेष रूप से अज्ञेयजी ने चरित्र के आचरण को समझने के लिए समग्र व्यक्तित्व और उसकी संवेदनाओं को समझने का उपक्रम शुरू किया । जैनेन्द्रकुमार के "त्यागपत्र" और अज्ञेयजी की औपन्यासिक रचनायें इस महत्वपूर्ण अभियान की पहली उपलब्धियाँ हैं, जो सामाजिक यथार्थ की स्वीकृत और मान्य औपन्यासिक परंपरा से हटकर कुछ-कुछ कविता के जैसे सूक्ष्म संघटन की ओर झुकी हुई दिखाई देती है ।

उपन्यास का मूल अभिप्राय प्रमुख पात्रों में ही केन्द्रित होता हैं, जो उपन्यास को गति प्रदान करते हैं । सहायक पात्र घटनाओं को आगे बढाने के साथ-साथ प्रमुख पात्र के चरित्र के विकासार्थ परिस्थितियों का निर्माण करते हैं ।

प्रत्येक युग में लिखित उपन्यासों में पुरुष तथा स्त्री दोनों प्रकार के पात्रों की योजना उपन्यासकारों ने की है । लेकिन प्रेमचन्दपूर्व और प्रेमचन्द युग में पुरुष पात्र की प्रधानता मिलती रही है । जबकि अंग्रेज़ी उपन्यासों में पहले से ही स्त्री पात्रों को भी प्रमुख स्थान दिया जाता रहा है । इधर हिन्दी के भी कई उपन्यासों में स्त्री पात्रों को प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसी दृष्टि से अज्ञेय के "नदी के द्वीप" की रेखा और "अपने-अपने अजनबी" की योके और सेल्मा का चरित्र-चित्रण प्रधान पात्र के रूप में उभरकर सामने आया है । इनका चरित्र-चित्रण एक विशेष प्रकार के टाइप का प्रतिनिधित्व करता है । इस प्रकार के स्त्री पात्र शरत्चन्द्र, मन्नू भण्डारी तथा जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों में भी देखा जा सकता है । प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों में तो खल नायक

किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता था । खल नायक सामान्य रूप से राष्ट्रीय, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टिसामान्य बुराईयों का प्रतीक होता था, लेकिन आधुनिक युग में मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण खल नायक का चरित्र-चित्रण एक नया आयाम लेकर आया है । उपन्यासकारों ने एक ही व्यक्ति में अच्छे और बुरे का संघर्ष प्रस्तुत कर खल नायक के चरित्र-चित्रण में आमूल परिवर्तन का सूत्रपात किया है । भगवतीचरण वर्मा के "चित्रलेखा" जैसे उपन्यासों में अच्छे और बुरे, पाप और पुण्य पर नवीन दृष्टि से विचार किया गया है । अज्ञेयजी के "नदी के द्वीप" के चन्द्रमाधव को खल पात्र की कोटि में रखा जा सकता है ।

आज तो उपन्यास में पात्र की महत्ता सर्वोपरि मान ली गयी है । पात्र ही घटनाओं का संवाहक है । व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों में व्यक्ति-चरित्र ही प्रतिष्ठित होता जा रहा है । वास्तव में आज के उपन्यासों की आत्मा व्यक्ति चरित्र को ही कहा जा सकता है । अज्ञेय के "शेखर एक जीवनी", "नदी के द्वीप", "अपने अपने अजनबी" और जैनेन्द्र कुमार की "सुनीता" आदि के पात्र व्यक्ति-चरित्र के अच्छे उदाहरण हैं ।

चरित्र-चित्रण की पद्धतियाँ

उपन्यास में नियोजित विविध पात्रों का चरित्र-चित्रण उपन्यासकार भिन्न-भिन्न पद्धतियों के सहारे करता है । इन पद्धतियों में प्रमुख रूप से विश्लेषणात्मक, अभिनयात्मक तथा मनोवैज्ञानिक विधियों का नाम उल्लेखनीय है । इनके अतिरिक्त प्रत्यक्ष एवं परोक्ष पद्धतियाँ भी होती हैं । इन सभी पद्धतियों के अतिरिक्त, चरित्र-चित्रण की दो प्रमुख विधियाँ और भी हैं । पहली को बहिरंगी पद्धति तथा दूसरी को अंतरंग पद्धति कहते हैं । यहाँ पर

हम इन्हीं पद्धतियों के विषय में थोडी सी चर्चा करेंगे क्योंकि आधुनिक युग में जहाँ तक व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों के पात्रों के चरित्र-चित्रण की बात है, उपन्यासकार इन्हीं पद्धतियों से चरित्रांकन करता हुआ आगे बढ़ते हैं ।

बहिरंग- चरित्र-चित्रण प्रणाली

आधुनिक युग में व्यक्ति-केन्द्रित उपन्यासों में नायक नायिका के नख-शिख वर्णन का तरीका बहुत दूर की बात हो गया है । फिर भी जैनेन्द्र कुमार और यशपाल के उपन्यासों में इस प्रकार के वर्णन की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती है । इस पद्धति में उपन्यासकार पात्रों का नामकरण, उनका प्रथम परिचय, उनकी आकृति एवं वेश-भूषा, क्रिया-प्रतिक्रियाओं तथा अनुभवों का चित्रण करता है । व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासकारों ने इसे छोड दिया है । वे अपने उपन्यासों में पात्रों के मानसिक संघर्ष का चित्रण करते हैं । इस प्रकार के उपन्यासों में अनुभवों का अत्यधिक महत्त्व होता है । इसका प्रयोग हम अज्ञेय के उपन्यासों में देख सकते हैं । "शेखर एक जीवनी" का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं - "शशि को जब ऐसा लगता है कि वह अब अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकती, तो वह शेखर को अपनी चारपायी के पास बुलाती हैं - और शशि ने अपनी ठोढ़ी उठायी । उसकी आँखें अर्धनिमीलित थी । और होंठ अधखुले वह निश्चय मुद्रा बोलती नहीं थी ।"[1] किन्तु शेखर उसका आशय समझ जाता है । वह बिना किसी झिझक से उसका होंठ चूम लेता है । इस प्रकार के बहुत सारे उदाहरण शेखर एक जीवनी में मिलते हैं ।

अंतरंग चरित्र-चित्रण प्रणाली

यह प्रणाली ठीक बहिरंग के विपरीत है । फ्रायड के मतानुसार

---

1. शेखर एक जीवनी - पहला भाग - पृ. 236

कोई भी कार्य करनेवाला व्यक्ति जो कुछ कार्य करता है उसके पीछे अचेतन मन का हाथ अवश्य रहता है । उसके साथ ही वह उसके मानसिक संघर्ष, बाह्य वातावरण के प्रति पात्र का बदलता दृष्टिकोण और प्रगट व्यवहार की अन्त प्रेरणाओं को भी उद्घाटित करने का प्रयत्न करता है । "शेखर एक जीवनी" का शेखर कुछ इसी प्रकार का पात्र है । इसमें अज्ञेयजी ने ईश्वर के अन्तर्द्वन्द्व के साथ-साथ उसके बदलते हुए दृष्टिकोण को भी उद्घाटित किया है । आंतरिक संघर्ष बाहरी संघर्ष की अपेक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है । और पात्रों में इच्छा शक्ति तथा आत्मबल की कमी के कारण संघर्ष जन्म लेता है ।

उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की आवश्यकता

प्रारंभिक युग में कथानक को ही उपन्यास का मूलाधार माना जाता था और अन्य औपन्यासिक तत्वों को बहुत ही कम महत्व प्राप्त था, लेकिन आधुनिक युग में तो चरित्र-चित्रण को ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ है । चरित्र-चित्रण ही उपन्यास के प्राण है । उपन्यासकार उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों के चरित्र को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वे सचमुच वास्तविकता का भ्रम पैदा करते हैं । उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों में एवं व्यावहारिक जीवन में प्राप्त पात्रों में अंतर तो होता है । फिर भी कुशल उपन्यासकार उपन्यासों में जीवंत पात्रों की रचना करके व्यावहारिक जीवन के पात्रों के साथ साम्य उत्पन्न करने का प्रयास करता है और इसमें उसे सफलता मिली भी है ।

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि चरित्र-चित्रण ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा उपन्यासकार पाठकों में यथार्थ की प्रतीति जागृत करता है । इसी प्रतीति के कारण पाठक उपन्यासकार की बात ध्यान से सुनते हैं ।

चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विधि का सहारा लेकर वह व्यक्तित्व को पूर्ण रूपेण चित्रित करता है । इसी कारण आज उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की आवश्यकता बढ़ गयी है, अत: हम उपन्यासों में उसकी अनिवार्यता अस्वीकार नहीं कर सकते हैं ।

अज्ञेय के औपन्यासिक पात्र

हमारे समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जिनकी अभिलाषाएँ कियी न किसी कारण से टूट गयी है । व्यक्ति अपनी टूटी अभिलाषाओं को कल्पना जगत में साकार करने का प्रयास करता है और इसलिए उसका स्वभाव अंतर्मुखी हो जाता है । अज्ञेयजी ने ऐसे ही व्यक्तियों को अपने उपन्यासों में पात्र के रूप में स्थान दिया है, जिनके अचेतन मन में दमित अभिलाषाओं की ज्वाला धधकती रहती है । ऐसे व्यक्ति अकेले ही इस ज्वाला का शमन करना चाहते हैं और करते भी हैं । शेखर भी एक ऐसा ही अन्तर्मुखी आत्मान्वेषी पात्र है, जिसके मन में शैशवावस्था से ही विकारों ने जन्म लेना प्रारंभ कर दिया था और अन्ततोगत्वा वह विद्रोही ही हो गया था । दरअसल शेखर विद्रोही स्वयं ही नहीं हुआ था, बल्कि परिस्थितियों ने उसे ऐसा बना दिया था ।

अज्ञेयजी ने अपने पात्रों का चयन प्रमुख रूप से मनोविज्ञान के आधार पर ही किया है । उनके उपन्यासों में आये हुए सभी पात्र लगभग अन्तर्मुखी ही जान पड़ते हैं । यों तो हम उनके पात्रों को बुद्धि-जीवी पात्र, मनोवैज्ञानिक पात्र, प्रतीकात्मक पात्र और मानसिक असंतुलनवाले पात्र की संज्ञा से सुशोभित कर सकते हैं । अब हम अज्ञेयजी के प्रत्येक उपन्यास को लेकर उनमें आये हुए प्रमुख पात्रों के चरित्र का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे ।

शेखर एक जीवनी

शेखर

शेखर निरंतर छटपटानेवाला जीवन्त तथा असाधारण मन का अंतर्मुखी पात्र है । स्वयं अज्ञेयजी के शब्दों में "वह लीजिए वह रहा शेखर कुछ बिखरे बाल, व्यस्त अन्तर्मुखी मुद्रा झुकी आँखें, पर बेचैन ललकारते कदम"[1] दरअसल शेखर एक ऐसा विद्रोही स्वभाव का भीरू पात्र है, जिसका जीवन ही भय सेक्स तथा अहं की धुरी पर घूम रहा है । इसलिए उसके चरित्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखना अधिक समीचीन हो सकता है । "फ्रायड के नियतिवाद के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व के उसकी बाल्यकालीन मानसिक ग्रन्थियों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । बालक की काम मूलक प्रवृत्तियों के साथ अनावश्यक और अनुचित हस्ताक्षेप के कारण उसके मानस में इन ग्रन्थियों का निर्माण हो जाया करता है । इन ग्रन्थियों के कारण बालक महान कलाकार, विद्रोही, विश्व विजयी अथवा कुछ भी बन सकता है । "शेखर एक जीवनी" के शेखर के साथ भी ठीक ऐसा ही कुछ हुआ है । शेखर शैशवावस्था से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का है । वह जन्म एवं मृत्यु संबंधी प्रश्नों की झड़ी सी लगा देता है । वह अपनी माँ से पूछता है,

"तब चिड़िया के बच्चे कहाँ से आते हैं ?
अण्डों में से निकलते है ।
और अण्डे कहाँ से आते हैं ?
ईश्वर भेज देता है ।"[2]

फिर शेखर ने सरस्वति से पूछा कि मरते कैसे हैं ?

"मर जाते हैं और क्या ?
मर कर क्या होता है ?"[3]

---

1. आत्मनेपद - अज्ञेय - पृ. 57
2. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 3।
3. वही - पृ. 83

ये सभी पंक्तियाँ शेखर की जिज्ञासु प्रवृत्ति को स्पष्ट करती हैं । शेखर में बचपन से ही विजय की भावना बड़ी प्रबल रही है । वह समाज की प्रत्येक व्यवस्था को अपने अनुकूल देखना पसन्द करता है । वह सामाजिक निषेधों के अतिक्रमण में ही अपने आपको संतुष्ट पाता है । अज्ञेयजी के ही शब्दों में उसकी आयु करीब तीन वर्ष, किन्तु उसकी भोला विजयी दर्प ऐसा है, जैसे नेपोलियन लाख वर्ष तक विजयी रहकर भी नहीं विजय प्राप्त कर पाता ।"[1]

शेखर अपने जन्म के बारे में सोच रहा है । वह सोच भी सकता है । अनुमान लगा भी सकता है । वह अनुमान करता है - जिन खण्डहरों में खुदायी हो रही थी, उन्हीं खण्डहरों के मध्य उसका जन्म हुआ था । बौद्ध विहार के वे खण्डहर थे । संयोगवश उसी दिन वहाँ से बुद्ध की अस्थियों की एक मंजूषा भी निकली थी । एक बुद्ध भिक्षु जो उस दिन, उस घर में अतिथि बनकर आए, यही बता रहे हैं कि यह बुद्ध का अवतार है । इसको बुद्ध धर्म में दीक्षा देनी है । पुरोहित के मन में ब्राह्मणत्व के उज्वल भविष्य की कामनाएँ फलवती-सी प्रतीत होती है । पिता ने मन ही मन निर्णय लिया कि इसे इंजीनियर बनाना है । माँ के लिए वह बैरिस्टर होने का सपना पूरा करेगा । इस प्रकार बोध होने के पहले ही बालक जीवन एक रूढ़ि में बंध गया, बहुत से अनुभूति किन्तु सुदृढ़ बन्धन उसके जीवन में छा गये, वह बिक गया ।"[2]

बालक शेखर एकान्त प्रिय है । वह दूसरों जैसा नहीं है । अन्यथा वह अकेला क्यों बैठता । अन्य बच्चों के समान पिताजी के पास बैठकर कुछ-न-कुछ करता । लेकिन शेखर एकांत चाहता है । कभी-कभी उसके प्रश्न भी बालकोचित नहीं लगते । उसका एक प्रश्न यह है कि क्या बुरे के बगैर अच्छा नहीं

---

1. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 40
2. वही - पृ. 48

होता ? पर उस स्वतंत्र चिंतन में बाधा डालने के लिए उसके पिताजी उसे तोता ला देते हैं । पर वह तोता पालने में असमर्थ था । तोते के उड़ जाने पर भी उसे दु:ख से अधिक हर्ष हुआ । "शेखर ने देखा उसके संसार के अलावा एक और संसार है, जिसमें पक्षि रहते है, जिसमें स्वच्छन्दता जिसमें स्नेह जिसमें सोचने की या खेलने की अबाध स्वतंत्रता है, जिसका एकमात्र नियम है, वही होओं जो कि तुम दो ।"[1]

शेखर बडा अहंगस्त पात्र है । ऊँचे लेटरबक्स पर बैठकर दूसरों को साभिमान-चिढ़ाना तथा डाकिया द्वारा उतरने के लिए कहने पर उसके पाँव की ऊँगलियों को कुचलते हुए मानों विजेता बनकर भाग खडा होना उसकी अहंता को व्यक्त करता है ।

शेखर में भय का भी भावना देखा जा सकता है । अजायबघर के नकली बाघ से भागना भय की प्रेरणा को व्यक्त करता है । जब उस नकली बाघ को शेखर के सामने लाया जाता है, तब वह वास्तविकता से परिचित हो जाता है । वह सोचने लगता है -"डर डरने से होता है । संसार की सब भयानक वस्तुयें है, केवल एक घास-फूस से भरा निर्जीव चाम, जिससे डरना मूर्खता है ।"[2] इस घटना का जो भी असर उसके जीवन पर पडा उसी का विश्लेषण करते हुए शेखर ने कहा -"यही उसका विश्वास अब भी है कि जब कभी कोई भयानक वस्तु देखें तब डरो मत, उसका बाह्य-चाम काट डालो, उसके भीतर भरी हुई घास-फूस को निकाल कर बिखरा दो और हँसो ।"[3]

शेखर आज की शिक्षा पद्धति तथा शिक्षकों से भी आश्वस्त नहीं दिखायी देता है । जैसा कि उसने पिता के यह कहने पर कि पढ़ना है कि नहीं,

---

1. शेखर एक जीवनी - पृ. 61
2. वही - पृ. 150
3. वही - पृ. 52

स्वयं कहता है - "पढ़ूँ कैसे कोई पढ़ाए भे । मास्टर साहब तो थूकते ही जाते हैं ।" इसे सुनकर शेखर के पिता क्रुद्ध हो उठते है । शेखर को ऐसा लगता है कि न्याय कहीं नहीं है, किन्तु वह अन्याय के आगे चुकने को भी तैयार नहीं होता । जब उसकी बहिन स्वयं पढ़ाती है तब उसे उसके ढंग से ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा भी ग्राह्य हो सकती है और शिक्षक - श्रद्धा का पात्र हो सकता है । वह चुपके से अपनीबहिन से सीखने लगता है । शेखर हर बात को अपने तर्क की कसौटी पर कसककर देखना चाहता है और देखता है । वह स्कूल तो जाने लगता है लेकिन शिक्षक के प्रति उसमें अनास्था का भाव बना ही रहता है । वह पुनः स्कूल जाना बन्द कर देता है । स्कूल न जाने से उसमें एक शक्ति पायी गयी, जो वहाँ से नहीं मिल पायी । स्कूल में टाइप बनते है, और वह शेखर बना व्यक्ति । व्यक्ति का ही व्यक्तित्व होता है ।

शेखर सामाजिक और रूढ़िगत बन्धनों से अपने आपको मुक्त करना चाहता है । मुक्ति की खोज में वह पहले पहल उन वस्तुओं से उलझता था कि जो स्थूल थीं । उन्हें वह देख सकता था । अब वह कल्पना के क्षेत्र का सहारा लेने लगा । लेकिन उसका मन शांत नहीं हुआ । फिर वह लौटता है अपने यथार्थ संसार की ओर जहाँ स्थूल वस्तुओं और सच्चाईयों से टकराता है ।

असहयोग आन्दोलन की लहर की आवाज़ उसने भी सुनी । शेखर का मन अप्रतिकृत नहीं रह सकता । उसने भी विदेशी कपड़े उतारे और उसके पास जो मोटे कपड़े थे, पहनने लगी । लेकिन वह बाहर नहीं जा सकता था । पिता ने उसको बाहर जाने की अनुमति नहीं दिया था ।

पिता के प्रति अत्यधिक आदर रखते हुए भी शेखर को मालूम था कि वे अपने अधिकार के अधीन में ही सबको रखना चाहते हैं । उनकी दृष्टि में

ये लड़के मेरे हैं, मेरे ही है । नितांत मेरा अधिकार इन पर है । यही भाव उसके अंतरंग में था । एक दिन शेखर ने अपने नाम से पिताजी के नाम काट डाला तो भूल चिह्न लगाकर पिताजी ने अपना नाम ऊपर लिख दिया था । भावावेश के क्षण में उसने कविता संग्रह में यह भी लिखा था कि शेखर, प्रकृति की संतान । उसने पाया कि प्रकृति के स्थान पर पिताजी का नाम है । तब शेखर को लगा कि पिता ने उसके एक पवित्र क्षण को भ्रष्ट किया है । यह अत्याचार सहा नहीं जायेगा । उसने कापी फाड़ डाली ।

यहाँ स्पष्ट रूप से विदित होता है कि बचपन में उसके साथ किये गये दुर्व्यवहार का उस पर उतना अधिक प्रभाव पडता है कि वह विद्रोही हो जाता है । रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में शेखर मूलतः विद्रोह का आख्यान है ।[1] कहने का सारांश यह है कि शेखर स्वयं विद्रोही नहीं बना था, बल्कि परिस्थिति ने उसे विद्रोही बना दिया था । उपन्यासकार ने भी वैसे ही विचार व्यक्त किये है विद्रोही बनते नहीं उत्पन्न होते हैं ।

शेखर तो परंपराबद्ध व्यवस्था के प्रति ही नहीं बल्कि अपने आप के प्रति भी विद्रोही है । प्रस्तुत पंक्तियों से यही ध्वनि निकलती है -"ओ विद्रोहियों, आओ पहले इसी दंभ को काटो । जानो समझो घोषित करो कि हम इसका उस दुर्व्यवस्था के नहीं, हम उस ऐसेपन के ही एतादृशयत्वमात्र के विरोधी है, हम सभी कुछ बदलने चाहते है, हमारी विद्रोही प्रेरणा धर्म के समाज के, राज सत्ता के, अर्थ सत्ता के और अंत में अपने व्यक्तित्व के प्रति विद्रोही ही है ।

उपर्युक्त संपूर्ण विद्रोहों के पीछे परिस्थितियों के अतिरिक्त शेखर का अहंभाव भी सक्रिय दिखायी पड़ता है । शेखर की अहंकार भावना का

---

1. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 74

विश्लेषण करते हुए डा. नगेन्द्र ने कहा है - "पिता के कठोरता को भी उसने जो एक भव्य-रूप दिया, उसका एकमात्र कारण यही है कि उसके अपनी गौरव भावना और कठोरता के नीचे ऐसा कुछ उसे अवश्य मिल जाता है जो बड़े अभिमान से उसके अहं को दुलराता है । माँ को उसके प्रति स्नेह नहीं था । यह नहीं कहा जा सकता । परन्तु बेचारी उसकी यह मांग पूरी करने में असमर्थ रहीं । उसने जीवन भर उन्हें क्षमा नहीं किया । इस विषय में वह इतना निर्मम है कि माँ को घृणा का पहला पाठ पढ़ने का श्रेय भी वह नहीं दे सकता ।"[1]

शेखर की एक और विशेषता उसकी उत्सुकता ही है । इसी उत्सुकतावश उसने अद्भुत सारी बातें जान लीं, भले ही उसके बालपन पर उसका तीखा असर तो नहीं पड़ा । उसने गरीबी के बारे में प्रश्न किया लेकिन कोई सही उत्तर नहीं मिला । उसके मन में यह प्रश्न भी उठा कि ईश्वर कौन है अगर ईश्वर है तो इतनी भिन्नता क्यों ? इस उलझन के कारण जब दूसरे दिन घर के सभी लोग मंदिर गये और भक्ति भाव से वन्दना कर रहे तो शेखर अलग खड़े होकर सबकुछ देखता रहा । उसको मालूम था कि बात वहाँ समाप्त नहीं होगी । इसलिए पिता के पूछने पर उसने कहा - मैं ईश्वर को नहीं मानता । मैं प्रार्थना भी नहीं मानता ? भवानी झूठी है । ईश्वर झूठा है । ईश्वर नहीं है ।"[2]

शेखर को सदा डाँट-फटकार तो मिली उसे वर्जनाओं का शिकार ही तो होना पड़ा । प्यार तो संभवतः उसे जैसे मिला ही नहीं । शेखर उसका स्पष्टीकरण करते हुए स्वयं कहता है - मैं घृणा के संसार में इतना कुचल गया हूँ कि प्यार मेरा अपरिचित हो गया है ।"[3] लेकिन उस घर में शेखर को समझनेवाली उसकी बहिन सरस्वती थी । उसकी उपस्थिति में शेखर इतना पसीजता है कि

---

1. विचार और अनुभूति - डा. नगेन्द्र - पृ. 148
2. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 91
3. वही - पृ. 125

सरस्वति के सामने बिलकुल एक लड़का हो जाता है जिसे खुला प्यार स्नेह आदि चाहिए । सांत्वना के दो-चार शब्द चाहिए । वह बहिन सरस्वति से कहना चाहता है, बहिन मुझे मूर्ति उतनी नहीं चाहिए, मुझे मूर्तिपूजा चाहिए । मुझे कोई ऐसा उतना नहीं चाहिए जिसकी ओर मैं देखूँ मुझे वह चाहिए जो मेरी देखे ।"[1]

कालेज में दाखिला मिलने पर उसे कई प्रकार के कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा । शेखर के ब्राह्मणत्व को लेकर उसके होस्टल में फुसफुसाहट शुरू हुई । "जिस बोर्डिंग में शेखर था, वह ब्राह्मणों के लिए था । इसलिए पिता की आज्ञा के अनुसार शेखर वहाँ आकर रहा था । अब तक उसके ब्राह्मणत्व के विषय में किसी को आपत्ति भी नहीं हुई थी । अन्य छात्र ब्राह्मणत्व के और संस्कारों का पालन तो करते थे, लेकिन भीतर उनका आदर उतना गहरा नहीं था । उनका भोजनागार सब ओर से घिरा हुआ था, ताकि किसी आते-जाते व्यक्ति के कारण उनके भोजन में "दृष्टि दोष" न हो जाय । कभी ऐसा होता तो वह भोजन उतना ही अस्वाद्य हो जाता, जैसे किसी कुत्ते ने उसे जूठा कर दिया हो । यद्यपि कुत्ते कई बार भोजनागार में घुस जाते थे, और उन्हें हिंश करके भगा देना ही पर्याप्त था ।"[2] शेखर को मालूम हुआ कि उसके ब्राह्मणत्व को लेकर शिकायत प्रिंसिपल के पास तक पहुँची है । शेखर ने रसोइए को घसोटना ठीक नहीं समझा । वह बाहर जाकर भोजन करने लगा ।

शेखर के जीवन का यह पहला महत्वपूर्ण पड़ाव था जहाँ उसने सही निर्णय लिया । घर के वातावरण में उसके विद्रोह को बचपना समझ लिया जाता था, भले ही उसमें स्वतंत्रता और अप्रदर्शन की इच्छा थी । घर में उसके द्वारा प्रकट किये विद्रोहों के लिए कोई व्यापक आयाम प्राप्त नहीं था । अब शेखर ने

---

1. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 140
2. वही - पृ. 207

बाहरी दुनिया में कदम रखा है । स्वतंत्रचेत्ता शेखर का पहला निर्णय उसमें निहित विद्रोह के अनुकूल ही था ।

गाँधीजी के सिद्धांतों को अपनाने की तीव्र इच्छा के कारण उनके आदर्शों के अनुरूप ही वह व्यवहार करने की कोशिश करता है । उसके मन में यह बात जम गयी थी "मैं गांधी को मानता हूँ । मैं इसके बताये पथ पर चलूगा ।"[1] एक गाल पर थप्पड मिलने पर दूसरा गाल दिखाने के लिए जो आह्वान गाँधीजी ने दिया था उससे भी शेखर परिचित था । इसलिए उसने उस दर्शन को अपना लिया । पर जिस घर में वह पल रहा था वहाँ इस प्रकार के आदर्शों के लिए कोई स्थान नहीं था । आदर्शों के स्थान पर निरी व्यावहारिक दृष्टि । व्यावहारिक दृष्टि प्राय: आदर्शों पर कुठाराघात करती है । शेखर का अनुभव भी उससे भी भिन्न नहीं था ।

शेखर विदेशियों से घृणा करता है । उनकी किसी वस्तु को भी उपयोग में लाना पसंद नहीं करता । इसलिए वह अपने माता-पिता की अनुपस्थिति में घर के सारे विदेशी वस्त्रों को आग लगा देता है । अंग्रेज़ी भाषा के प्रति घृणा तथा हिन्दी के प्रति प्रेम भाव उसकी राष्ट्रीय भावना की ओर संकेत करते है । अंग्रेज़ी में न बोलने पर एक बार शेखर को पिता द्वारा डाँट फटकार भी मिली थी ।

शेखर के मन में भाईयों के प्रति स्नेह था, लेकिन झूठ का साथ देने के लिए वह तैयार नहीं था । जब उसके भाई चन्द्र ने पत्थर फेंककर बाहर के गमलों को तोड दिया तो उसकी माँ काफी गरम हो गयी । चन्द्र के जबड़े को

---

1. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 116

पकड कर अंगार लगाने को वह तुली हुई थी कि लड़का सच बोलेगा कि नहीं । पर शेखर ने तुरन्त माँ को धक्का देकर चमटे को गिरा दिया । वह अपने भाई से चल भागने की आज्ञा दी । लेकिन कुछ ही समय बाद वहीं चन्द्र शेखर से कमल माँगा रहा था । शेखर ने कहा कि लिखाई के बाद दे देगे । पर वह सुनता नहीं था । माँ के हाथ से बार-बार थप्पड़ खाने पर वह कलम देने को तैयार नहीं था । आखिर उसने कहा चाहे जान से मार डालो लेकिन कलम नहीं दूँगा । यह घोषणा माँ के लिए अप्रत्याशित थी । वह एकाएक वहाँ से चली गयी । शेखर भी कुछ हताश था - इसलिए वह भटकता रहा बेमालिक के कुत्ते के तरह ।

प्रेम का क्षेत्र भी शेखर के लिए अछूता नहीं रहा जिसमें उस का अहंभाव खुलकर सामने आया है इस क्षेत्र में तो उसका अहं अपनी अंतिम पराकाष्ठा तक पहुँचता हुआ मालूम होता है । इसका सठीक प्रमाण कुमार के साथ उसके संबंध में मिल जाता है । शेखर के जीवन में अनेक नारियाँ प्रेमिकाओं के रूप में आयी है । उदाहरणार्थ शशि, शारदा, शांति और शीला आदि का नाम गिनाया जा सकता है । लेकिन शशि के अलावा अन्य सभी प्रेमिकायें उसके जीवन में आकर मात्र अपनी-अपनी स्मृति ही छोडकर चली जाती है । शशि ही शेखर को सर्वाधिक प्रभावित करती है । इसलिए शेखर का आकर्षण उसके ही प्रति अधिक रहा है । यद्यपि शशि दूसरे के विवाहिता है, फिर भी वह शेखर की प्रेमिका हुए बिना नहीं रह जाती। शशि शेखर की सगी न सही चचेरी बहन ही है । इस स्थिति में दोनों में मानसिक प्रेम पल्लवित होता है । नैतिक दृष्टि से शेखर के शशि के साथ यह संबंध न तो स्वस्थ ही कहा जा सकता है और न सफल भी ।

ईमानदारी से देखा जाये तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शेखर चाहे भले ही मात्र काम प्रवृत्ति के लिए शशि से इस प्रकार जुडा हुआ हो । शशि ने तो शेखर के जीवन को संजोया है, संवारा है, ऊपर उठाया है । इससे उसको एक नया मोड मिल गया है ।

शेखर की अब तक की ये घटनाएँ उसके जीवन के प्रारंभिक पक्ष से संबंधित हैं । ये घटनाएँ मात्र एक विद्रोही मन की आकांक्षाओं से संबंधित नहीं हैं । इन घटनाओं ने शेखर को विकसित किया और स्वयं शेखर भी विकसित हुआ है । विभिन्न घटनाओं ने उसे जो सीख दी उसे शेखर ने अपनाया । लेकिन शेखर ने अपने को उन सीखों तक सीमित नहीं किया । उसकी प्रतिक्रिया कुछ अलग थी, उसकी दृष्टि कुछ अलग थी ।

स्वातंत्र्य चेतना का पारदर्शी स्वरूप शेखर की क्रांतिकारिता की विशिष्टता है । वह यथार्थ का सीधा साक्षात्कार करना चाहता है । यथार्थ को उसकी पूरी संभावनाओं सहित वह देखना चाहता है । स्वांतत्र्य चेतना के पारदर्शी रूप के आकांक्षी होने के कारण उसके हर व्यवहार को आदर्शवादी घोषित किया जा सकता है । लेकिन अपनी आँखों के सामने घटित घटनाओं एवं अपने जीवन में दिखे अमानवीय व्यवहारों से उसने अपने दृष्टिकोण को पुष्ट किया था । इसलिए वह आदर्शवादी नहीं हैं । यहीं नहीं कि उसकी प्रतिक्रियायें इतनी सतही भी नहीं है कि आवेश में आकर उसने ऐसा किया है । शेखर का व्यक्ति आवेश में आता है लेकिन उसकी प्रतिक्रियायें एक यथार्थवादी व्यक्ति की है । इसका मुख्य कारण यही है कि उसकी प्रतिक्रियाएँ हमेशा समाज की मूल समस्याओं से संबंधित भी हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास का दूसरा भाग वयस्क शेखर की कहानी है । सत्य की ओर वह संचरण करना चाहता है । वयस्क शेखर को वैज्ञानिकता की ओर अधिक झुकाव है । अपनी पढ़ाई के लिए वह पंजाब आया हुआ है । संयोगवश शेखर का परिचय ऐसे एक विद्यार्थी वर्ग से हो गया जो भड़कीली वस्तुओं के आधार पर मनुष्य को जाँचता परखता है । शेखरने देखा कि उनमें नैतिकता का लेशमात्र भी

नहीं है । एक दूसरे वर्ग भी वहाँ थीं जिसके साथ भी शेखर का परिचय हुआ । इस दल की नेत्री मणिका नामक एक स्त्री थी । वह विदेश घूम आई है । समय बिताने के लिए अवैतनिक ढंग से वह किसी कालेज में लक्चर देती है । निकट से शेखर ने जब मणिका को जान लिया तो उसे न निराशा हुई न हर्ष । मदिरा में अपने को भिगोनीवाली मणिका ने कम से कम उसके लिए यह सीख दी कि चमडी के नीचे सब एक से है । असभ्य-असंस्कृत लोलुप पशु ।"[1] यद्यपि यह एक रोगग्रस्त आत्मा की प्रतिक्रिया थी, फिर भी उसमें सच्चाई थी क्योंकि मणिका की रोगग्रस्तता एक वर्ग की रोगग्रस्तता है ।

शेखर क्रांति को व्यक्ति पक्ष के संदर्भ में शुरू करना चाहता है । इसके लिए उसने साहित्य को चुना । साहित्य के माध्यम से समाज को बदलने की आकांक्षा चुनौतियों से युक्त है । विचार प्रधान साहित्य में समाज की बुनियादी समस्या पर विचार विमर्श संभव है । शेखर का आकर्षण भी प्राय: ऐसी समस्याओं की ओर हो रहा है । ऐसी समस्याओं के प्रति उसकी प्रक्रिया भी विद्रोहात्मक रही है । शुरू से उसने समस्याओं से समझौता नहीं किया और चुनौतियों का सामना किया है । यह दृढचित्तता शेखर की एकमात्र क्षमता थी । इसी आत्मविश्वास के बल पर उसने "हमारा समाज" नामक पुस्तक लिखी । यह पुस्तक अब तक के संचित अनुभवों की अभिव्यक्ति थी ।

जब शेखर ने साहित्य को अपना क्षेत्र चुना तो उसके सामने न यश की कामना थी न धन की । साहित्य के प्रति उसकी थोडी रुचि थी । साहित्य को चुनते समय उसके सामने समाज था और सामाजिक जड़ों में व्याप्त रुग्णता थी । यही नहीं वह साहित्य को अपनी अंतरात्मा की अभिव्यक्ति भी तो मानता है ।

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 18

इसी बीच एक समाज सुधारक से उसका परिचय हुआ और उसने एक सार्वजनिक सभा में बोलने के लिए शेखर को मज़बूर किया । शेखर ने सभा में बोलने की बात को गंभीरता से ली ।

शेखर को क्रांतिकारी समझकर जेल भेज दिया जाता है । जेल में उसे यातनाएँ सहनी पडी है । वहीं पर बाबा मदनसिंह, मौहसिन, संत रामजी तथा विद्याभूषण आदि के संपर्क में आता है । इन सभी व्यक्तियों से शेखर कुछ-न-कुछ तो प्रभावित अवश्य होता है । लेकिन बाबा मदनसिंह की छाप उसपर बहुत गहरी पड़ती है । बाबा के ज्ञान सूत्र को शेखर ने अपने अंतस में बिछा लिया है और उन्हीं सूत्रों से तब उसके जीवन में गहनता आयी । और उनका जीवन निरंतर विकासोन्मुख रहा है । उदाहरणार्थ दो एक सूत्र नीचे दिया जा रहा है ।

"पीडा तपस्या है, किन्तु असली तपस्या तो जिज्ञासा है.... क्योंकि वहीं सबसे बडी पीडा है ।"[1]

"अभियान से भी बडा दर्द होता है, पर दर्द से भी एक विश्वास है ।"[2] ये सभी सूत्र शेखर जीवन को मात्र विकसित करने में ही योग नहीं देते, बल्कि उसके अहंकार को विश्वास में परिवर्तित करने में भी सहायक सिद्ध होते है ।

जेल जीवन के दौरान शेखर के सामने शशि के विवाह की समस्या आ गयी थी । पर विवाह का वह समाचार उसके नैतिक बल को शिथिल करनेवाला था ।

बन्दी बने हुए शेखर के लिए यही समस्या थी कि उसे अभी साबित करने का सवाल उठा है कि उसने ऐसा कोई जुर्म नहीं किया है ।

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 83
2. वही - पृ. 96

अविश्वास के विरुद्ध संघर्ष करने के दौरान, अपने बन्दी जीवन के दौरान उसने जीवन की पूरी व्यापकता को देखा और अनुभव किया । जीवन के इस व्यापकता के अंदर सभी प्रकार के मूल्य, तमाम बैरुद्ध उसके सामने बिखर पड़े । अब उसके सामने यही समस्या थी कि किस पक्ष को एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में ही इस बन्दी जीवन का अंकन हुआ है ।

व्यक्तिगत स्तर पर प्रेम की असमर्थता तथा असफलता शेखर को मानवता तथा समाज सुधार की ओर ले जाती है । लेकिन उसके व्यक्तित्व की ग्रन्थियाँ तथा कुंठाएँ उसे वहाँ भी असफल बनाती हैं । वस्तुत: प्रेम के संबंध में शेखर का मोह भंग कभी नहीं होता । वह निरंतर अलग-अलग भ्रमों से बाँधा रहता है और वह इन भ्रमों को ही अपनी विचारधारा बनाता है ।

शेखर का प्रेम भी उसके जीवन संघर्ष से जुड़ा हुआ है और इस संघर्ष का रूप भी दुहरा है । एक स्तर पर यह सामाजिक संघर्ष है और दूसरे स्तर पर एक तत्व दर्शन की तलाश सच्चाई को जानने की तलाश, संबंधों की जड़ तक पहुँचने की तलाश में विफल होने का दर्द है । विश्वास इस संघर्ष तथा तलाश में पुन: आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है ।

कुछ लोग शेखर को निरा अहंवादी तथा असामाजिक भी मानते है । लेकिन बारीकी से देखने पर लगता है कि शेखर न तो निरा अहंवादी है और न निरा असामाजिक, क्योंकि जैसे-जैसे वह लोगों के संपर्क में आता है उसका अहंवादिता ऊर्ध्वगामी शक्ति के रूप में परिवर्तित होती जाती है । उसका परिष्कार होता जाता है । जेल में विद्याभूषण से विचार ग्रहण करने में शेखर का अहं बाधक नहीं बना । मदनसिंह के सामने झुकने में शेखर ने शर्म महसूस की, मोहसिन के पक्कड़पन ने उसके अहं पर चोट की और उसके अनोखे व्यक्तित्व के सामने शेखर

श्रद्धा से झुका, जहाँ ऊँचाई देखी वहाँ नत हुआ । उसका अहं भी विवेक से अनुशासित है, संकल्प शक्ति उसमें असाधारण है ।

अंततः अज्ञेय ने शेखर को एक स्वतंत्र पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है । अज्ञेय के अनुसार वह विद्रोही है । इसलिए उसके आचरण में तथा विद्रोह दर्शन में भी ऐसे प्रसंग है, जो इस आत्मान्वेषी पात्र के चरित्र के अनुकूल दिखाई देते हैं ।

बाबा मदनसिंह

जेल जीवन के पात्रों में शेखर को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला बाबा मदनसिंह है । विद्याभूषण मोहसिन और रामजी ने भी शेखर को प्रभावित किया है । लेकिन बाबा का नाम ही अग्रणी है । बाबा इक्कीस वर्ष से जेल की हवा खा रहे हैं । फिर भी उनके चेहरे पर एक अजीब सी हँसी दिखायी पडती है । उनके सिर तथा दाढी के बाल शुभ्र हो गये हैं । वे पढे-लिखे नहीं थे । जेल में ही पढना-लिखना सीखे और बडी बडी बातों को जानने का प्रयास किया है ।

बाबा को विश्वास है कि गरीब की आग में दरअसल बहुत बडी शक्ति होती है । इसलिए वे शेखर से कहते है - "है भी मनुष्य कितना छोटा । पर आप मेरी बात माने न माने, वह भी ठीक है । मैं ने अपने लिए चाभी स्वयं अपने कष्ट से बनायी थी । आप ने सुना है न, गरीब की सांस वह धौंकनी होती है, जो लोहा गला दे । उसी से मैं ने काम लिया ।"[1]

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 63

बाबा पढ़े-लिखे तो नहीं थे, उन्होंने जो कुछ भी सीखा वह अनुभव से सीखा । उन्होंने शेखर से स्पष्ट शब्दों में कहा - "देखिए मैं आप से कह चुका कि मैं पढ़ा लिखा आदमी नहीं हूँ । मेरी बात में कुछ सार होगा । तो इसलिए कि मैं ने जो पढ़कर नहीं जाना उससे सहकर जानने की कोशिश की है । यह भी मैं कह चुका हूँ कि जेल में आदमी स्वाभाविक ढंग से नहीं रहता या सोचता, उसका तर्क विकृत होता है । तब मेरी बात का क्या मेल ? मेरे तो कुछ एक सूत्र है जो मैं ने अपनी तसल्ली के लिए गढ़ लिये हैं । एक सूत्र यह भी है कि हर एक को अपना रास्ता खुद बनाना चाहिए ।"[1]

बाबा दासता के कट्टर विरोधी रहे हैं क्योंकि इस स्थिति में व्यक्ति का मौलिक अधिकार भी छीन जाता है । बाबा के ही शब्दों में "दासता क्या है ? अप्रिय तथ्य का ज्ञान नहीं, असत्य का ज्ञान भी नहीं, दासता है सत्य या असत्य की जिज्ञासा को शांत करने में असमर्थ होना, वह बन्धन, वह मनाही जिसके कारण हमारा ज्ञान भागने का अधिकार छिन जाता है ।"[2]

बाबा ने इस प्रकार सैकड़ों सूत्र बना लिये थे, जो इनके जेल जीवन के संबल थे । यहाँ उनके कुछ सूत्र द्रष्टव्य है । हमारी सभ्यता मानव को शैशवावस्था को बढ़ाने का अन्यतम प्रयास है । वह चाहती है सुरक्षा, पुरुषत्व मांगता है साहस ।"[3]

"मुझे दीखता है कि शांत बैठा रहना तपस्या नहीं है, शांत न बैठ सकने से ही तपस्या शुरू होती है ।"[4]

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 63
2. वही - पृ. 63
3. वही - पृ. 64
4. वही - पृ. 64

क्रांति का प्रमाण यह है कि उसके लिए चारित्र्य आवश्यक है । बाबा मदनसिंह के विनम्र स्वाभिमान के सामने शेखर का हठीला अहम टिक नहीं पाता है । यों तो बाबा ने बहुत सारे ज्ञान-सूत्र शेखर को सुनाये हैं । लेकिन उनमें से कुछ ही ऐसे है जिनका प्रभाव शेखर पर अत्यधिक पडा हुआ है । इन्हीं ज्ञान सूत्रों से उसका जीवन दर्शन भी अभिव्यक्त हो सका है । एक सूत्र है - पीडा तपस्या है, किन्तु असली तपस्या तो जिज्ञासा है क्योंकि वही सबसे बडी पीडा है । ये सूत्र शेखर के जीवन में आरंभ से मिलता है । इसीसे उसका जीवन का विकास होता है ।[1]

हिंसा अहिंसा संबंधी वार्तालाप से शेखर में गहनता का गुण आया है । बाबा ने शेखर से स्पष्ट कहा है - निष्क्रियता, कायरता, सबसे भीषण और घृणित प्रकार की हिंसा है । शेखर के यह कहने पर कि अगर आत्मपीडन, आत्मबलिदान अहिंसा है तो यह क्यों कहा जाय कि सब रक्तपात हिंसा है । बाबा मदनसिंह ने फिर कहा रक्तपात कभी सामाजिक कर्तव्य हो जाता है । अगर ऐसा है तो वह रक्तपात अनुचित नहीं रहता, और अहिंसात्मक वह हो ही सकता है । वे अक्रमात्मक अहिंसा में विश्वास करते हैं क्योंकि वहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होती है । शेखर अन्ततोगत्वा इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि हिंसा सुरक्षात्मक भी सफल हो सकती है ।

बाबा मदनसिंह प्रकृति और मानव जाति के भविष्य में गहरी आस्था रखते है । बाबा प्रकृति को बडी चीज़ मानते हैं । यह भी मानते है कि उसके नियम एक बहुत विशाल बुद्धि पर, प्रज्ञा पर टिके हुए हैं । और उन्हें मानव जाति के भविष्य में गहरा विश्वास है । उनके सम्मति में क्षतिपूर्ति स्वयंभू है ।

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 64

शेखर को कभी-कभी बाबा के इस सूत्र - हरेक को अपना रास्ता खुद खोलना चाहिए - में सन्देह होता है और वह इस तर्क वितर्क में उलझकर वह बाबा के पास स्पष्टीकरण के लिए आता है । बाबा ने स्पष्ट शब्द में कहा प्रश्न अवश्य सामाजिक भी है । मुझे देखना है कि हमारा भारतीय जीवन दर्शन अंतर्मुखी और व्यक्तिवादी है । जैसे हम मुक्ति का साधन यही मानते है कि जहाँ तक हो सके अपने को समाज से अलग खींच ले । इस व्यक्तिवाद का परिणाम है कि हम पाप पुण्य भी व्यक्तिगत समझते है । तभी तो हमारे धर्मात्मा लोग साँपों को दूध पिलाना भी पुण्य समझते है । सामाजिक दृष्टि से यह हिंसा है । खासकर हम लोगों को अपने आदर्शों में सुधार की ज़रूरतें हैं, क्योंकि हम नीचे है ।'[1]

शेखर के मन में बाबा मदनसिंह के लिए गहरे आदर का भाव उत्पन्न हो गया था । इसलिए अंतिम दिनों में जब बाबा अधिक अस्वस्थ रहने लगे तब शेखर उन्हें प्रतिदिन देखने जाया करता था ।

इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि बाबा दासता के विरोधी, सहज स्वाभिमानी देश प्रेमी ईमानदार तथा बड़े ही जीवंत पात्र थे । इसके साथ-साथ वे प्रकृति प्रेमी, भविष्य विश्वासी तथा आक्रामक अहिंसा के पुजारी भी थे । इनके जीवन से शेखर का व्यक्तित्व प्रामाणित हुए बिना नहीं रहता ।

शशि

शशि ही अज्ञेयजी की एक ऐसी अन्यतम सृष्टि है, जो एक साथ बहिन, स्त्री और माँ का प्यार देना जानती है और दूर रहकर भी अपने

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 72

प्रेमी शेखर को बचाने का मोह नहीं त्याग पाती । अज्ञेय जी सभी नारी पात्रों में शशि का स्थान सर्वप्रमुख रहा है । वह एक की पत्नी और दूसरी की प्रेमिका है । वह स्वयं को मिटाकर शेखर के बिखरे हुए व्यक्तित्व को एक स्वरूप एवं सुनिश्चित पथ की ओर उन्मुख करने में योग देती है । शशि सदा शेखर के लिए अपनी निजता का हनन करती रही है । उसका आत्मोत्सर्ग तथा त्याग अपने आप में बेजोड ही कहा जा सकता है । वह सहृदय एवं सहनशील भी है । शशि पति से दुर्व्यवहार तथा मार को निरंतर सहती रहती है, क्योंकि यह अनमेल विवाह उसने मात्र अपनी माँ की मान रक्षा के लिए किया था । शशि के ही शब्दों में "मैं ने ब्याह किया नहीं था, मेरा तो ब्याह हुआ था ।"[1] शशि ने शेखर को उसके कर्तव्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया और कहा था... "दुःख उसकी आत्मा को शुद्ध करता है, जो उसे दूर करने की कोशिश करता है । और किसी का नहीं शुद्धि दूसरे के साथ दुःखी होने में नहीं, दूसरे के स्थान पर दुःखी होने में है ।"[2]

शशि का दांपत्य जीवन सुखी नहीं था । इसका संकेत शशि के ही शब्दों में व्यक्त हुआ है । वह कहती है "कभी सोचता हूँ, क्या जीवन ऐसे ही बीतेगा, जाकर मूली की तरह बढ़ना और उखाड लिया जाना, बसर किसी करे ।" एकमात्र शशि ही ऐसी है जो शेखर को यह समझाती है कि संसार से अलग रहकर कोई भी व्यक्ति अधिक दिन तक काम का नहीं रहता । इसलिए वह शेखर को शादी के लिए भी उकसाती है । वह कहती है - "तुम ने जिस तरह से अपने को संसार से अलग खींच लिया है, इस तरह आदमी बहुत देर तक काम का रहेगा इसमें मुझे सन्देह होता है । इसमें यथार्थ पर तुम्हारी पकड छुट जायेगी ।"[3] वह फिर कहती है "तुम्हें एक साथी खोजना चाहिए जो

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 115
2. वही - पृ. 115
3. वही - पृ. 156

बराबर साथ चल सके, साथ क्लेश भोग सके और साथ सुख पा सके.... क्लेश या सुख बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात साथ ही है... सांझा करने सहने की क्षमता ।"[1]

शशि ने भी बाबा मदनसिंह की तरह जीवन जीने का एक सूत्र बना लिया था जिसे वह शेखर से कहती है - दर्द से बड़ी लाचारी होती है - जितना बड़ा दर्द उतनी ही बड़ी - नहीं तो दर्द के सामने जीवन हमेशा हार जाय ।" ऐसे अनेक स्थल हैं जिनसे यहीं स्पष्ट होता है कि शशि ने सदा अपने निजत्व की आहुति देकर शेखर को विकसित होने में योग दिया है । कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है । शशि शेखर से कहती है - मैं नहीं चाहती कि तुम मानव कम होओ, शेखर, किन्तु अगर तुम में उसको क्षमता है तो उससे बड़े होने की अनुमति-स्वाधीनता मैं तुम्हें सहर्ष देती हूँ । आगे वह फिर कहती है, मृत्यु तू भी तो छाया है, ग्रास ले इस छाया को यदि ताकत है तुझमें यदि साहस है मशाल को तोड़ दे, कुचल दे, मटियामेट कर दे - देह मशाल है और उसे एक दिन जलकर मिटाना ही है, पर उसकी लौ तो ऊपर उठती है - वह और वह और वह - तेरे चंगुल से परे तुझे चुनौती देती है....."[2]

उपर्युक्त पंक्तियों से इस आशय की पुष्टि हो जाती है कि एक छाया तो मृत्यु है, जिसे दूसरी छाया (शशि) अपने आपको ही ग्रसने के लिए आमंत्रित कर रही है । इसमें शशि के आत्म बलिदान की झलक ही पूर्ण रूपेण प्रतीत होती है ।

शशि द्वारा निर्मित सूत्र शेखर के जीवन को विकसित करने में बहुत उपयोगी कार्य किये है । शशि शेखर की समवयस्का है, किन्तु उसका विवेक

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 157
2. वही - पृ. 248

बडा ही गहरा है, उसकी संवेदना बडी प्रशस्त और ज्ञान बडा ही विशद है । वह शेखर को आगे बढाने के लिए अपनी आहुति देती रही है । क्योंकि वह स्त्री को ही पुरूष की प्रगति का एकमात्र माध्यम मानती है । शेखर के यह पूछने पर कि तुम अपने आप को मिटा रही हो - मेरे लिए - शशि ने उत्तर में कहा था - तुम पूछते हो तो कहती हूँ । लो सुनो । स्त्री हमेशा से अपने आपको मिटाती आयी है । ज्ञान सब उसमें संचित है, जैसे धरती में चेतना संचित है । पर बीज अंकुरित होता है, तो धरती फोडकर, धरती अपने आप नहीं फूलती-फलती । मेरी भूल हो सकती है, पर मैं इसे अपमान नहीं समझती कि संपूर्णता की ओर पुरूष की प्रगति में स्त्री माध्यम है - और वहीं एक माध्यम है ।[1]

शशि को अपने भविष्य की चिंता नहीं है । वह कहती है भविष्य क्या है, नहीं जानती और मैं ने जो मार्ग अपने लिए निर्धारित किया है, उसमें भविष्य होने, न होने का प्रश्न भी नहीं है । वह किसी को मार्ग तो नहीं दिखा सकती, लेकिन प्रेरणा स्रोत अवश्य बन सकती है । शशि के ही शब्दों में जीवन में हर एक अपना मार्ग स्वयं खोजना चाहता है । हम किसी को मार्ग नहीं बता सकते, किसी को प्रकाश भी नहीं दिखा सकते, हम कर सकते है तो इतना ही कि पथिक के पैर दाब दे, उसका कवच कस दे, अगर उसके पास दिया है तो उसकी बत्ती कुछ उकसा दे ।[2]

उपन्यास में लेखक ने कहीं भी ऐसा संकेत नहीं दिया है जिससे शेखर और शशि के शारीरिक प्रेम का प्रमाण प्राप्त हो सके । शशि के पति रामेश्वर ने उसके साथ जो कुछ भी दुर्व्यवहार किया था, उन सब का आधार मात्र शंका है । ऐसी स्थिति में शशि भी अपने आप में असाधारण ही कही जायेगी ।

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 216
2. वही - पृ. 77

शशि एक ठोस विवेकशील पात्र है शेखर के प्रेम में डूबी हुई वह बार-बार उसे अकर्मण्यता और रोमानी मोह के दायरे में भटकने से रोकने की चेष्टा करती पायी जाती है ।

ईमानदारी से देखा जाये तो शशि का शेखर के प्रति ही नहीं अपने जीवन साथी रामेश्वर के प्रति भी किया गया प्यार सच्चा एवं स्वस्थ ही रहा है । उसका आत्मोत्सर्ग अन्यतम है, अद्वितीय है । शशि अकलुष, भावनात्मक अमर प्रेम की वह निशानी है जिसने अपने शंकाग्रस्त जीवन साथी रामेश्वर के द्वारा प्राप्त असह्य आघात एवं अपमान को सहते हुए शेखर के जीवन को विकसाने एवं बढ़ाने में अपने आप को भस्म कर दिया है । अवशेष के नाम पर यदि कुछ शेष भी रह गया है तो वह है उसके पवित्र परित्याग रूपी राख की ढेरी ।

निष्कर्षत: हम कहा जा सकता है कि केवल शशि ही एक साथ बहिन, स्त्री और माँ का प्यार दे सकने में सफल हो सकी है । ऐसे त्रिकोणी प्यार को निबाहना बच्चों का खेल नहीं है । शशि और रामेश्वर के अनमेल विवाह के कारण शशि के साथ जो कुछ भी अप्रिय घटनाएँ घटती हैं, उन्हें देखते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि समाज में इस प्रकार के विवाहों का बढ़ावा देना संगत नहीं है । इसका परिणाम हम सबके सामने हैं ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शेखर के व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं, कवि और सौंदर्यप्रिय आदि । शेखर के व्यक्तित्व में प्रेम और पीड़ा का मुख्य सर्जक चरित्र शशि है । शेखर और शशि का संबंध तलवार और म्यान का संबंध है । म्यान का महत्व तलवार के लिए है । इसी प्रकार शशि शेखर के लिए समर्पित है । समाज के विभिन्न स्तरों, वर्गों और जाँत-पाँत के स्त्री-पुरुषों के

चित्र उपन्यासों में भरे हुए हैं । थुक्कु मास्टर, प्रोफेसर, हीथ आदि पात्र मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, रूढ़िबद्धता, सामाजिक नीति के बन्धन आदि मध्यवर्गीय विशेषतायें इनमें दिखाई देती है । बाबा मदनसिंह पाषाण हृदय का केवल दार्शनिक नहीं है, बल्कि साधारण आदमी तरह तरह दुःख के वक्त रोनेवाला जीव भी है । रामजी का चरित्र विशिष्ट और प्रतिनिधि दोनों दृष्टियों से गरिमापूर्ण है । रामजी की निर्भीकता, कठोरता, स्पष्टवादिता और चरित्र के पहलू जाट वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । पुरुष पात्रों की तरह नारी पात्रों की भी विविधता है । शेखर की माँ, मौसी विद्यावती, बड़ी बहन सरस्वती, शशि, आया जिनिया अंती नौकरानी फूल सावित्री, शारदा, शीला, शांति, मिस प्रतिमा लाल और मणिका ये सारी नारी पात्र उपन्यास को विविधता प्रदान करते हैं ।

नदी के द्वीप

भुवन

"नदी के द्वीप" उपन्यास का कथानायक है भुवन । वह कास्मिक रश्मियों की खोज में लगे भौतिक शास्त्र का विद्वान है । वह सदा अपने शोध कार्य में व्यस्त दिखाई पड़ता है । यों देखा जाये तो शेखर एक जीवनी के शेखर का प्रौढ़ रूप ही "नदी के द्वीप" में भुवन के रूप में दिखाई देता है । इसलिए जहाँ एक ओर शेखर का व्यक्तित्व निरंतर विकसित होता हुआ सामने आता है । वहीं दूसरी ओर भुवन का व्यक्तित्व पहले से ही विकसित होता हुआ सामने आता है । दरअसल भुवन आज के विशिष्ट मध्यवर्गीय युवा मन का, उसकी आत्माकामी व्यक्ति-चेतना का एक लम्बी सीमा तक सच्चा प्रतीक है । मात्र भुवन ही नहीं बल्कि सभी पात्रों में इतना खुलापन दृष्टिगोचर होता है कि उन्हें स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

डा. भगवत शरण उपाध्याय के विचारानुसार "भुवन गंभीर विचारशील, शिष्ट, व्यक्तिनिष्ठ, भावुक, कामुक, एकान्तप्रिय, कमज़ोर, लोकग्राही, असामाजिक विचारशील पंडित है । जटिल प्रश्नों पर विचार करता है । सत्य-तथ्य के अन्तर का विवेचन करता है ।[1]

चन्द्रमाधव के शब्दों में भुवन के जीवनांश की अभिव्यक्ति हम देख सकते हैं - वह खिलाड़ी है, नायक है, वह ज़िन्दगी को अंगूर के गुच्छे की तरह तोडकर उसका रस निचोड़ लेगा । लता को झझोड़ डालेगा, कुंज में आग लगा देगा, वह आराम से नहीं बैठेगा । एक पैनी ईर्ष्या की नोक उसे सालने लगी ।"[2] वैसे इन पंक्तियों से चन्द्रमाधव का भुवन के प्रति ईर्ष्या का भाव तो व्यक्त होता है, इसके साथ-साथ भुवन का व्यक्तित्व भी उजागर होता है ।

भुवन के जीवन में रेखा और गैरा दोनों प्रेमिकाओं के रूप में आती हैं । वैसे गैरा का परिचय कुछ पुराना ही है । वह शिष्या से अब प्रेमिका भी हो गयी है । उनका परस्पर संबंध अत्यधिक प्रीतिकर और गाढ़ा हो गया है । अज्ञेयजी के ही शब्दों में "इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के शोध में, उनमें आसमान संबंध में क्रमशः परिवर्तन होता गया था, मास्टरजी से वह क्रमशः भुवन मास्टरजी, होकर भुवनदा हो गया था और एक नया, समान प्रीतिकर सत्य भाव उनमें आ गया ।"[3]

भुवन सदा प्रतिभा को उपयोग में लाने का समर्थक रहा है । उसका विश्वास है कि "अपनी प्रतिभा का उपयोग करना, प्रस्फुटित होने का मार्ग न देना उसे जीवनानन्द के शोध में न लगाना निष्क्रिय आत्म-हनन है,

---

1. समीक्षा के सन्दर्भ - डा. भगवत शरण उपाध्याय - पृ. 263
2. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 53
3. वही

अंधकार को आत्म समर्पण है । वह सदा गैरा के भविष्य में दिलचस्पी रहता है । अज्ञेयजी के शब्दों में "भुवन तटस्थ है, पर गैरा के भविष्य में उसे गहरी दिलचस्पी है, वह क्या करती है, या नहीं करती है.... उसका क्या होता है.... यह भुवन के लिए अत्यंत महत्व रखता है क्यों ? क्योंकि वह उसकी भूतपूर्व शिष्या है ।"[1]

भुवन विवाह को सहज धर्म की संज्ञा देकर उसे प्रगति की एक उत्तम सीढ़ी भी मानता है । भुवन के ही विचार से - "जब तक कोई स्पष्टतया मनोवैज्ञानिक केस न हो विवाह सहज धर्म और व्यक्तियों की प्रगति और उत्तम अभिव्यक्ति की एक स्वाभाविक सीढ़ी है ।"[2] वह यौन-स्वातंत्र्य के लिए सतत् संघर्षरत है । उसके अनुसार पुरातन जीवनादर्श एवं संस्कार आधुनिक युग के जीवन यथार्थ के साथ मेल नहीं खाते ।

भुवन पूर्णतः आशावादी है इसलिए वह सब पर विजय प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प दिखाई देता है । वह मानव की प्रतिष्ठा और स्वाधीनता के प्रति भी सजग है । वह संस्कृति नीति और विज्ञान को जीतने के लिए आह्वान कर रहा है । "हमें केवल युद्ध नहीं जीतना है, हमें शांति भी नहीं जीतनी है, हमें संस्कृति जीतनी है, विज्ञान जीतना है, नीति जीतनी है हमें मानव की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा जीतनी है । हमें आशा नहीं होनी है ।"[3]

जिस समय भुवन बालू का घर बनाकर रेखा को दिखाता है, रेखा उसे मुग्ध दृष्टि से देखती है, उसी समय उसे निश्छल भुवन में अगाध कौतुक प्रियता भोलापन दिखाई देता है । इतना ही नहीं बल्कि वह उसके शिशु हृदय

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 63
2. वही - पृ. 78
3. वही - पृ. 81

को भी पहचान लेती है और सोचती है वैज्ञानिक डा. भुवन के अंदर एक गंभीर संवेदनशील और खरा मानव छिपा है, यह तो उसने जाना था लेकिन उस निश्चल ऋजुता के नीचे इतना भोला, इतना कौतुकप्रिय शिशु हृदय भी है, यह उसकी सजग दृष्टि न देख पायी थी ।

डा. रणवीर रांग्रा के अनुसार भुवन के जीवन में निरंतर उसकी सेक्स भावना यानी रेखा की ही प्रबलता रही, पर अन्ततोगत्वा उसने गौरा को जो पूर्णत: स्वीकार कर लिया उसके पीछे सेक्स प्रवृत्ति नहीं थी ।"[1]

यह ठीक है कि भुवन जितना गैरा के प्रति चिंतित दिखायी पड़ता है । उतना रेखा के प्रति नहीं । यद्यपि उसने सर्वप्रथम रेखा के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किया है फिर भी भुवन के नज़र में रेखा तो मात्र एक रेखा ही रह जाती है और गैरा उस रेखा को लांघकर भुवन के अन्तस क्षेत्र को सदा के लिए अधिकारिणी बन जाती है ।

भुवन रेखा के व्यक्तित्व से प्रभावित दिखायी पड़ता है । भुवन के ही शब्दों में -"पर रेखा के अस्तित्व का एक बोध मानो हर समय उसकी चेतना के किसी गहरे स्तर को आलोकित किये रहता और उसके प्रतिबिंबित प्रकाश से अंतकरण को रंजित कर जाता ।"[2] वह स्त्रियों के लिए विवाह और नौकरी को विरोधी कैरियर मानता है । गैरा के एक प्रश्नोत्तर में भुवन ने कहा था, "मेरी बात दूसरी है.... पुरुष के लिए विवाह और नौकरी विरोधी कैरियर नहीं है और स्त्री के लिए साधारणतया तो होते ही है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास - सं. सुषमा प्रियदर्शिनी - पृ. 182
2. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 204

भुवन गैरा के भविष्य के विषय में ही चिंतित दिखाई पड़ते है । भुवन गैरा को सर्वस्व समझता है । भुवन ने जो कुछ भी रेखा के साथ संभोग संतुष्टि के लिए किया है उसका उसे न तो दुःख है और न तो परिताप ही । वह अपने किए हुए को अच्छी तरह से जानता है । भुवन ने स्पष्ट कहा है -"रेखा जो कुछ हुआ है, मुझे उसका दुःख नहीं है, परिताप नहीं है । और जो हुआ है, उससे मेरा मतलब केवल अतीत नहीं हैं, भविष्य भी है.... कारण भी परिणाम भी । और यह नकारात्मक बात लगती है.... मैं कहूँ कि मैं प्रसन्न हूँ, एक आनंद है मेरे भीतर. एक शान्ति.... भविष्य के प्रति एक स्वागत भाव... यहीं मैं तुम से कहना चाहता हूँ.. वह जो आयेगा... आयेगा या आयेगी, वह तो मुहाविरा है... वह मेरा है, मेरा वांछित है.... उसने मैं लजाऊँगा नहीं । वह तुम मुझे दोगी । भूलना मत... तुम्हें और तुम्हारी देन को मैं वरदान करके लेता हूँ ।"[1]

रेखा द्वारा भ्रूण को नष्ट कर दिये जाने के समाचार से भुवन क्षुब्ध होता है और उसे ही इसका दोषी मान लेता है । भुवन के मन में जैसे हलचल-सी मच जाती है । फिर भुवन को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि रेखा को दोषी मानना ठीक नहीं है, तब वह उसके प्रति संवेदनशील भी हो उठता है । भुवन रेखा के आगे झुकने को भी तैयार हो जाता है । भुवन ऐसा भी मानता है कि एक ऐसी स्थिति आती है जबकि ये अनुभूतियाँ जो एक दूसरे को मिलाती है, अलग भी कर देती हैं । इसलिए वह कहता है, रेखा एक बात को तुम समझोगी - तुम नहीं समझोगी तो कोई नहीं समझ सकेगा - प्यार मिलता है, व्यथा भी मिलाती है साथ माँगा हुआ क्लेश भी मिलाता है, लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि एक सीमा पार कर लेने पर ये अनुभूतियाँ मिलाती नहीं, अलग कर देती है, सदा के लिए और अन्तिम रूप से ।"[2]

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 220
2. वही - पृ. 262

एक बार तो भुवन रेखा के साथ विवाह रचाने का भी प्रस्ताव रखता है, लेकिन इसमें कहाँ तक भुवन के दिल की सच्चाई है, यह कहना बडा कठिन है ।

भुवन के निराश होने पर रेखा उसे आशान्वित करती है और कहती है -"निराशा मत होओ, भुवन अपने जीवन को परास्त भाव से नहीं, सृष्टा भाव से ग्रहण करो । एक विशाल पैटर्न है जो तुम्हें बनना है, तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उसका एक अंग है, प्रत्येक व्यथा एकेक तार-लाल, सुनहला नीला.... मैं, मैं भी उसे ताने-बाने के तारों का पुँज हूँ, तुम्हारे जीवन पट का एक छोटा सा फूल । मेरे बिना वह पैटर्न पूरा न होता, लेकिन मैं उस पैटर्न का अंत नहीं हूँ - मैं इसमें सुखी हूँ कि मैं ने भी उसमें थोडा सा रंग दिया है - शायद थोडे-थोडे, कई रंग सब उज्ज्वल नहीं है लेकिन कुल मिलाकर यह फूल कभी अप्रीतिकर या तुम्हारे पैटर्न में बेमेल नहीं होगा यही मानती हूँ मेरा आशीर्वाद लो, भुवन और आगे बढो, जहाँ भी तुम जाओ, जो भी करो मेरा प्यार और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं । मेरा विश्वास तुममें अडिंग है ।

स्पष्ट हो जाता है कि भुवन एक वैज्ञानिक है, जो कास्मिक रश्मियों की खोज में लगा हुआ है । लेकिन कथा से उसके इस वैज्ञानिक होने का कोई भी संकेत नहीं मिलता । भुवन प्रारंभ से लेकर अंत तक सदा कामुक दिखायी पडता है । लेकिन वह एक समय एक ही के साथ इस वासना में रत दिखायी देता है ।

भुवन तथा रेखा के संबंधों में एक गहरा अंतराल है जिसे भुवन कम लेकिन रेखा बहुत अनुभव करती है । इसका मुख्य कारण यह है कि भुवन अपेक्षाकृत अनुभवहीन तथा कोरा है ।

भुवन मुक्त रूप से यायावर होकर बिचरना चाहता है । सभ्यता तथा पालतू संस्कारों की जो भुवन सर्त्सना करता है वह मूलत: वर्गीय सभ्यता द्वारा अक्षम बनाये गए उसके व्यक्तित्व की ग्रन्थि है । इस सभ्यता से दूर जाने के छद्म प्रयत्नों के रूप में की गई उसकी प्रकृति यात्रायें सभ्यता द्वारा पंगु बनाये गये व्यक्ति की पिकनिक यात्राएँ मात्र हैं ।

अंत में आते आते रेखा के प्रति भुवन उदासीन हो जाता है । रेखा दक्षिण की ओर चले जाने के बाद भुवन उसे भूल जाता है । उसको महीनों तक पत्र भी नहीं लिखता ।

भुवन का विश्वास है कि समर्पण किसी को बाँधता नहीं, उससे केवल मन में एक व्यापक कृतज्ञता अवश्य भर उठती है । भुवन स्वयं स्पष्ट करते हुए कह रहा है - "समर्पण है तो न वह बांधता है न अपने को बद्ध अनुभव करता है, केवल एक व्यापक कृतज्ञता मन में भर जाती है तू हो कि मैं हूँ । एक दूसरे को पहचानने के बाद आश्चर्य यही है कि हम है होना ही एक नये प्रकार का संयुक्त होना है । मैं पहले भी था, अब भी हूँ पर क्या दो तो होने एक है ।"[1]

रेखा द्वारा अजात के नष्ट कर दिये जाने पर वह उसके लिए दु:खी दिखाई देता है । लेकिन वह रेखा को दोषी मानकर उससे कन्नी भी काटने लगता है । भुवन भले ही उस अजात के प्रति अपना लगाव दिखाता है, लेकिन भुवन ही बतला सकता है कि उसमें कितनी सच्चाई है । लगता है कि उसके इस लगाव में सच्चाई रंचमात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होती । इससे उसका खोखलापन और भी उभरकर सामने आ जाता है ।

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 238

रेखा के साथ उसके प्यार को भी लेकर कुछ इसी प्रकार की धारणा उत्पन्न होती है । उसके सच्चे प्यार और समर्पण की बात गले नहीं उतरती क्योंकि रेखा के रखते हुए भी वह गैरा के प्रेम-पाश में बंधता है और अंत में उसी से अपना ब्याह भी रचाता है । हालांकि यह तो संभव भी है वह और ऐसे अनेक नारियों के साथ भी प्रेम करता था, लेकिन ब्याह तो यदि वह रेखा से ही करता तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता, लेकिन ऐसा वह नहीं कर सका । वह कामुक था और यौन तृप्ति तथा उसकी स्वतंत्रता के लिए सदा संघर्षरत था ।

आखिर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शेखर जहाँ अहम के विद्रोही तो होता है, लेकिन उसका तेज और उसकी दृढ़ता कभी समाप्त नहीं होती । लेकिन भुवन का तेज तथा दृढ़ता कभी समाप्त नहीं होती हुई जान पड़ती है । उसमें भरपूर एकांतिकता तथा दुराव की भी कमी नहीं है । उसमें खुलापन तो है लेकिन वह भी बौद्धिक युक्तियों से आच्छादित है । वैसे वह एक मध्यवर्गीय युवक-मन का प्रतीक तो है ।

रेखा

रेखा मध्यवर्गीय सुशिक्षित नारी है । उपन्यास में उसका चित्रण प्रारंभ में ही देखा जा सकता है । एक रेल यात्री के रूप में, भुवन और चन्द्रमाधव के साथ । वह कल्पना में विचरण करनेवाली तथा सपनों की लंबी लडी गूँथनेवाली विचारशील नारी है । इसको स्पष्ट करनेवाली ये पंक्तियाँ देखिए जिन्हें रेखा ने भुवन के एक प्रश्न के उत्तर में स्वयं कहा है -"आपको क्या मालूम है, मध्यवर्ग की बेकार औरत कितनी लंबी लडी गूँथ सकती है सपनों की ।"[1] भुवन जहाँ एक ओर जीवन को नदी पर सेतु बांधने की कल्पना को बडी मूर्खता समझता है वहीं

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 122

रेखा उसे सुख और सिद्धि का साधन मानती है । उसके ही शब्दों में - "हाँ मगर सचमुच सेतु बन सके तो दोनों ओर से रौंदे जाने में भी सुख है, और रौंदे जाकर टूटकर प्रवाह में गिर पड़ने में भी सिद्धि । पर मैं तो कह रही हूँ कि मैं तो उतनी कल्पना भी नहीं कर पाती मैं तो समझती हूँ, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे-छोटे द्वीप है, उस प्रवाह से गिरे हुए भी उससे कटे हुए भी, भूमि से बंधे और स्थिर भी, पर प्रवाह में सर्वथा असहाय को... न जाने कब प्रवाह की एक स्वैचारिणी लहर आकर मिटा दे, बहा ले जाय, फिर चाहे द्वीप का फूल-पत्ते का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यों न रहा हो ।"[1]

रेखा क्षण की वास्तविकता में विश्वास करती है । इसलिए वह क्षण को मांग लेने में ही जीवन की सार्थकता ही नहीं बल्कि उसका वैभव भी समझती है । एक स्थल में वह कहती है "मुझे सब रास्ते एक साथ दीखते हैं... और रास्ते के आगे एक मंजिल भी दीखती है, जिसे मरीचिका मानना कठिन है ।"[2] थोड़ी देर के बाद गंभीर होकर पुन: स्पष्ट करती है, "और इसलिए सब मंजिलें झूठ हो जाती हैं, और कोई रास्ता नहीं रहता । मैं सचमुच कहीं पहुँचना नहीं चाहती, चाहना ही नहीं चाहती । मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नहीं, केवल क्षण और क्षण का योग फल है.... मानवता की तरह ही काल प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति सत्य है, वास्तविकता क्षण की है । क्षण सनातन है ।"[3] जाहिर है कि रेखा क्षण को ही विराट मानती है और उसके प्रति समर्पित भी है ।

रेखा का प्रथम दांपत्य जीवन सुखी नहीं रह गया था, तो उसे तलाक का सहारा लेना पड़ा था । रेखा पुनर्विवाह के पश्चात् भी भुवन से पूर्ववत् प्रेम-व्यापार करती है । उसने अपने जीवन के एक पहलू को चरित्रहीन ही माना है,

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 22
2. वही - पृ. 35-36
3. वही - पृ. 36

लेकिन क्या यह समाज की अन्य विवाहित नारियों के लिए संभव हो सकेगा । नैतिक दृष्टि से अशोभनीय के अलावा पारिवारिक गठबन्धनों को तोडनेवाला ही कहा जायेगा । रेखा की इन अवैध हरकतों से यही निष्कर्ष निकलता है कि वह ऐसा मात्र अपनी मांग-लिप्सा को सन्तुष्ट करने के लिए करती है । शशि की तरह रेखा में समर्पण की भावना तो नहीं दिखायी देती है ।

रेखा एक स्वतंत्र नारी व्यक्तित्व का परिचय देती है । पति द्वारा परित्यक्ता होने के कारण वह अकेली है, इसलिए अपने जीवन भर भी अकेली ही भटकती है । उसके अनुसार अकेले भटकने में एक शक्ति मिलती है क्योंकि दूसरों का हस्ताक्षेप बहुत कम रहता है । एक असाधारणता उसमें देखा जा सकता है । यह असाधारणता उसके आचरण की शिष्टता और परिष्कृत अभिरुचियों के कारण है । लेकिन उस रेखा के भीतर एक और सुलगती रेखा है जो अपनी राह पहचाना चाहती है ।

रेखा के व्यक्तित्व की गरिमा को स्पष्ट करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है "रेखा नव-यौवना नहीं है, उसका आकर्षण इसमें है कि उसने यौवन को उम्र को ही अधिक महत्व नहीं दिया है । सौंदर्य के सामान्य उपकरणों से ऊपर उठकर अपने व्यक्तित्व को दीप्ति विकसित की है । उसके आत्म-विश्वास के आगे यौन सौंदर्य मानो ठिठक गये हैं । रेखा के इस व्यक्तित्व में बौद्धिकता का ही गहरा रंग है । राग को उसने दबाया नहीं, पर राग से वह अनुशासित भी नहीं है ।"[1] लेकिन वास्तव में रेखा क्या है । वह अपने जीवन को बरबाद करता है । वह अपनी स्त्रीत्व का पालन सही अर्थों में नहीं करता है । अपने अहम की पुष्टि के लिए अपने को नष्ट करता है ।

---

1. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 101

गैरा के प्रति भुवन के आकर्षण से रेखा में किसी भी प्रकार की ईर्ष्या अथवा द्वेष की भावना नहीं पैदा होती है । वह उसको अपनी चूड़ियाँ तथा अंगूठी भी भेंट करती है । इस प्रकार रेखा के व्यक्तित्व में न तो आत्म पीड़ा है और न ईर्ष्या का भाव । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि एक साधारण नारी के लिए यह गहरी चोट पहुँचानेवाला है । इसलिए रेखा भारतीय संस्कारों से कुछ हटी हुई सी लगती है । वह पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित दिखाई पड़ती है ।

रेखा में हार-जीत की द्वन्द्वात्मक मानसिकता तथा स्थिति-स्वीकृति की क्षमता देखा जा सकता है । इसका प्रमाण देनेवाली ये पंक्तियाँ देखिए - भुवन रेखा से कहती है, तुम चले जाओगे मैं जानती हूँ कि तुम चले जाओगे । मैं जानती हूँ कि जीवन में कुछ आए और चला जाये - मैं ने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहता भी छोड़ दिया है । वह फिर कहती है मैं स्वयं गाऊँगी । गान को बन्दी करना नहीं चाहूँगी । और हो गाऊँगी चाहे टूटे स्वर से मेरा गान सुनोगे ।"[1]

रेखा का विश्वास है कि कृतज्ञता जीवन को सच नहीं बनाती, प्यार सच बनाता है । लेकिन वह अपने स्वस्थ एवं स्वाधीन पहलू से ही प्यार करने का समर्थन करती है । वैसे उसका विश्वास न तो हस्ताक्षेप में है और न ही बिगाड़ने में ।

रेखा समर्पण में ही अपने आपको सुदृढ़ एवं स्वतंत्र मानती है । भविष्य में अविश्वास करनेवाली रेखा, भुवन के भविष्य को उज्जवल देना चाहती है । लगता है रेखा भविष्य के बारे में स्पष्ट विचार नहीं रह पाती । भुवन के

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 214

एक प्रश्न के उत्तर में रेखा ने कहा "हाँ, भुवन तुम्हें क्लेश पहुँचाना नहीं चाहती... अविश्वास मैं ने नहीं किया पर... वह असंभव है । मैं ने तुम से प्यार मांगा था तुम्हारा भविष्य नहीं मांगा था, न मैं वह लूँगी ।"वह अपने को फुलफिल्ड तथा भुवन को कृतज्ञ समझती है । यहाँ स्पष्ट होती है कि रेखा अपने यौन तृप्ति के लिए ही भुवन के साथ लेती है । उसका समर्पण केवल शारीरिक है आत्मसमर्पण कभी नहीं ।

रेखा अपने पति हेमेन्द्र से विलग होने पर ऐसा महसूस करती है कि वह टूट गयी है । फिर वह अब भुवन को अपनी सारी आशाओं का केन्द्र मानती रही है । यद्यपि हेमेन्द्र से अलग होने के बाद उसने रमेश चन्द्र से अपना विवाह कर लिया था, फिर भी भुवन के प्रति उसके समर्पण के भाव को यथावत् ही देखा जा सकता है । वह कहती है - मैं तुम्हारी हूँ केवल तुम्हारी, तुम्हारी ही हूई हूँ और किसी की कभी नहीं, न कभी हो सकूँगी ये पार्थिवता के बन्धन, ये आकार ये सूने कंकाल.... महाराज, मेरे त्रिभुवन के महाराज.. किस साज में तुम आये मेरे हृदय पर मैं.... औसे कैसे तुम चले गये, मेरा गर्व तोडकर नहीं तुम्हीं मेरे गर्व हो, तुम्हारे ही स्पर्श से. सकल मम देह वीणा सम बाजे ।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि रेखा भुवन से अत्यधिक आकर्षित है । उसके पास अपने को समर्पित करने की लालसा है । ये समर्पण की भावना यदि हेमेन्द्र के प्रति होती तो उसके जीवन इस प्रकार नहीं हो जायेगा । भुवन के सामने सबकुछ समर्पित करने के बाद वह एक अन्य पुरुष रमेश से विवाह कर लेती है । इसके पश्चात् भी रेखा के मन में भुवन के प्रति लालसा है । अपने पति के साथ रहते वक्त एक अन्य पुरुष को मन में प्रतिष्ठित करना साधारण नारी के लिए उचित नहीं माना गया है । वह नैतिकता के परे है ।

---

1. नदी के द्वीप - पृ.214

यदि वह उसी भाव से अपने पति के प्रति भी समर्पित होती तो संभवत: उसका दांपत्य जीवन कटुता का सागर नहीं बनता । यहाँ भुवन के प्रति उसके समर्पण को लेकर एक प्रश्न सामने खडा होता है कि यदि वह भुवन के प्रति पूरी समर्पित थी तो उसे पुनर्विवाह करने की क्या आवश्यकता थी । पुनर्विवाह होने के बावजूद भी भुवन के साथ उसके प्रणय व्यवहार को देखकर उसकी कामुकता की पुष्टि होती है ।

लेखक के शब्दों में "रेखा नदी के द्वीप" का सबसे अधिक परिपक्व पात्र है । मेरी दृष्टि में वहीं उपन्यास का प्रधान पात्र है । वहीं अपनी भावनाओं के प्रति सबसे अधिक ईमानदार है । और अपने प्रति सबसे अधिक निर्मम । एक दूसरी तरह की ईमानदारी चन्द्रमाधव में भी है । वह दस्यु की ईमानदारी है जो नोच-खसोट कर पा लेना चाहता है किन्तु मूल्य चुकाने को तैयार नहीं है ।[1] पुन: उपन्यासकार के ही शब्दों में "रेखा की ट्राजडी उसके इसी समर्पण के अधूरेपन की ट्राजडी है - जितना ही वह पूरा है उतना ही वह भोक्ता के दोषों के कारण नहीं इसके गुणों की त्रुटियों के कारण मिलती है ।[2]

मेरी सम्मति से रेखा अज्ञेय की एक ऐसी अद्वितीय पात्र है । वह एक असाधारण नारी है । असाधारण होते हुए भी वह अन्तत: टूटती है । व्यावहारिकता को ठोकर मारनेवाली यह रेखा अंत में डा. रमेश के साथ विवाह रचाकर जीवन से समझौता भी करती है । वैसे 'नदी के द्वीप' की रेखा शेखर एक जीवनी की शशि की तुलना में अत्यधिक वैयक्तिक एवं असाधारण है । इसलिए वह शशि से कम विवादास्पद नहीं है । रेखा में व्यक्ति स्वातंत्र्य का असर पूर्ण रूप में देखा जा सकता । उसने अपने जीवन में जो कुछ भी किया है वे सब

---

1. हिन्दी के साहित्य निर्माता अज्ञेय - प्रभाकर माचवे - पृ. 26
2. वही - पृ. 27

उसकी ही चाह के अनुरूप ही है । जब व्यक्ति का चिंतन व्यक्ति स्वातंत्र्य पर निर्भर रहता है तब उसको परंपरागत नैतिक मूल्यों को तोडना पडा । रेखा के संदर्भ में ठीक यही हुआ । लेकिन अंत में वह टूटती है ।

गैरा

गैरा एक विदुषी महिला है । आरंभिक कक्षाओं में उसने शिक्षा भुवन से प्राप्त की है । इसलिए भुवन से उसका परिचय नया नहीं है । भुवन मास्टर के प्रति उसका आदर भाव क्रमशः सत्य और प्रेम भाव में परिणत होता है । गैरा का पूरा व्यक्तित्व रेखा के व्यक्तित्व के समान है । परन्तु रेखा के व्यक्तित्व में जो तीक्ष्णता है वह गैरा में नहीं है । उपन्यास में गैरा के व्यक्तित्व की एक विशेषता यही है उसको भुवन के संदर्भ में दिखाया गया है । भुवन के शिष्ट एवं वांछित पक्षों से प्रभावित एवं समर्पित होकर वह विकसित होता है । संपूर्ण समर्पण उसके व्यक्तित्व का मुख्य पहलू है । साथ ही साथ पूरी जीवन्तता भी है ।

गैरा को संगीत में भी रूचि थी और उसने विधिवत् अध्ययन शुरू किया था । उसने दक्षिण भारत में जाकर संगीत का अध्ययन किया है । दक्षिण भारत में संगीत सीखते समय ही गैरा को कलाकार की स्वतंत्रता का भान होता है । उपन्यासकार के ही शब्दों में "दक्षिण में ही गैरा ने पहले पहल समझा कि कलाकार कैसे देश काल के बन्धन से मुक्त हो जाता है । कोई भी लगन, कोई भी गहरी साधना व्यक्ति को बन्धनों से ऊपर ले जाती है ।

गैरा के प्रति भुवन का मन कोमल और उदार है । चन्द्रमाधव के पूछने पर भुवन गैरा का परिचय इस प्रकार देते हैं "मैं ने उसे दो वर्ष पढ़ाया था ।

अच्छी तरह पास हुई है । और उसमें जीवन है, जीवन की लालसा है । ऐसी जो उसे कई दिशाओं में अन्वेषण की प्रेरणा देती है । पढ़ने में बहुत अच्छी है, लेकिन सोचता हूँ आगे क्या है ? तो खेद होता है कि हमारे देश में लड़की के लिए सिवाय मास्टरी के या इधर कुछ डाक्टरी के और कोई कैरियर ही खुली नहीं है और ये दोनों गैरा के लिए नहीं है । उसका व्यक्तित्व बहुत कोमल भी है, बहुत संपन्न भी, उसकी अभिव्यक्ति इनमें नहीं है । वह कोई रचनात्मक एक्सप्रेशन चाहता, न जाने क्या ।"[1]

गैरा का दृष्टिकोण व्यापक है । अहंकार उसे छूता तक नहीं । निम्न पंक्तियों से इसी का संकेत प्राप्त होता है । चन्द्रमाधव के एक प्रश्न के उत्तर में वह कहती है "आप की मांग का अंतिम परिणाम है न कुछ यानी कुछ इतना स्वप्न की नगण्य हमारी साध का अंत है । सब कुछ इतना विशाल है कि आप भी उसमें समा जायें । यह अहंकारोक्ति लगती है न ? पर है नहीं, मैं न कुछ होकर ही सब कुछ के शोध में हूँ, अहंकार इस तरफ नहीं हो सकता, अहंकार तो सबसे बड़ा विभाजक है ।

गैरा के हृदय में भुवन के प्रति अपार स्नेह हैं । वह अपने आपको भुवन की सेवा में समर्पित कर देने के लिए लालायित है । भुवन ने अपने पत्र में अपने बीमारी तथा गैरा के स्मृति के बारे में लिखकर गैरा के पास ही भेजा था । पत्र से प्रभावित होकर गैरा ने लिखा है - आप मुझे लिखिए..... बताइए कि क्या बात है क्या मैं किसी काम नहीं आ सकती ? एक बार आपने कहा था, गैरा अबसे तुमसे बराबर-बराबर बात करूँगा । बराबर तो मैं कभी नहीं हो सकती, पर अगर आप बिलकुल छोटी ही नहीं, मानते तो क्या मुझे

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 65

अपना पूरा विश्वास देंगे । गैरा भुवन की राह में रोड़ा बनाना नहीं चाहती इसलिए वह कह रही है कि जहाँ भी ऐसा लगे कि मैं भुवन के हित या सुख शांति में बाधक हूँ वहाँ मैं हट जाऊँगी ।"[1]

गैरा भुवन के मानसिक क्लेश को भी महसूस करती है, मात्र ही नहीं उस क्लेश को दूर करने का भरसक प्रयास भी करती । गैरा भुवन को अपराधी होने देने की समर्थक नहीं है । उसकी अनुपस्थिति में भुवन चाहे भले अपराध को गले लगाकर फिरे, लेकिन उसकी उपस्थिति में तो वह ऐसा नहीं होने देगी । गैरा के अनुसार जो पीड़ित होता है उसी में कल्याण की भावना भी जागृत होती है ।

गैरा में उत्सर्ग की भावना परिलक्षित होती है । भुवन के प्रति अपने आपको उत्सर्ग कर देने में ही गैरा अपने जीवन की सफलता मानती है और इसके उस उत्सर्ग में किसी प्रकार का हेतू निहित नहीं है ।

गैरा ने भुवन में अपना भविष्य देखा है, उसका देवत्व देखा है । इसलिए वह कहती है - तुम मेरा भविष्य हो, मैं तुम्हें बनाती हूँ ।"[2] भुवन अंडमान की ओर और गैरा दक्षिण की ओर चली गयी थी । दोनों में पत्रव्यवहार का सिलसिला पूर्ववत् चल रहा था । गैरा के जीवन को एक लोक बनने लगी थी जो न तो बहुत गहरी थी और न बहुत कड़ी, फिर भी एक लोक । वैसे वह भुवन को दूर चले जाने पर भी उसे मुक्त रूप में ही देखना पसन्द करती है । भुवन अंडमान से लौटकर आता है और गैरा को वचन देता है कि वह अब फिर नहीं भागेगा ।

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 298
2. वही - पृ. 304

गैरा ही इस उपन्यास के एकमात्र सहनशील पात्र है । सहनशीलता इसलिए है कि वह भुवन से प्यार करती है । उसमें अपनी भविष्य देखती है और उसको सबकुछ समझती है । इस प्रकार अपनी सबकुछ समझनेवाले पुरुष के साथ एक अन्य स्त्री (रेखा) का संबंध जानकर भी वह सबकुछ सहकर भुवन की प्रतीक्षा में रहती है । उसके मन में रेखा के प्रति ईर्ष्या भी नहीं होती । एक साधारण नारी के लिए यह कार्य गहरी चोट पहुँचानेवाला है । रेखा भी अपने पति हेमेन्द्र से ईर्ष्या करती थी । इसका कारण यह है कि वह एक अन्य स्त्री से प्रेम करता था । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि भुवन के साथ रेखा के संबंध जानकर भी गैरा भुवन से विवाह करने के लिए तैयार होती है । लेकिन रेखा ने क्या किया ? उसने एक अन्य पुरुष भुवन से प्यार किया और अंत में रमेश से विवाह किया ।

रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में सर्जना के क्षणवाले गैरा के संवाद में पीडा सृजन और कल्याण भावना का बुनियादी ऐक्य बडे अच्छे ढंग से कहा गया है । आगे वह रेखा को लिखती है - इनके और आप के स्नेह के सहारे मुझे लगता है कि मैं चारों ओर बहते अजस्र प्रवाह में खडी रह सकूँगी, एक नगण्य व्यक्ति पुंज, अस्तित्व का छोटा सा द्वीप, लेकिन जो फूलना चाहता है, फूल भर कर नदी के बहते जल को सुवासित कर देना चाहता है, फिर नदी चाहे - जो करे, उन फूलों की गंध हो पहुँच जाय, दूर, दूर, दूर.....'[1]

गैरा के चरित्र में कलात्मकता के साथ वास्तविकता भी है । उस पर पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव भी ऐसा नहीं दिखाई पडता है जिससे उसके अन्दर का भारतीय संस्कार नष्ट हो गया हो । वह भारतीय संस्कारों से

---

1. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 100

जुड़ी हुई लगती है । जबकि रेखा पर पश्चिमी शिक्षा का इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि वह भारतीय संस्कारों से दूर हटी हुई लगती है । गैरा में शालीनता है, नैतिक ऊँचाई है । उसमें अहंकार की भावना का नाम तक नहीं है । उसका प्यार भी भारतीय संस्कृति का पोषक है ।

डा.भगवतशरण उपाध्याय की दृष्टि में गैरा सभ्य, चरित्रवान, सिद्धांत प्रिय, सुन्दर, पवित्र धीर भाव बन्धन प्रेम जिसका मार्ग है, प्रिय का अखण्डित प्रेम जिसका लक्ष्य । रूप जो छलता नहीं, गिरता नहीं, देखनेवाले को ऊपर उठाता है । संयम और सीमा उसमें साकार हुई है । वह पोटेंशल का कौमार्य है जैसे अतीत पोटेंशल भविष्य का । उसका व्यक्तित्व बहुत कोमल है, बहुत संपन्न भी है । उसमें साहस भी है और वह असम्मत विवाह को अस्वीकार कर देती है । वह रेखा और चन्द्र की पत्नी दोनों से गुणतः भिन्न है । एक के उन्मुक्त स्वातंत्र्य को उसने स्वयं से बांधा है दूसरी की अमर्यादा वह अपने लिए नहीं सोच सकती । पर इस दूसरी का तप भी कुछ कम नहीं ।[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गैरा धीर, गंभीर संयमी, चरित्रवान, भारतीय संस्कृति की पोषक, निश्चल प्यार की प्रतीक तथा विचित्र साहसी नारी है । उसका व्यक्तित्व अति कोमल है । वह सदा दूसरों को ऊपर उठाने में अपने आप को लगाती रही है । अज्ञेय के सभी नारी चरित्रों में गैरा अपने आप में एकदम अलग एवं अनुकरणीय है । उसकी शालीनता अद्वितीय है । वास्तव में वह जिस वर्ग की है, उस वर्ग के लिए अपवाद स्वरूप है ।

चन्द्रमाधव

चन्द्रमाधव एक पत्रकार है । वह भुवन का सहपाठी है ।

---

1. समीक्षा के सन्दर्भ - डा.भगवतशरण उपाध्याय - पृ.96

स्थानीय "पायनियर" का विशेष संवाददाता है । वह एक बहुधन्धी आदमी है । उसे सनसनी की खोज लगी रही है । विदेश भी खूब घूम आये । वह एक मस्त आदमी है । उसका विचार है कि कभी किसी कवि ने, कलाकार ने इनकलाब नहीं कराया । जर्नलिस्ट ही अपनी मुट्ठी में इनकलाब लिए फिरता है । भुवन के मत में उसका सारा जीवन सनसनी की लम्बी खोज है ।

चन्द्रमाधव एक मध्यवर्गीय परिवार का व्यक्ति है । कालेज छोडने के अगले वर्ष ही उसकी शादी हुई । लड़की साधारण पढ़ी-लिखी और साधारण सुन्दर । मध्यवर्गीय मानदण्डों के हिसाब से सब कुछ था । दो बच्चे, साधारण गृहस्थी, घर-बार, बैंक बैलेंस । फिर भी गिरस्ती से वह टूट गया । पत्नी और बच्चों को छोड आया । खर्च भेज देता और कभी चिट्ठी लिखता ।

पत्रकार होने के कारण उसका कई लोगों से परिचय है । सबसे पहले रेखा को हम चन्द्रमाधव के मेहमान के रूप में देखते हैं । भुवन तो उसका मित्र और सहपाठी है । भुवन की शिष्या गैरा से भी वह तुरन्त परिचय प्राप्त कर लेता है । रेखा के प्रथम पति हेमेन्द्र से भी वह परिचित है । इसका कारण उसका बहिर्मुखी स्वभाव है । उपन्यास के अन्य तीनों पात्र अन्तर्मुखी स्वभाव के हैं । लेकिन उसकी बौद्धिकता ने अन्तर्मुखीपन को दूसरों पर एक बोझ के रूप में नहीं रखा है । चन्द्रमाधव सबसे परिचय प्राप्त करना चाहता है । परिचय को एक सीढ़ी के रूप में देखना चाहता है । उसी सीढ़ी पर चढ़कर वह अपनी मंजिल पर पहुँचना चाहता है ।

रेखा के पति हेमेन्द्र से उसका थोड़ा परिचय था । उस नाते रेखा से भी । हेमेन्द्र ने जब रेखा को छोड दिया तो भी चन्द्रमाधव ने रेखा से अपना परिचय ज़ारी रखा । रेखा ने अपने पति के मित्र के नाते शिष्ट व्यवहार

किया । रेखा को नौकरी दिलवाने में चन्द्र ने अवश्य मदद की है । उसी प्रकार उसकी कुछ एक नौकरी छूट जाने के पीछे भी चन्द्रमाधव का हाथ था ।

चन्द्रमाधव को रेखा के प्रति आकर्षण है । वह रेखा से मिलता रहा है । वह एक्स्टेनसी का जीवन पसन्द करता है । डा. भगवत शरण उपाध्याय के शब्दों में -"वह एक्स्टनसी का जीवन पसन्द करता है वह क्षणिक भी हो तो उसे ग्राह्य है....उस पर सौ से क्यों जीवन निछावर है, रेखा को जीतने के लिए पर अहसान लादना चाहता है । जब उसको सम्मान भुवन की ओर देखता है तब ईर्ष्यावश गैरा को लिखकर, वस्तुत: सभी को एक दूसरे के विरुद्ध लिखकर, अपनी तुष्टि करना चाहता है । वास्तव में वह इयागो की मूर्ति बन जाता है । उसको रेखा नहीं मिलती, वह गैरा की ओर झुकता है, वह नहीं मिलती तो हेमेन्द्र को रेखा के विरुद्ध उभारता है, फिर अपनी गृहस्थी संभालना चाहता है । जब उसमें भी कामयाब नहीं होता तो रेखा को फिर जीतना चाहता है । पर सर्वत्र उसको हार है । उसको अपनी बीबी और बच्चों में कोई दिलचस्पी नहीं । नीच तो इतना है कि नौकरानी तक से वह अनैतिक व्यवहार करता है ।

वह इतना उदासीन दिखाई देता है कि उसे ऐसा लगता है कि जैसे उसका अपना कोई नहीं है । उसके बारे में कोई सोचता भी नहीं है । वह रेखा को अपने वर्तमान की रोशनी मानता है । उसी के शब्दों में "पर ग्रीवेंस मुझे क्या है.... नहीं तो कि ग्रीवेंस के लायक भी कुछ नहीं मिला । वर्तमान जो है सो आप देख ही रही है उसमें आप ही एक रोशनी है नहीं तो.... और फिर भविष्य की बात मैं क्या सोचूँ ? मैं तो ऐसा फेटलिस्ट हो गया हूँ कि सोचता हूँ, मेरा भविष्य और कोई बना दो... मेरे बस का नहीं ।"

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 50

चन्द्रमाधव अहसान लादकर रेखा से नजायज लाभ उठाना चाहता था, लेकिन वह इसमें सफलता नहीं प्राप्त कर पाता । इस अहसान की बात को उपन्यासकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा - चन्द्र के सामने कोई स्पष्ट योजना रही हो ऐसा नहीं था, कुछ तो शेखी में वह बात करता था कि रेखा की चर्चा से रियासत में लोगों की आँखें उसकी ओर जायेंगी, कुछ तनाव पैदा होगा और रेखा फिर इससे सहायता चाहेगी ।"[1]

चन्द्रमाधव एक ढोंगी कम्यूनिस्ट तथा जर्नलिस्ट है । वह आज की संस्कृति को चौखटा मानता है । डमोक्रसी को धोखा मानता है । उसी के शब्दों में यह संस्कृति का अंतिम युद्ध है, क्योंकि जिसे हम संस्कृति कहते है, वह एक सडा हुआ चौखटा है, और उसमें जो जीवन बन्द है वह जीव इसलिए है, कि वह पशु है, अगर पशु न होकर तथा कथित संस्कृत मानव होता तो वह भी मर गया होता.... जैसे कि सर्वत्र संस्कृत मानव मर गया है । इस युद्ध में एक नयी बरबरता निकलेगी और सारी दुनिया पर राज करेगी, मैं कहता हूँ आने दो उस बर्बरता को । जिस तल पर हम है उस तल से ऊँचे की व्यवस्था स्वयं एक अभिशाप हूँ क्योंकि उससे हमारा संपर्क हो ही नहीं सकता । डिमोक्रसी धोखा है, गिनतियों का राज बनिये का राज है ।"[2]

चन्द्रमाधव रेखा के प्यार से निराश होकर उसकी तत्काल करूणा ही प्राप्त करने के लिए आतुर है । वह रेखा से कहता है "तुमने एक बार कहा था कि तुम्हारे आस-पास दुर्भाग्य का एक मण्डल है, पर मैं देखता हूँ जानता हूँ अनुभव करता हूँ कि तुम मेरी आत्मा के घावों की मरहम हो, तुम्हारा साया मेरेलिए राहत है और यदि तुम वह मुझे दे सको तो तुम्हारा प्यारा

---

1. नदी के द्वीप - पृ.53
2. वही - पृ.53

मेरे लिए जन्नत है... मैं बड़ा लालची रहा हूँ जीवन से मैं ने बहुत मांगा है, छोटी चीज़ कभी नहीं मांगी, बड़ी से बड़ी मांगता आया हूँ, मैं सच कहता हूँ कि इससे आगे मेरी और कोई माँग नहीं है, न होगी - यह मेरी सारी चाहनाओं, कल्पनाओं, वासनाओं, आकांक्षाओं की अंतिम मौका है, मेरे अरमानों की इति मेरी थकी, प्यासी, आत्मा की अंतिम मंजिल । रेखा, तुम में असीम करुणा है । तुम तत्काल प्यार नहीं दे सकती तो करुणा ही दो मुक्त करुणा, फिर उसी में प्यार उपजायेगा ।"[1] यहाँ स्पष्ट है कि वह मात्र अपनी वासना के शमनार्थ ही रेखा को अपने जाल में फँसा लेना चाहता है । वह तो रेखा को अपनी जान, अपनी डेस्टिनी यहाँ तक कि अपना भविष्य भी मानता है । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वह दो बच्चों का पिता है, और उसकी एक बीबी भी है । वह एक ओर रेखा के साथ अपने प्रणय व्यापार को ठोस बनाने के चक्कर में पड़ा हुआ है, दूसरी ओर अपनी निरपराध पत्नी को, जो दो बच्चों की माँ है, शादी भी रचना चाहता है । जो अपनी ऐसी सीधी-सादी पत्नी का नहीं हो सका वह रेखा को क्या ईमानदारी से अपना सबकुछ अपनी नियति, डेस्टिनी, जान आदि-आदि कह सकता है । यह तो कितनी हास्यास्पद बात है । सिर्फ हास्यास्पद ही नहीं, निरर्थक भी है जो उसकी चरित्र हीनता की ओर संकेत करता है ।

चन्द्रमाधव गैरा के साथ भी प्यार की पेंग बढ़ाता है, लेकिन वहाँ भी उसे निराशा होना पड़ता है । वह एक पत्रकार है । इसलिए उसका संबंध सबसे है और वह सामाजिक है । उसका चरित्र एक साधारण खलनायक "विलेन" जैसा है । अन्य पात्रों की तुलना में चन्द्रमाधव निस्संकोची और दबंग भी है । उसका व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्वों को न माननेवाला है ।

---

1. नदी के द्वीप - पृ. 92

तत्कालीनता में उसकी आस्था है । इसलिए व्यक्ति, व्यक्ति दर्शन, आत्मदान, मुक्त समर्पण आदि को वह उडा देना चाहता है । रेखा के लिए लिखे पत्र में उसके रूझानों का सही पता चलता है । रेखा को वह कपटी ही बताता है । क्योंकि स्त्री को वह भोग्या ही समझता है । अपनी स्त्री को घर की चहार-दीवारियों के मध्य गिरफ्त रखता है । इस सामन्तीय विचार को वह न जाने कितनी रीतियों में आधुनिक दिखाने का असफल प्रयत्न करता है ।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि चन्द्रमाधव कामुक, चरित्रहीन, असभ्य धोखेबाज तथा कम्युनिस्ट है । वह एक "इयागो" के तरह ही सभी प्रकार के गूढतंत्र रचता है ।

"नदी के द्वीप" के तमाम पात्रों की चर्चा करने के उपरांत यह विदित होता है कि वास्तव में उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव है । यह इसलिए कि गैरा और भुवन के चरित्र की तुलना इन दोनों में चुनौती है । वस्तुत: दोनों में संघर्ष है । पर चन्द्रमाधव का संघर्ष अपनी वासनाग्रस्त मानसिकता से थे । इसके लिए उसे संघर्ष तो करना पडता है । रेखा के संघर्ष अपने आप में है । अपने अस्तित्व की पूर्णता के लिए । इसलिए रेखा का जीवन त्रासदपूर्ण हुआ । चन्द्रमाधव का जीवन भी त्रासद है जबकि उसे कृत्रिम आलोक में रखने का संघर्ष उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य सा हो गया है । गैरा और भुवन के जीवन में संघर्ष के होते हुए भी चुनौतियों से भरा नहीं है । भुवन अपने आप में काफी संघर्ष करता है । पर उसमें चुनौतियों की कमी है । इस कारण से इन पात्रों के जीवन की समान्तरता है । पर ऐसी समान्तरता चन्द्रमाधव और रेखा में नहीं है । उनका व्यक्तित्व समान्तर ढंग से शुरू होकर अलग-अलग दिशाओं की ओर ही विकसित होता है । रेखा का व्यक्तित्व आत्मदान की तरफ और चन्द्रमाधव का आत्महनन की तरफ । रेखा को अपने आत्मदान के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पडती । लेकिन चन्द्रमाधव को अपनी कृत्रिम अनसनी का सहारा लेना पडा ।

अपने-अपने अजनबी

"अपने - अपने अजनबी" के पात्र कभी बर्फ से दबे हुए घर में कैद हैं तो कभी प्रलय प्रवाह में, और भी युद्ध की विभीषिका में । अतः अज्ञेय ने इन पात्रों को अहं की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाओं का ही अधिक चित्रण किया है । विपरीत परिस्थितियों में पड़े पात्र अपने पड़ोसी से भी संभलकर चलते हैं । प्रस्तुत उपन्यास के दो प्रमुख पात्र हैं सेल्मा और योके । यान, फोटोग्राफर जगन्नाथन आदि गौण पात्र के रूप में आते हैं ।

सेल्मा

सेल्मा "अपने-अपने अजनबी" उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है । वह वृद्धा तथा कैंसर से पीड़ित है । उपन्यास में उसका चित्रण एक निर्भय नारी के रूप में किया गया है । चाहे बाढ़ में जल प्रवाह से घिरे पुल पर चाय की दूकान में हो, चाहे बर्फ से दबी हुई घर में हो सेल्मा अपने अहं के सहारे अकेली ही कभी निर्भय हो । वह न मृत्यु से डरती है न अकेलापन से । मृत्यु की छाया में वह क्रिसमस मनाती हैं और नये वर्ष को मुबारकबाद देती है ।

वृद्धा सेल्मा गड़रियों की माँ है, जिसका व्यक्तित्व स्वतंत्र होते हुए भी कुंठित सा गया है । ताश खेलते समय अचानक सो जानेवाली बुढ़िया के चेहरे को देखकर योके सोचती है - "एकाएक मुझे लगा है कि वह दिलचस्प चेहरा है, जिसे देर तक देखा जा सकता है । चेहरे की हर रेखा में इतिहास होता है और आंटी सेल्मा का चेहरा जिन रेखाओं से भरा हुआ है वे सब केवल बर्फीली जाड़ों की देन नहीं है । "लेकिन क्या मैं इस इतिहास को ठीक-ठीक पढ़ सकती हूँ । आँखों की कोरों से जो रेखाएँ फूटती हैं और एक जाल सा बनाकर खो

जाती हैं, उनमें कहीं बड़ी करुणा है - एक कर्मशील करुणा जो दूसरों की ओर बहती है, ऐसी करुणा नहीं जो भीतर की ओर मुड़ी हुई हो और दूसरों को दया चाहती है ।"[1]

सेल्मा में किसी प्रकार का विरोध नहीं है । वह जीते हुए भी जिजीविषा से भरी है । सेल्मा की दृष्टि में अपने आपको स्वतंत्र मानना ही सारी कठिनाईयों की जड़ है । वह ऐसा भी मानती है कि न तो हम अकेले हैं और नहीं स्वतंत्र है । उसका चरित्र अस्वाभाविक सा लगता है । किन्तु दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर मालूम हो जाता है कि वह पश्चिमी संस्कृति के पतन का द्योतक है ।

सेल्मा का भविष्य अधिक निकट है क्योंकि वह कैंसर पीड़ित वृद्धा है । उसके सामने मृत्यु ही एकमात्र सत्य है ।

सेल्मा और थोके के निम्न वार्तालाप से स्पष्ट है कि सेल्मा का भविष्य दुस्सह नहीं है । "जो सन्नाटा हम दोनों के बीच आ गया उसके पार मानो कमन्द फेंकते हुए बुढ़िया ने फिर कहा "धूप खिली, खुली, हँसती हुई धूप- क्रिसमस के दिन के धूप थोके मेरा तो इतना दम नहीं है ।"[2] सेल्मा का भविष्य आसान है । क्योंकि उसके भविष्य में कुछ भी जानने के लिए नहीं है । बूढ़ी सेल्मा का ध्यान भी मृत्यु की ओर है । वह ऐसा अनुभव करती है कि अब वह इस संसार में और अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकती है । वह कैंसर से पीड़ित है । इसलिए मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच पाती । फिर भी वह जानकर मरती हुई भी जिये जा रही है ।

---

1. अपने-अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 22
2. वही - पृ. 34

अन्ततोगत्वा हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वृद्धा सेल्मा का चरित्र एकदम आत्मकेन्द्रित दमित तथा जीवन से अतिनिरपेक्ष है । वह अहं से भी वंचित नहीं रह सकता है वास्तव में सेल्मा का जीवन मात्र दूसरों के लिए ही नहीं बल्कि स्वयं के लिए भी सार्थक नहीं रह गया है । इसके चरित्र के माध्यम से पश्चिमी जीवन दृष्टि की एक झलक तो मिलती है ।

योके

योके भी "अपने अपने अजनबी" उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है । वह जीवन संघर्ष का प्रतीक है, जो अज्ञेय की एक अत्यन्त सशक्त प्रतीकात्मक सृष्टि है । वह एक सैलानी तरुणी है, जो जीवन के खतरों से सदा खेलती रहती है । अपने प्रारंभिक ज़िन्दगी से ही वह नटखट एवं दुस्साहसी रही है । बर्फ के पहाड़ों की चढ़ाई तथा देशाटन उसे सदा प्रिय रहा है ।

योके ने कहा मैं बर्फ से नहीं डरती । डरती होती तो यहाँ आती ही क्यों ? इससे पहले आलप्स में बर्फीली चट्टानों की चढ़ाईयाँ चढ़ती रही हूँ - एक बार हिमनदी से फिसलकर गिरी भी थी । हाथ पैर टूट गये होते - होते बच ही गयी । फिर भी यहाँ भी बर्फ की सैर करने ही आयी थी ।"[1]

स्पष्ट है कि वह सैलानी तरुणी योके बर्फ की सैर करने के लिए आयी थी । और दुर्भाग्यवश वह बर्फ से घिरे घर में फँस गयी । फिर भी वह जीवन की एकरसता को दूर करने के लिए कभी बीमार बुढ़िया से बात कर लेती है । कभी झुंझलाती है । मृत्यु की भयचिन्ता, हताशा आदि के कारण वह

---

1. अपने अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 2

मनस्थापिनी बन जाती है । कभी-कभी योके के मन में ऐसा अपरिचय का घना भाव जागृत होता है कि वह सेल्मा के कंधे झकझोर देना चाहती है ।

योके वहाँ कुसंयोग हो आ फँसी है । और वह स्वतंत्र होना चाहती है । वह लाचार है । दूसरों के हारते और टूटते देखकर उसमें संतोष होता है । उपन्यास में मुख्य समस्या योके की है, जो मृत्यु गन्ध और मृत्यु के भय से त्रस्त है । पहले खण्ड में कुछ बड़े गहरे और तीखे वर्णन योके के दिये गये है, उनसे व्यंजित होता है कि रचना के केन्द्र में वह है । केवल योके ही इस उपन्यास में सभी पात्रों एवं खण्डों के संपर्क में आकर बिखरे विवरणों में एकसूत्रता प्रदान करती हुई एक विशेष वातावरण को सृष्टि करती है ।

योके पर सेल्मा के कुंठित व्यक्तित्व का थोडा प्रभाव भी पडा है । लेकिन वह इस प्रभाव से दबी नहीं । उसे दूर करने का प्रयत्न भी करती है । वह एक रात सेल्मा का गला घोट देने तक का प्रयास करती है । ऐसा केवल उसकी सक्रिय जीवन चेतना के कारण ही होता है । जीवन को ही कैंसर माननेवाली योके अन्ततोगत्वा आत्महत्या कर लेती है । वह कहती है -"मैं ने चुन लिया है, मैं ने स्वतंत्रता को चुन लिया है ।"[1]

योके के मन में अपार मानसिक द्वन्द्व चल रहे हैं । बर्फ से दबे हुए घर से मुक्त होने पर योके जर्मन सिपाहियों के साथ लग जाती है और वेश्या बना ली जाती है । वेश्या बन लिये जाने के बाद भी उसके मन में किसी एक व्यक्ति को चुन लेने का संघर्ष चलता ही रहता है । तरुणी योके ईश्वर से प्रतिशोध लेने के लिए आत्महत्या कर लेती है । प्रकारांतर से ईश्वर को मृत्यु

---

1. अपने-अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 115

के अस्तित्व में विलीन कर दिया गया है यानी ईश्वर मृत्यु से अलग कोई सत्ता नहीं है, एक प्रवंचना है । इसलिए योके भी ईश्वर के नाम से चिढ़ती है । उस पर थूकती है और अंत में बड़ी विद्रूपता से क्षमा करती है ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि योके एक ऐसी सैलानी तरूणी है जो अपने जीवन में पूरे अर्थों में जीना चाहती है । उसका व्यक्तित्व निरंतर गतिशील है जो उन्नत तथा जीवन्त ही दिखाई पड़ता है । योके जीवन को, अपने अस्तित्व के बोध को सर्वाधिक महत्व देती है । अस्तित्व का बोध स्वतंत्रता की अनुभूति में ही है, इसलिए वह स्वतंत्रता चाहती है ।

कुलमिलाकर कहा जा सकता है कि अपने-अपने अजनबी में योके और सेल्मा ही प्रमुख पात्र हैं । शेष जितने भी नाम उपन्यास में प्रयुक्त हैं वे गौण रूप में हैं । इन दोनों के अतिरिक्त इस उपन्यास में यान एकलोफ का परमाशय है । वह सेल्मा के पति है । वह बाढ़ की विभीषिका में सहायता की नाव लेकर आता है और सेल्मा को नया जीवन देता है । इसमें एक फोटोग्राफर का संकेत भी दिया गया है । वह अपने अस्तित्व को खतरे में देखकर नदी में कूद जाता है । उपन्यास के अंत में जगन्नाथन आता है । वह भारतीय जीवन दर्शन के प्रतीक के रूप में उपन्यास में चित्रित है । इस उपन्यास के एकमात्र भारतीय पात्र जगन्नाथन है । वह वेश्यागामी नहीं है । योके उसको अच्छे आदमी के रूप में स्वीकार करती है और उसकी गोद में अपने को समर्पित करके वह अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करती है । इस उपन्यास में जगन्नाथन को लेखक ने आस्था के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । तरूणी योके जो अनंत, गतिशील, आस्थावान एवं जीवन्त भावनाओं का पुंज है । वृद्धा सेल्मा तो हर प्रकार से ह्रासोन्मुख है । उसकी जीवन दृष्टि पश्चिमी पतनशील जीवन दृष्टि है ।

अज्ञेय के चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ

अज्ञेय जी मानव के अन्तर्मन की गहराईयों में पैठनेवाले अपने ढंग के एकमात्र ऐसे कलाकार हैं, जिन्होंने फ्रायड के मनोविज्ञान की विस्तृत जानकारी प्राप्त की है । उनके सिद्धांतों जैसे भय, सेक्स तथा अहं को आधार मानकर अपने चरित्रों की सृष्टि की है । "शेखर एक जीवनी", "नदी के द्वीप" और "अपने अपने अजनबी" के अधिकांश पात्रों की सृष्टि उपर्युक्त आधार पर ही हुई है । बालक शेखर के जन्म एवं मृत्यु संबंधी प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर न देने के कारण तथा सदा डाँट-फटकार एवं निषेधों का शिकार बनाने के कारण शेखर विद्रोही हो जाता है । वह हर क्षेत्र में क्रांति करने लगता है । परंपराओं को बदलकर उन्हें अपने अनुकूल बनाने के लिए व्याकुल दिखायी पड़ता है । लेकिन अज्ञेय जी के पात्र चाहे वह "शेखर एक जीवनी" की शशि और शेखर हो, चाहे "नदी के द्वीप" की रेखा, भुवन और चन्द्रमाधव हो, चाहे "अपने अपने अजनबी" को योके और सेल्मा हो वे समाज की परवाह नहीं करते । उन्हें सफलता भी मिलती है । यदि कोई उनमें टूटा है तो वह है रेखा । उसको अंत में डा. रमेश से शादी करनी पड़ती है ।

शेखर के मन में जो कुछ भी ग्रन्थि बनती है वह माँ-बाप के दुर्व्यवहार के कारण है । वह हर क्षेत्र में वैयक्तिक स्वच्छन्दता प्राप्त करने के लिए क्रांति करता है । यदि बच्चों के साथ बिना उसके अन्तर्मन को जाने मनमाना व्यवहार किया जायेगा तो दरअसल उनमें कुण्ठाएँ, सन्देह ग्रन्थियाँ आदि घर कर लेंगी । परिणामस्वरूप हर प्रकार के पात्र कुण्ठित अवस्था, विद्रूप, तथा रुग्ण हो जायेंगे । ऐसी स्थिति में समाज में विकृति का विस्तार होगा । इससे बचने के लिए मानव मन की गहराईयों में पैठकर तदनुकूल व्यवहार करना होगा ।

रेखा पति द्वारा परित्यक्त होने के कारण कुंठित सी हो जाती है । उसकी आत्मा बुझ जाती है । रेखा के ही शब्दों में "मेरी यह कुण्ठित बुझी हुई आत्मा स्नेह की गरमाई चाहती है कि फिर अपना आकार पा सके, सुन्दर मुक्त, ऊर्ध्वाकांक्षी.. "[1] "अपने अपने अजनबी" की योके और सेल्मा भी इस कुंठा से वंचित नहीं रह पाती ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अज्ञेयजी ने अपने अधिकांश पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही किया है । प्रत्येक मनुष्य का अहं बडा प्रबल होता है । इसके दमन से मनुष्य के मन में अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ पैदा हो जाती है । मन में विकृतियों का जनम होने लगता है । परिणाम स्वरूप वह व्यक्ति कुंठित हो जाता है । उसके अन्दर हीनता, संकोच तथा संदेह का भाव उत्पन्न हो जाता है । उसके व्यवहार में स्वाभाविकता नहीं रह जाती । वह अवसरवादी हो जाता है । शेखर एक जीवनी का शेखर और शशि, नदी के द्वीप की रेखा, भुवन, चन्द्रमाधव तथा अपने अपने अजनबी की योके और सेल्मा आदि के व्यक्तित्व में कुण्ठा, अहंमान्यता तथा बौद्धिकता देखी जा सकती है ।

बालक शेखर की जिज्ञासाओं का दमन होता है । उसे दण्ड दिया जाता है तथा अन्य कुछ कार्यों को करने से मना किया जाता है । इन सबका उस पर इतना गहरा असर होता है कि उसके मन में ग्रन्थियाँ पैदा हो जाती हैं । वह माँ से घृणा करने लगता है । सामाजिक, रूढ़िगत, परंपराओं को अपने अनुकूल देखना चाहता है । अंत में उसका मन विद्रोही हो जाता है । शशि का पति रागेश्वर उसकी शारीरिक पवित्रता पर इतना सन्देह करने

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 162

लगता है कि वह उसे भ्रष्टा एवं पापचारिणी कहकर घर से निकाल देता है । रेखा और हेमेन्द्र में तो तलाक तक हो जाता है । रेखा द्वारा भ्रूण की हत्या करने पर भुवन उससे दूर भागने लगता है । बूढ़ी सेल्मा के कुंठित व्यक्तित्व का प्रभाव योके पर भी पड़ता है ।

मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित कुछ ऐसे पात्र हैं, जो पीड़ित हैं । "नदी के द्वीप" का चन्द्रमाधव ऐसा ही पात्र है, जो अकारण ही अपनी पत्नी से उदासीन होकर रेखा और गैरा की ओर आकृष्ट होता है । वह प्रथमतः अपने छल-छद्म के सहारे रेखा को प्राप्त कर लेना चाहता है, लेकिन वह इसमें असफल होता है । रेखा तो रमेश की जीवन संगिनी बनने के बाद भी भुवन से अवैध संबंध रखती है । जर्मन सिपाहियों की वह हरकत योके को वेश्या बना देती है । यह सिपाहियों की कामवृत्ति को ही व्यक्त करती है ।

अज्ञेयजी मार्क्स के जीवन दर्शन की अपेक्षा एक नये जीवन दर्शन के निर्माण में डार्विन तथा फ्रायड की देन को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं । इसलिए उनके पात्र समाजोन्मुख अपेक्षतया बहुत ही कम हो पाते हैं । अंतर्मुखता उनके पात्रों की विशिष्टता है । उनके पात्रों के अन्दर मानसिक द्वन्द्व चलता है । "शेखर" के मन में इसी द्वन्द्व का समावेश देखा जा सकता है । शशि को पति रामेश्वर के मन में शशि की अपवित्रता को लेकर सदा इसी प्रकार का द्वन्द्व चलता है । वह लड़ता है अपने आप से, अपने मन से अपने सन्देह के कारण । इसी प्रकार अज्ञेयजी के दूसरे उपन्यास "नदी के द्वीप" के हर पात्र - रेखा, भुवन, चन्द्रमाधव आदि में इसी मानसिक द्वन्द्व दृष्टिगोचर है । "अपने-अपने अजनबी" के तरुणी योके के मन में तो अपार मानसिक द्वन्द्व चल रहे हैं । वेश्या बना लिये जाने के बाद भी उनके मन में किसी अच्छे व्यक्ति को चुन लेने का संघर्ष चलता ही रहता है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय के औपन्यासिक पात्रों में संघर्ष या द्वन्द्व देखा जा सकता है । उनके अधिकांश पात्र स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत है । स्वयं से साक्षात्कार करने के लिए संघर्षरत है । अपने और प्रिय के जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिए संघर्षरत है । अज्ञेय ने बुनियादी तौर पर एक कलाकार की दृष्टि से अपने पात्रों को ग्रहण किया है । जहाँ अनुभूति से तटस्थता, आत्मविश्लेषण और उससे तटस्थ होकर अपने आपको देखना यह चारों बिन्दु अज्ञेय के पात्रों के विषय में लागू होते हैं । इसलिए उनके पात्र विशुद्ध एक रचनाकार के सजीव पात्र के रूप में हमारे सामने आते हैं । उनके सारे पात्र अनिवार्यतया मानवीय मूल्यों से जुड़कर आते हैं । ये पात्र अलग-अलग जीवन मूल्यों के प्रतीक हैं । साथ ही इनसे अलग-अलग नैतिक प्रश्न खड़े होते हैं जिनसे समाज अनादिकाल से आज तक जूझता चल रहा है और जूझता रहेगा । इसलिए इन पात्रों की अर्थवत्ता बहुत बढ़ जाती है ।

अध्याय पाँच

अज्ञेय के उपन्यासों में अभिव्यक्त व्यक्तिवादी दृष्टिकोण

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास अपनी विकास यात्रा में कई दिशाओं में आगे बढ़ रहा है । आधुनिक भावबोध से युक्त उपन्यास की धारा इस काल की सबसे सशक्त धारा है । इस आधुनिक मानसिकता का प्रारंभ "गोदान" से होता है । प्रेमचन्द ने "गोदान" में परंपरा को तोडा । इसमें उन्होंने किसी समस्या का समाधान नहीं दिया है । "गोदान" के बाद पुरानी आस्था के प्रति विद्रोह अज्ञेय के उपन्यासों में मिलता है । अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में सामाजिक पहलुओं को प्रायः छोड दिया है । उन्होंने मनुष्य की समस्याओं को प्रमुख मान लिया है । मनुष्य की समस्याओं का संबंध हमेशा उसके बाह्य यथार्थ से नहीं होता । बाह्य यथार्थ और उससे जूझने की समस्या भी मनुष्य की होती है । लेकिन उससे भी कुछ सूक्ष्म कुछ गहरा यथार्थ होता है जिससे मुँह नहीं मोडा जा सकता । अज्ञेय ने इसी यथार्थ को अपने उपन्यासों में अधिक प्रश्रय दिया है ।

आधुनिक उपन्यास का प्रारंभ ही व्यक्ति अन्वेषण से हुआ है । विश्व के प्रसिद्ध उपन्यासों में यही बताया जा रहा है । उन उपन्यासों के सामने नई मानसिकता से उपजी हुई स्थितियाँ थीं । मानवीय जीवन के आंतरिक यथार्थ के आधार पर ही ये उपन्यास लिखे गये हैं । उनमें घटित घटनाओं का निरूपण किन्हीं देश विशेष के बाह्य यथार्थों से नहीं था । इस कारण से ये रचनाएँ आस्वादन की सीमा के बाहर तो नहीं रहीं ।

अज्ञेय के उपन्यासों में सामाजिकता

साहित्यकार सामाजिक प्राणी है, उसके संस्कार अनुभव एवं उसकी भाषा सब सामाजिक है । किन्तु उसमें सामाजिकता के साथ-साथ उसकी वैयक्तिकता का भी सार तत्व मौजूद रहता है । यह कभी उसकी सामाजिकता से सहयोग करता है तो कभी उसके प्रति विद्रोह कर उठता है ।

"शेखर एक जीवनी" का शेखर असाधारण मन का है । वह समाज में प्रचलित रूढ़िगत परंपराओं के विरुद्ध लड़ता है । यह सही है कि अज्ञेय के सभी पात्र अन्तर्मुखी हैं । इस अन्तर्मुखता के कारण वे अपने आपको उस समय के समाज में फिट नहीं कर पाते । फिर भी उनके कुछ कार्य ऐसे हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि वे निरे असामाजिक ही नहीं हैं । बल्कि उनमें भी सामाजिकता के लक्षण हैं । वे समाज से एकदम कटे नहीं हैं । लेकिन वे तो समाज की परवाह अपेक्षतया कम करते हैं । उदाहरणार्थ शेखर के यह प्रसंग देखिए - कांग्रेस सभा में स्वयं सेवक होने के कारण काम करते समय अनुशासन का पालन, रात के समय बरसात में भीगते हुए पहरा देना, जुआरियों को बाहर निकालना, कांग्रेस नेताओं की वृत्ति का विरोध करना, अछूतों के साथ काम करना, रुग्ण शांति को देखकर सच्ची सहानुभूति से द्रवित हो जाना आदि ऐसी घटनाएँ हैं जो शेखर की सामाजिकता का समर्थन करती हैं ।

बचपन में उसके लिए पकड़े गये पक्षियों को छोड़ देने पर ही उसे संतोष होता है । सत्य हरिश्चन्द्र का अभिनय देखकर शेखर रोने लगता है । इस प्रसंग से उसके भीतर के कोमल हृदय का परिचय हमें मिलता है । निम्न जातीय विधवा के घर जाने तथा उसकी लड़की फुला के साथ खेलने, खाने से उसे रोका जाता है । वह दूर बैठे उस विधवा की पूजा तक करने लग गया, जो इस बात का {अपने निम्नजातित्व} अभिमान कर सकती है । फुला उसके लिए एक पद-दलित देवी सी हो गयी ।"[1]

पिता के यह कहने पर कि ये गरीब लोग हैं, खिलौने नहीं खरीद सकते, बालक दया भाव से भर जाता है । वह मलबार की यात्रा इसलिए करता है कि जिससे अछूतों पर ब्राह्मण द्वारा किये गये अत्याचारों की सुनी कहानियों का

---

1. शेखर एक जीवनी - पहला भाग - अज्ञेय - पृ.83

अनुभव कर सके । वहाँ वह एक मरणासन्न नारी को पीठ पर लादकर अस्पताल पहुँचाने का कार्य भी करता है, गरीब विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए रात्री-पाठशाला की स्थापना भी करता है ।

प्रस्तुत उपन्यास के शशि में भी सामाजिकता का कुछ अंश दर्शाया गया है । शेखर के सहयोग एवं प्रोत्साहन से शशि ने एक संगठन से जुड़कर समाज सेवा का कार्य प्रारंभ कर दिया । वह बडी-बडी सभाओं में जाने लगी । पति द्वारा परित्यक्ता होकर शशि ने विवाह संबंधी कुरीतियों के विपरीत आवाज़ उठाना प्रारंभ किया । वह कहती है -"आदर्श का अभिमान आसान है, विवाह का हिन्दु आदर्श, गृहस्थ-धर्म, सतीत्व का हिन्दु आदर्श किन्तु अभिमान की कोटी के नीचे आदर्श का पानी क्या अभी बहता है कि बंधकर सड़ गया ? गृहस्थ धर्म उभय मुखी होता है, किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं रही और नारी केवल पुरुष के उपभोग का साधन रह गयी है । निरी सामग्री जिसे वह जब चाहें, जैसे चाहें, जहाँ चाहें, अपनी तुष्टि की आग में होम कर दे और इसकी कहीं अपीले नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी दुहायी दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी की प्रथा किसलिए जाती है । यह आदर्श नहीं आदर्शों की समाधि है, देह नहीं, सदियों की सूखी त्वचा में निर्जीव हड्डियों का ढाँचा है ।"[1]

इनके अलावा "शेखर एक जीवनी" में चित्रित बाबा मदनसिंह, मोहसिन, रामजी और विद्याभूषण आदि के द्वारा भी सामाजिकता का कुछ संकेत दिया गया है । इन सभी व्यक्तियों से शेखर कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य होता है । उनके ज्ञान सूत्रों को शेखर ने अपने अंतस में बिछा लिया और उन्हीं सूत्रों से उसके जीवन में गहनता आई । शेखर के जेल जीवन के साथी जेल की यंत्रणा को सह रहे

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 205

थे । इसलिए कि वे समाज में फैली कुरीतियों के विरुद्ध क्रांति का नारा बुलन्द किए हुए थे । सब के सब समाज में रह रहे थे ।

वैज्ञानिक भुवन का कास्मिक किरणों की खोज मात्र अपने लिए नहीं बल्कि हम सब के लिए है । वह समाज के लिए, अपने राष्ट्र के लिए कर रहे हैं । अज्ञेयजी के शब्दों में समाज के जिस अंग से नदी के द्वीप के पात्र आये हैं, उसका वे गलत प्रतिनिधित्व नहीं करते । मेरे लिए उनकी इतनी सामाजिकता पर्याप्त है । भुवन के अतिरिक्त रेखा, गैरा और चन्द्रमाधव भी अपनी-अपनी सीमा में सामाजिक ही कहा जा सकता है । चन्द्रमाधव तो एक पत्रकार है । वह समाज से जुडा हुआ है । लेकिन समाज के साथ उसका संबंध अल्प मात्रा में ही होता है । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वह एक पत्रकार होकर भी समाज के साथ उसका संबंध या उसकी सामाजिकता बहुत कम है ।

प्रस्तुत उपन्यास की गैरा, रेखा, भुवन और चन्द्रमाधव आदि की अपेक्षा अधिक सामाजिक है । वह एक हद तक सामाजिक और नैतिक मूल्यों का पालन करती है । अज्ञेय के अंतिम उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" में सामाजिकता का संस्पर्श अन्य दो उपन्यासों की तुलना में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है ।

व्यक्तिवादिता अज्ञेय के उपन्यासों में

वर्तमान युग में व्यक्ति चेतना की निरंतर बढती गतिशीलता और परंपरागत रूढियों तथा व्यवस्थाओं की जडता के बीच जबरदस्त संघर्ष और तनाव बना हुआ हैं । व्यक्ति केन्द्रित साहित्य का मूलस्वर इसी संघर्ष और तनाव से भरा हुआ है । व्यक्तिवादी साहित्यकार रूढिग्रस्त व्यवस्था को

गुज़रती देख रहा है । वह अपने साहित्य के माध्यम से समाज, राष्ट्र और व्यक्ति को वह इस अत्याचार का विरोध करने का अगाह कर रहा है । यह विरोध ही आधुनिकता, नवीनता यथार्थ व चेतना का पर्याय लगता है । इसी की अभिव्यक्ति व्यक्तिवादी साहित्य में बहुतायत से प्राप्त होती है । कहीं द्वन्द्व के माध्यम से, कहीं पीढ़ियों में संघर्ष के माध्यम से तो कहीं स्त्री-पुरुष संबंधों की व्यवस्था में स्वतंत्रता को लेकर । आधुनिक साहित्य की सभी विधाओं में यह यथार्थ प्राप्त होता है, विशेषकर उपन्यास साहित्य में । क्योंकि उपन्यास जीवन के यथार्थ रूप को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करता है । जब व्यक्ति पर व्यवस्था का दबाव बढ़ जाता है और वह दबाव उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधक सिद्ध होता है तो वह उससे अलग होना चाहता है । इसी रूप में व्यक्ति चेतना प्रस्तुत होती है ।

वर्तमान सामाजिक विकास ने व्यक्ति को स्वयं के एवं समाज में स्थित संबंधों के बारे में पुनर्विचार करने को विवश कर दिया है । परिणाम स्वरूप सामाजिक मान्यताएँ, जो वर्षों से बिना शंका किए चली आ रही थीं उनके बारे में प्रश्न उपस्थित हुई । उनकी सार्थकता में तो आशंका होने लगी । साथ ही साथ प्रति अनास्था भी उत्पन्न होने लगी । वस्तुतः व्यक्ति-चेतना मानव जीवन की जड़ता के विरुद्ध संघर्ष करती है और उसके सर्वांगीण विकास की प्रेरक होती है ।

मध्यकालीन समाज के समक्ष व्यक्ति को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था और वह नियमों की जंजीरों से जकड़ा हुआ था । वर्तमान युग में व्यक्ति ने उन जंजीरों को तोड़ा और वह उन्मुक्त जीवन व्यतीत करने की ओर अग्रसर हुआ है । वैज्ञानिक चिंतन के विकास के परिणाम स्वरूप क्रमशः व्यक्ति की यह धारणा बनती गयी कि यदि समाज व्यक्ति के उद्देश्य की पूर्ति में बाधक है, तो उसे ऐसे समाज को नकारने का पूर्ण अधिकार है ।

अज्ञेयजी के उपन्यासों में उपर्युक्त विचारधारा की अभिव्यक्ति अपने चरम रूप में हुई है । समाज व्यक्ति के लक्ष्य की पूर्ति में बाधक जान पड़ा, वही अपने पात्रों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह करवा दिया । इसके साथ वेदना, स्वातंत्र्य, संत्रास, क्षणवाद, अस्तित्वबोध, एकाकीपन, अजनबीपन, उबकाई, अहंग्रस्तता, यौनभाव, स्त्री-पुरुष संबंध, निरर्थकता, शून्यता की स्वीकृति, भय एवं पीडा बोध आदि अनेक अनुभूतियों को कहीं भारतीय परिवेश में, कहीं पाश्चात्य परिवेश के साथ ही अभिव्यक्त किया गया है, जो व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों के लक्षण हैं । अज्ञेयजी के तीनों उपन्यासों में किसी-न-किसी प्रकार इन सबका चित्रण देखा जा सकता है ।

अज्ञेय के शेखर विद्रोही पात्र है । वह परंपरा बद्ध व्यवस्था के प्रति ही नहीं बल्कि अपने आप के प्रति भी विद्रोही है । निम्न उद्धरण शेखर की विद्रोही प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है -"ओ विद्रोहियों, आओ पहले इसी दम्भ को काटो । जानो समझो, घोषित करो कि हम इसका उस दुर्व्यवस्था के नहीं, हम उस ऐसेपन के ही एतादृश्यत्व मात्र के विरोधी हैं, हम सभी कुछ बदलना चाहते हैं, हमारी विद्रोही प्रेरणा धर्म के, समाज के, राज सत्ता के, अर्थ सत्ता के और अंत में अपने व्यक्तित्व के प्रति विद्रोही ही है ।"[1]

अज्ञेय के उपन्यासों का आधार व्यक्ति वैचित्र्यवाद है, जिनमें असाधारण व्यक्तियों की मानसिक, उलझनों, द्वन्द्वों, प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों की कहानी कही गयी है । उदाहरण के लिए "शेखर एक जीवनी" में शेखर के विद्रोही जीवन के मूल कारणों की खोज करते हुए जहाँ उन्होंने एक ओर उसकी मूल प्रवृत्तियों और जीवनाकांक्षाओं का विश्लेषण किया है, दूसरी ओर शेखर की

---

1. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 28

पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियों और उनके प्रति शेखर के विद्रोह की कहानी भी कही गयी है । शेखर की अहंमन्यता, बौद्धिक जागरूकता, प्रचण्ड कर्म शक्ति उसे लीक का पालन करने में असमर्थ बनाकर उसे परिवार समाज और शासन की मान्यताओं तथा नियमों के प्रति विद्रोह करने को विवश कर देती है ।

स्वतंत्रता - वरण की स्वतंत्रता

व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों में व्यक्ति स्वातंत्र्य को अनिवार्य शर्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है । व्यक्ति अपने परंपरागत मूल्यों को नकारते हुए नये क्षितिज की ओर चला जाता है । वह रूढ़ि मुक्त स्वतंत्र जीवन बिताना चाहता है । यह स्वातंत्र्य व्यक्ति से जुडी हुई सभी प्रकार की समस्याओं से संबंधित है । व्यक्ति-स्वातंत्र्य ही अज्ञेय के तीनों उपन्यासों का मूल स्वर है । तीनों उपन्यासों में चित्रित स्वातंत्र्य तीन प्रकार के हैं । "शेखर एक जीवनी" में चित्रित स्वातंत्र्य शेखर के विद्रोही जीवन से जुड़ा हुइ स्वातंत्र्य है । शेखर की विद्रोही प्रेरणा स्वतंत्रता चाहती है । उसी की खोज वह कर रही है । शेखर का जीवन दर्शन ही स्वातंत्र्य की खोज है । उसकी स्वतंत्रता की खोज टूटती हुई नैतिक रूढियों के बीच नीति के मूल स्रोत की खोज है ।

"नदी के द्वीप" में चित्रित स्वातंत्र्य प्रेम से जुडी हुई है । रेखा में व्यक्ति स्वातंत्र्य पूर्ण रूप से देखा जा सकता है । रेखा विवाहिता है । फिर भी वह भुवन से प्रेम करती है और उससे गर्भवती भी बन जाती है । वह उस अजात की हत्या भी करवा लेती है । अंत में रमेश के साथ उसका विवाह भी हुआ । इन सारी प्रवृत्तियों के पीछे रेखा के अपने स्वातंत्र्य - व्यक्तिस्वातंत्र्य - की ललक है । रेखा ने स्वयं कहा है -"भुवन, तुम समाज की दृष्टि से देखते हो । वह दृष्टि गलत नहीं है । अप्रासंगिक भी नहीं है निर्णायक भी वह नहीं है ।

इस मामले का जो भी निर्णय होगा... गलत होगा । घृणा होगा, असह्य होगा ।.... मेरे कर्म का, सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे, ठीक है मेरे अंतरंग जीवन का नहीं ।"[1] स्वतंत्र विचारोंवाली रेखा अपनी इच्छा से ही वर्तमान का वरण करती है । किसी भी प्रकार के भविष्य में वह बाँधना नहीं चाहती ।

यहाँ स्पष्ट है कि रेखा पूर्ण रूप से व्यक्तिवादी है । वह व्यक्तिवाद को सबकुछ समझती है । अज्ञेय के अन्य पात्रों की तुलना में यह चेतना रेखा में सबसे ज़्यादा मौजूद है ।

प्रस्तुत उपन्यास के भुवन और चन्द्रमाधव में भी व्यक्ति स्वातंत्र्य की लालसा देखी जा सकती है । चन्द्रमाधव विवाहित है और दो बच्चों के पिता भी है । लेकिन वह अपने इच्छा के अनुरूप पूर्ण स्वातंत्र्य के साथ चलता-फिरता है । अज्ञेय ने व्यक्ति चेतना को स्वतंत्रता की मूल प्रवृत्ति के संदर्भ में अनेक बार परखा है । शशि हो, रेखा हो, भुवन हो, गैरा हो, योके हो सबकी खोज का लक्ष्य वही मूल प्रवृत्ति है । गैरा भी इस तथ्य से अवगत है कि "स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नहीं है । वह एक दृष्टिकोण है, व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है । मैं अपने आप को बद्ध नहीं मानती हूँ और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ ।... मैं सोचती हूँ कि सब लोग यत्नपूर्वक अपने को स्वाधीनता के लिए ट्रेन करे, तो शायद हमारा समाज भी स्वाधीन हो सके ।"[2]

स्वाधीनता का मूल्य भुवन जैसा वैज्ञानिक भी समझता है । गैरा को लिखे गये अपने पत्र में वह तर्क देता है कि -"स्वाधीनता साहस मांगती है, दुस्साहस भी मांग सकती है - स्वाधीनता साहसी का धर्म है ।"[3]

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 215
2. वही - पृ. 70
3. वही - पृ. 76

"अपने-अपने अजनबी" में व्यक्ति स्वातंत्र्य और वरण स्वातंत्र्य को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है । यहाँ योके और सेल्मा के वरण स्वातंत्र्य संबंधी दो पृथक दृष्टिकोण उजागर किये गये हैं । सेल्मा की दृष्टि निराशावादी है । वह योके से स्पष्ट कह देती है कि अपने आप को स्वतंत्र मानना सब कठिनाईयों की जड़ है । न तो हम अकेले हैं, न हम स्वतंत्र हैं । सेल्मा इसी स्वतंत्रता को अपनी चेतना में कभी न ला सकी । इसके ठीक विपरीत योके तो स्वतंत्रता चाहती है । योके अपने होने, निर्णय करने, अपने उद्देश्यों को निर्धारित करने और अंत में अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के प्रयत्नों में सफलता प्राप्त कर लेती है । अथवा वरण की स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने में सफल हो जाती है ।

शेखर में स्वतंत्रता की खोज देखी जा सकती है । भुवन तथा रेखा में उस स्वतंत्रता की क्षण भर की झलक मिल जाती है । अंत में योके पर पहुँचकर उसका चुनाव होता है - स्वतंत्रता का चुनाव । स्वतंत्रता की खोज की व्यक्तिगत आधार पर यही परिणति है । इस खोज और परिणति के बीच तीन पड़ाव हैं । पहला पड़ाव है - शेखर का असफल विद्रोह । दूसरा पड़ाव है भुवन और रेखा की दीर्घ प्रतीक्षा से संपृक्त मूल्यवान क्षण की स्वतंत्रता । तीसरा पड़ाव है योके की स्वतंत्रता के चुनाव का पड़ाव - विद्रोह, प्रतीक्षा और चुनाव ।

वेदना

"शेखर" की भूमिका में अज्ञेय का प्रथम वाक्य है, वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है । जो यातना में है वह द्रष्टा हो सकता है । "नदी के द्वीप" का प्रारंभ करने से पूर्व अज्ञेय अपनी अनुभूति को प्रदान करते हुए लिखते है - दुःख सबको मांजता है और चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु जिनको मांजता है, उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे ।"

"अपने-अपने अजनबी" में उपन्यास का प्रारंभ करने से पूर्व लेखक ने अपनी ओर से कुछ कहा तो नहीं है किन्तु उसे "जीनलायन की स्मृति को" समर्पित कर दिया है । स्मृति भी दुःख ही है, वेदना है, और समर्पण में निहित है, वेदना मुक्ति की कामना । उपन्यास के अंत में योके वेदना के प्रति समर्पित होकर उसी से मुक्ति पाने का चुनाव करती है, कहती है "मैं ने चुन लिया, मैं ने स्वतंत्रता को चुन लिया ।"[1] स्पष्ट है कि अज्ञेय के इन तीनों कृतियों में आदि से अंत तक एक स्वर अनवरत और निरंतर बोल रहा है और वह है वेदना ।

यह सत्य है कि वेदना का आधार तीनों रचनाओं में एक ही नहीं है । "नदी के द्वीप" में चित्रित वेदना प्रेम की वेदना है । रेखा भुवन से कहती है - तुम ने एक ही बार वेदना में मुझे जाना था, हाँ पर मैं बार-बार अपने को जानता हूँ और मरता हूँ । पुनः जानता हूँ और पुनः मरता हूँ । क्योंकि वेदना में मैं अपनी ही माँ हूँ ।"[2]

क्षण की महानता

व्यक्तिवादी उपन्यास क्षण का समर्थन करता है । क्षण काल-प्रवाहों को नहीं मानता । क्षण ही सत्य है, क्षण का ही जीवन चरम जीवन है । वह इतिहास नहीं है सर्वत्र है । सर्वकाल में है । वह अनुभव है । अनुभव के बिना समय इतिहास है । अज्ञेय के उपन्यासों में क्षण की व्याख्या कई जगह की गयी है । "नदी के द्वीप" में रेखा कहती है -"इसलिए सब मंजिलें झूठ हो जाती हैं और कोई रास्ता नहीं रहता । मैं सचमुच कहीं पहुँचना नहीं चाहती... चाहना ही नहीं चाहती । मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रभाव नहीं, केवल क्षण और क्षण का योग

---

1. अपने - अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 115
2. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 115

फल है । मानवता की तरह ही काल प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति-सत्य है, वास्तविकता क्षण की है । क्षण सनातन है ।"[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि रेखा क्षण को ही विराट मानती है और उसके प्रति समर्पित भी है । "अपने-अपने अजनबी" में भी क्षण की व्याख्या देखी जा सकती है । "हमारे लिए समय सबसे पहले अनुभव है - जो अनुभूत नहीं है वह समय नहीं है ।"[2]

अस्तित्वबोध

व्यक्ति केन्द्रित साहित्य की एक अनिवार्य अंग है अस्तित्वबोध । व्यक्ति के लिए अस्तित्व सबसे बडी समस्या है । प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए भटकता हुआ दिखायी देता है । अस्तित्ववादी मानव का सबसे बडा अभिशाप है, सबसे बडी चुनौती है मृत्यु । जन्म से ही मृत्यु बंधी है । मनुष्य तो लाचार है, कुछ कर नहीं सकता । मृत्यु का कोई विकल्प न होने के कारण मनुष्य अपने को समग्र रूप से जान भी नहीं सकता क्योंकि उसका समग्र रूप तो उसके अंत पर ही उजागर होगा । यह भावना स्वभावत: ही व्यक्ति में आंतरिक विषाद और व्यथा भर देती है । "शेखर एक जीवनी" से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है । "इसलिए शेखर का आतप्त-अनुतप्त जीवन घोर निराशायुक्त, मृत्यु का आकांक्षी बन गया है । उसके जीवन ने अर्थ खो दिया है । निरा अस्तित्व एक क्षण से दूसरे क्षण तक एक अणु-पुंज का बने रहना - वह भी मिट गया है ।"[3] उसकी व्यक्तिगत वेदना अनुभव करती है कि, मैं एक छाया हूँ, एक स्वप्न, एक निराकार आक्रोश एक वियोग, एक रहस्य भावना से भावना तक भटकता हुआ और स्वयं ज्वाला में झुलसता हुआ ।"[4] यह है वैयक्तिक भूमि पर शेखर की अस्तित्व की वेदना । उनके दूसरे उपन्यास में भी

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 238
2. अपने-अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 23
3. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - अज्ञेय - पृ. 247
4. वही - पृ. 248

अस्तित्वबोध की चर्चा की गयी है । लेकिन अन्य दो उपन्यासों की तुलना में बहुत कम मात्रा में विद्यमान है ।

जीवन की विवशता की ओर संकेत करते हुए मृत्यु संबंधी अस्तित्ववादी विचार 'अपने-अपने अजनबी' में व्यक्त हुए है । इस उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है । इन तीनों खण्डों में मृत्यु से भय एवं मृत्यु साक्षात्कार का चित्र है । उपन्यास में जितने ही पात्र हैं, प्रायः सबकी मृत्यु होती है । पूरा उपन्यास मृत्यु गन्ध से भरा हुआ है । पहले अध्याय में कैंसर पीडित वृद्धा सेल्मा की मृत्युन्मुख दशा का चित्रण है । बर्फ से दबे हुए घर में उस मृत्युन्मुख सेल्मा के पास रखने के लिए आशा और यौन से भरी गतिशील चेतनावाली योके विवश है । इसलिए ही योके को मृत्यु के भय से अतिपीडित दिखाया गया है । उस घर में आसन्न मृत्यु की गंध से भरा हुआ है । योके को उस घर में चारों ओर बुढ़िया की मृत्यु की गन्ध आ रही है । क्रिसमस के दिन भी उस देव शिशु के अवतरण का आभास नहीं मिलता ।

दूसरे खण्ड में बाढ़ की विभीषिका का और उसके ताण्डव नृत्य का चित्रांकन है । प्रलयंकारी बाढ़ के बीच फँस जानेवाले तीन प्राणियों का चित्र यहाँ देखा जा सकता है - सेल्मा, यान एकलोफ और फोटोग्राफर । ये तीनों अपने-अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाये गये हैं । प्रलयंकारी बाढ़ ने सब कहीं मृत्यु की गंध उपस्थित की है । प्रलय के अधिक दिनों तक रुकने की संभावना देखकर वहाँ बचे हुए लोग भी मृत्यु का अनुभव कर रहे हैं । तीसरे खण्ड में भी मृत्यु का दृश्य उपस्थित किया गया है । लेकिन यहाँ अपनी इच्छा के अनुसार मृत्यु का वरण करनेवाली योके का जीवनांत है । योके जर्मन सैनिकों द्वारा वेश्या वृत्ति के लिए विवश हो जाती है और इस विवशता को मिटाने के लिए ही वह

मृत्यु का वरण करती है । इस प्रकार संपूर्ण उपन्यास मृत्यु भय एवं मृत्यु गंध से भरा हुआ है । सेल्मा और योके के जीवन के प्रत्येक क्षण की अनुभूति और चेतना अंततः मृत्यु के साक्षात्कार में जीवन का सत्य पाती है ।

अकेलापन और अजनबीपन

मनुष्य सदा साथ रहने को बाध्य है किन्तु आधुनिक मानव में दुसरों के जीवन के प्रति कोई सहानुभूति - संवेदना नहीं है, वह सदैव अजनबी है । विसंगतियों से छिपी मनुष्य की स्वतंत्रतानुगामी चेतना वातावरण, परिवेश के प्रति अपने आप को अजनबी पाती है । व्यक्ति निर्वासित अनुभव करती है । अज्ञेयजी ने अपने उपन्यासों में अकेलापन और अजनबीपन की चर्चा विस्तार से किया है । स्व की मुक्ति के लिए, कुंठित जिज्ञासु व्यक्ति बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी और एकाकी प्रवृत्ति का होता है । शेखर ने भी जब देख और समझ लिया कि कोई किसी का नहीं, उसका कोई स्वामी निर्देशक संरक्षक भाग्य-विधाता हो तब वह बुद्धि के सहारे चलता है । ऐसा कोई नहीं जिस पर रहा जा सके तब बुद्धि भी उत्तर देने में समर्थ हो जाय । लेकिन वह झूठ तो नहीं बोलेगी अधिक से अधिक चुप हो जायेगी । इसलिए शेखर अकेला रहने लगा । एक स्थान पर घण्टों तक सोया करता जंगल में भटका करता अब वह स्वानुभूत सत्य को खोजता है । शेखर की बाल्यकाली घटनाओं से स्पष्ट रूप से अकेलापन का चित्र प्राप्त होता है । शेखर एकांतप्रिय है वह अकेले रहना चाहता है । भुवन रेखा के माध्यम से क्षण के महत्व को स्वीकार करते हैं । अपने को एकाकी पाते है - व्यक्ति के रूप में देख पाते है । समष्टि के रूप में नहीं ।

साहित्य में विशेषतया हिन्दी साहित्य में आत्मपरायेपन जैसी अनुभूतियाँ कामू और काफ्का के अनुकरण पर आयी है । कामू कृत

"अजनबी और पतन" जैसी कृतियों में परिवेश के अलगाव का अनुभव करके व्यक्ति को केन्द्र में रखा गया है । यह अलगाव बड़े ही त्रासद और यातना पूर्ण है । "नदी के द्वीप" में इस अनुभूति का अंकन हुआ है । लेकिन अल्पमात्रा में है । अज्ञेयजी के तीसरे उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" में ये अनुभूतियों की चर्चा विस्तार से हुई है । प्रस्तुत उपन्यास में अकेलापन को जीवन के क्रूर अभिशाप के रूप में देखा गया है । इसमें परिवेश की यातनापूर्ण होने की स्थिति को सांकेतिक ढंग से कहा गया है ।

उपन्यास में सेल्मा व्यक्ति का अकेला होने का निषेध करती है । उपन्यास के प्रारंभ में सेल्मा और योके के परस्पर अजनबी होने का उल्लेख है । बर्फ से घिरे हुए घर में अपने अस्तित्व खतरे में देखकर भी योके और सेल्मा परस्पर अजनबी व्यवहार करती है । इस प्रकार एक ही छत के नीचे रहकर भी परस्पर अजनबीपन का बोझ वहन करने के लिए विवश है आधुनिक मानव ।

बाढ़ के समय पुल पर की ज़िन्दगी भी एक दूसरे के लिए अजनबी है । बाढ़ की विभीषण स्थिति में भी सेल्मा यान एकलोफ और फोटोग्राफर अपने को अजनबी पाते हैं । उस प्रलयंकारी बाढ़ की भयानक दशा में भी सेल्मा अपने पडोसी दूकानदारों से अपने सामान की दुगुनी कीमत लेती है । सेल्मा फोटोग्राफर को पीने के लिए पानी भी नहीं देती । वह नदी का पानी पीकर बीमार पड़ जाता है । कई दिनों तक साथ रहकर भी मानव के बीच दीवारें हैं और बाढ़ के समय उसका उग्र रूप सामने आता है । उन लोगों के लिए प्रेम सहानुभूति, सहयोग ये मानों जीवन के कल्पित रूप है, सत्य नहीं है । योके के लिए सेल्मा अजनबी है । वह सोचती है कि सेल्मा के जीवन में कुछ ऐसा सच है जो वह नहीं जानती और उसके सच भी योके से बिलकुल अलग है । अलग ही नहीं बिलकुल दूसरा है ।

कभी कभी योके के मन में ऐसा अपरिचय का घना भाव जागृत होता है कि वह सेल्मा के कंधे झकझोर देना चाहती है ।

उपन्यास के तीसरे खण्ड में भी एकाकीपन और अजनबीपन का स्वर मुखरित होता है । अपने प्रेमी पाल की तलाश में निकली योके अपनी इच्छा के विरुद्ध जर्मन सैनिकों द्वारा वेश्या वृत्ति के लिए विवश है । और अंत में वह इस एकाकी जीवन से मुक्ति पाने के लिए मृत्यु का वरण करती है । किन्हीं विशिष्ट क्षणों में कोई अजनबी परिचित लग सकता है तो कभी परिचित भी अजनबी । इस उपन्यास में इसका भी संकेत लेखक ने किया है । इस उपन्यास में पाल योके के लिए परिचित था लेकिन उसके जीवन के अंत में वह उसके लिए अपरिचित है । जगन्नाथन अपरिचित होकर भी उसे परिचित लगता है । प्रस्तुत उपन्यास में अकेलापन को क्रूर अभिशाप के रूप में दिया गया है । अज्ञेय ने चरम अकेलापन को मृत्यु का पर्याय माना है ।

अहंग्रस्तता

व्यक्तिवाद का, सबसे प्रमुख अंश है अहं । व्यक्ति तो अहंग्रस्त है । व्यक्तिवादी बडी सफलता के साथ यह अनुभव करता है कि "मैं हूँ ।" मैं की स्वीकृति "स्व" की स्वीकृति व्यक्तिवादियों ने किया है । शिशु मानस के चित्रण की सच्चाई को अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं से आवेष्टित करके शेखर को जन्म देनेवाले अज्ञेय ने पाठक से एक साथ दो आग्रह किए है । पहला यह है कि "शेखर निस्सन्देह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज़ है । (एक रकोर्ड ओफ पर्सनल सफरिंग) । दूसरा यह है कि इसमें मेरा समान और मेरा युग बोलता है । वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है । उपरियुक्त दोनों तथ्यों को मिलाकर देखा जाये तो शेखर के समस्त कार्य व्यापार और घटना चक्र का

केन्द्रबिन्दु है - मैं, मेरा समाज और मेरा युग में के सन्दर्भ में पर्सनल सफरिंग की बात जुड़ गयी है । अर्थात् शेखर की वैयक्तिक पीडाजन्य व्यक्तिगत वेदना सामने आ जाती है । "मैं ने किसी को सुख नहीं दिया एक अहंकार के लिए जिया हूँ और सबको क्लेश देता आया हूँ ।"[1] शेखर की अहंग्रस्तता अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी है । ऊँचे लेटरबॉक्स पर बैठकर दूसरों के स्वाभिमान को चिढ़ाना तथा डाकिये के उन पर से उतरने के लिए कहने पर उसके पाँव की उँगलियों को कुचलते हुए मानो विजेता बनकर भाग खडा होना आदि उसकी अहंता को व्यक्त करते हैं । शेखर को अपने विद्रोह को प्रकट करने के लिए अहं बडा सहायक होता है ।

"नदी के द्वीप" में भी इसी अहंग्रस्तता की झलक मिलती है । रेखा की व्यक्ति-चेतना बडे अहं और आत्म-विश्वास के साथ, बडे विद्रोह के साथ भुवन को यह सलाह देती है - निराशा मत होओ भुवन, अपने जीवन को परास्त भाव से नहीं स्रष्टा भाव से ग्रहण करो, एक विशाल पैटर्न है जो तुम्हें बुनना है, तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उसका एक अंग है, प्रत्येक व्यथा एक-एक तार-लाल सुनहरा नीला.... मैं भी उसी ताने बाने के एक पुंज हूँ - तुम्हारे जीवन पट का एक छोटा सा फूल । मेरे बिना वह पैटर्न पूरा न होता लेकिन मैं उस पैटर्न का अंत नहीं हूँ । रेखा कहती है - "मैं कुछ नहीं हूँ, जीवन के प्रवाह में एक अणु हूँ, पर कितना अहं है उसमें कि ."[2]

अस्तित्ववादी चिंतन में अहं आवश्यक तत्व है । अहं का प्रस्ताव व्यक्ति का आंतरिक व्यक्तित्व से है । अहं की भूमिका जीवन को चेतना प्रदान करती है और व्यक्ति अनुभव करता है कि मैं हूँ । सार्त्र ने "मैं हूँ" की

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - पृ. 164
2. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 45

अनुभूति के लिए दूसरों का अस्तित्व स्वीकार किया है । क्योंकि मनुष्य दूसरों के माध्यम से अपने आप को जानता है । "अपने-अपने अजनबी" के पात्र - सेल्मा और योके अहंग्रस्त है । सेल्मा कैंसर पीड़ित है । वह चाहे बाढ़ के जल प्रवाह में घिरे हुए पुल पर चाय की दूकान में हो, और चाहे बर्फ से घिरे हुए घर में हो अपने अहं के सहारे अकेली है । बाढ़ की उस भीषणता में भी वह अपने अहं को बनाये रखना चाहती थी । उस अहंभाव के कारण ही वह अपने समीपस्थ दूकानदारों से भी अजनबी के समान व्यवहार करती है । उपन्यास के योके में भी अहं भाव कम नहीं है । वह बर्फ से दबे हुए घर में कैद होकर भी अपने अहं को त्यागने को तैयार नहीं है । अपने अहं को अपने में सुरक्षित रखते हुए सहजीवियों से अजनबीपन का व्यवहार करती है और जीवन के अंत में भी वह उस अहं को परिलक्षित करती रहती है ।

यौन भावना

अधिकतर व्यक्तिकेन्द्रित उपन्यासों में व्यक्ति अपने समूचे यथार्थ और नियति के साथ प्रस्तुत हुआ है । स्वतंत्रता के बाद लिखे गये कुछ उपन्यासों में नर-नारी के काम संबंधों की खुली चर्चा है । प्रेमचन्द-युग में यौन भावना का समाज स्वीकृत रूप ही उपन्यासों में चित्रित था । लेकिन प्रेमचन्दोत्तर युग के कुछ व्यक्तिकेन्द्रित उपन्यासकार प्रेम और यौन संबंध को सहज मुक्त और स्वाभाविक बनाकर वर्जना के क्षेत्र से बाहर निकले है ।

अज्ञेय ने अपने तीनों उपन्यासों में वासना को स्थान दिया है । उन्होंने वासना को जीवन के एक कठोर सत्य के रूप में स्वीकारा है । इसको उन्होंने यथासंभव अनावृत भी किया है । वे वासना से पृथक प्रेम को बहुत कम दूर तक ही मान्यता दे पाये हैं । उनके अनुसार "प्यार एक कला है ।"[1]

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - अज्ञेय - पृ. 236

कला की वास्तविकता और व्यावहारिकता में सदैव संशय रहा है । कला के संदर्भ में साधना वांछित है - संशय अपेक्षित है । उनके अनुसार किसी भी एक व्यक्ति को इतना प्यार नहीं करना चाहिए कि जीवन में किसी दूसरे उद्देश्य की गुंजाइश ही न रह जाये ।

यौन भाव एक सर्वप्रमुख चित्तवृत्ति हैं जो अज्ञेय के प्राय: समस्त उपन्यासों में आधारभूत है । अहं एवं विद्रोह की अपेक्षा यौन भावना ने ही अज्ञेय के औपन्यासिक चरित्रों को अधिक उभारा है । निश्चय ही शेखर अपने बचपन में ही यौन भाव से आक्रान्त हो उठा है । भले ही वह अपनी इस भावना से स्वयं ही अपरिचित रहा हो । अपनी सगी बहिन सरस्वती के प्रति उसका आकर्षण, उसके कपोलों का स्पर्श, शिशु जन्म की जिज्ञासा आदि ये तथ्य हैं जो शेखर में यौन भावाधिक्य के गवाही हैं ।

शैशव से बढ़कर जब शेखर अपनी किशोरावस्था में प्रवेश करता है तब शारदा उसे आकर्षित करती है । वह क्षयपीड़िता शान्ति में सौंदर्य का आभास पाता है । आधुनिकता से आक्रान्त मणिका भी उसे अपनी ओर प्रेरित करती है । अंतत: वह शशि के प्रति तो पूर्ण रूप से समर्पित हो जाता है । निश्चय ही उसका यह आकर्षण यौनाकर्षण है । अपूर्ण यौन भावना के कारण अस्त-व्यस्त रहनेवाला शेखर शशि के प्राप्ति की पश्चात् अपने को किंचित संतुष्ट अनुभव करता है । अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करते हुए शेखर कहता है - "सबसे पहले शशि । इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आयी या तुम सबसे ताज़ी स्मृति हो - इसलिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने के लेकर हैं ।"[1]

---

1. शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग - अज्ञेय - पृ. 16

"नदी के द्वीप" में भी यौन भावना का चित्रण किया गया है । रेखा के माध्यम से स्त्री-पुरुष के संबंधों के विषय में समाज में मौजूद मान्यताओं के प्रति व्यक्ति के तीखे विद्रोह को लेखक व्यक्त करता है । हमारे देश में अभी तक स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण और स्वाभाविक प्रणय अपनी परिकल्पना और प्रतिफलन दोनों में वर्तमान सामाजिक मान्यताओं की चुनौती बन जाती है ।

रेखा के अलावा भुवन, चन्द्रमाधव आदि में भी यौन भावना देखी जा सकती है । चन्द्रमाधव में यह भाव अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक होती है । उसमें यौन भावना का जो रूप है वह समाज स्वीकृत रूप नहीं है । उसके पत्नी और दो बच्चे हैं । फिर भी वह पहले, रेखा और फिर गैरा के प्रति आकर्षित होता है । अंत में नौकरानी को भी अपनी वासना का शिकार बनाता है । आधुनिक भारतीय समाज बडे तीव्र रूपान्तरण के दौर से गुज़र रहा है । फलस्वरूप एक साथ ही कई प्रकार के अन्तर्विरोधों की सृष्टि हो रही है । एक ओर स्त्री की समानता का भाव बढ रहा है, दूसरी ओर स्त्री को भोगनीय होने का भी । स्त्री-पुरुष संबंधों की कोमलता और उनका मानसिक-आध्यात्मिक धरातल जैसे नष्ट होता जा रहा है । एक ओर स्त्री-पुरुष पाश्चात्य देशीय ढंग से परिचित होना चाहते हैं परिचय की सीमा को विवाह तक खींचना चाहते हैं । फिर विवाह की सामाजिक मान्यता चाहते हैं । दूसरी ओर केवल नर-नारी का संबंध ही रहे और स्वयं संबंधों को तिलांजली दी जानेवाला प्रयत्न भी चल रहा है । इस प्रकार के नये संबंधों पर प्रकाश व्यक्तिकेन्द्रित उपन्यासों में डाला गया है ।

आधुनिक युग में पति-पत्नी के संबंधों में वह कडाई नहीं रही है जो प्राचीन काल में थी । आज न पत्नी के लिए पति देवता है और न पति के लिए पत्नी देवी । "नदी के द्वीप" का एक उदाहरण देखिए - सामाजिक

नियमों के नाते रेखा और हेमेन्द्र पति-पत्नी हैं । फिर भी उनमें से कोई चीज़ गायब हो गयी जिसके कारण वे अपने जीवन को सुखी नहीं बना सकते । उस वैवाहिक बन्धन का अंत हुआ तलाक में । आधुनिक युग में पत्नियाँ भी किराये पर मिलने लगी है । अत: प्राचीन परंपरा के अनुसार चलनेवाली पत्नी की आवश्यकता नहीं रही । जब इस प्रकार की पत्नियाँ अब की दुनिया में हैं तब शादी कर गधा बन जीने की ज़रूरत आदमी क्यों महसूस करेगा ।

आधुनिक युग के पति-पत्नी, कहने को, भले ही पति-पत्नी रहे हो, असलियत में वे इस रिश्ते की दीवार लांघ चुके हैं । सारे रिश्तों की जड कामवासना है । यदि वे इसमें अतृप्त है तो वे एक चादर की नीचे होकर भी कोसों दूर है । "नदी के द्वीप" के चन्द्रमाधव और उसकी पत्नी का संबंध इस संदर्भ में उल्लेखनीय है । अत: आजकल पति-पत्नी को विवाह के बन्धनों की अपेक्षा वासना के पास अधिक ठीक ढंग से बांध सकते हैं । अज्ञेय के "अपने-अपने अजनबी" में यौन भाव की स्थिति अपेक्षाकृत गौण है । योके के चरित्र में इसका कुछ संकेत मिलता है । वह जर्मन सैनिकों द्वारा वेश्या वृत्ति के लिए विवश हो जाती है ।

निरर्थकता बोध - शून्यता की स्वीकृति

अस्तित्ववादी विचारधारा मानव को मूलत: निरर्थक मानती है और परंपरागत ईश्वर में आस्था को अस्वीकार करती है । अस्तित्ववाद धर्मनिरपेक्ष स्तर पर मानव जीवन के लिए चित्रित है । ईश्वर और धर्म के निराकरण करने पर केवल मनुष्य और उसके अस्तित्व ही रह जाता है । व्यक्ति केन्द्रित साहित्य में आधुनिक मानव के निरर्थकता बोध को शब्दबद्ध किया गया है । अज्ञेय के शेखर में यह निरर्थकताबोध दृष्टिगोचर

होता है । शेखर का विश्वास ईश्वर में भी नहीं है । वह सब कुछ निरर्थक समझती है । इस निरर्थकता बोध उसके बालक रूप में अधिक मात्रा में देखा जा सकता है । वह पिता के कहने पर भी मंदिर में कदम नहीं रखता । वह स्वयं कहता है - "मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ । मैं प्रार्थना भी नहीं मानता । भवानी झूठी है । ईश्वर झूठा है । ईश्वर नहीं है ।"[1]

व्यक्तिवादी साहित्य में शून्यता की चर्चा की जाती है । "अपने-अपने अजनबी" में भी शून्यता की स्वीकृति का संकेत है । बर्फ से घिरे घर में बूढ़ा वृद्धा सेल्मा और योके के सामने शून्यता ही शून्यता है । उस शून्यता को मिटाने के लिए कहीं वे ताश खेलती हैं, कहीं वार्तालाप करती हैं । इस शून्यता को मिटाने के लिए ही सेल्मा अपने अतीत जीवन की गाथा योके को सुनाती है ।

शून्यता की स्वीकृति के साथ व्यक्तिवादी दर्शन विसंगतियों को स्वीकार करते हैं । "अपने-अपने अजनबी" के योके के चरित्र और व्यवहार में आद्यन्त विसंगति होती है । वह तरुणी है । वह जीना चाहती है । लेकिन संयोगवश बर्फ से घिरे हुए घर में वह बन्द हो जाती है । वहाँ उसको साथी के रूप में एक निर्वाणोन्मुख वृद्धा ही मिलती है । इससे उसके जीवन में विसंगतियाँ जन्म होने लगीं । उपन्यास के अंत में भी योके का जीवन विसंगतियों से पूर्ण है । सेल्मा की मृत्यु के उपरांत उस काठघरे से बाहर निकलकर योके अपने प्रेमी पाल की तलाश में निकल जाती है । लेकिन इस प्रयत्न में वह असफल हो जाती है । मात्र यही नहीं वह अपनी इच्छा के विरुद्ध जर्मन सैनिकों द्वारा वेश्या भी बनायी जाती है । वह तो जीना चाहती है । लेकिन वह सच्चे अर्थों में ही होना चाहिए । और अंत में विसंगतियों से पूर्ण जीवन से मुक्ति पाने के लिए मृत्यु का वरण करती है ।

---

1. शेखर एक जीवनी - पहला भाग - पृ. 38

भय एवं पीडा-बोध

व्यक्तिवादी साहित्य में भय एवं पीडा बोध का चित्रण भी किया गया है । शेखर में भय की भावना को देखा जा सकता है । एक उदाहरण प्रस्तुत है -"एक बार शेखर अजायबघर गया । वह अकेला अजायब घर में फिर रहा है, उस कमरे में जिसमें वन्य और हिंस्र पशु प्रदर्शित किए गये हैं, एकाएक वह देखता है कि उसके सामने एक भीमकाय बाघ प्रकट हो गया है । एक पंजा झपटने के लिए उठा भयंकर दाँत, जीभ, आरक्त आँखें.... वह चीख उठता है, भय से विकल होकर वह भागता है ।"[1] भय भावना का विवेचन अज्ञेय के अंतिम उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" में किया गया है । उपन्यास के प्रमुख दो पात्र है सेल्मा और योके । सेल्मा तो कैंसर की मरीज है । उसकी हालत दिन-प्रतिदिन बिगडती जाती है । वह उस पीडा का अंत उसके मृत्यु से मानती है । उसके साथ रहनेवाली योके प्रत्येक क्षण पीडित होकर भयभीत होती है । मरणोन्मुख सेल्मा की घुटन को देखकर योके का भय और पीडा और भी बढ जाती है । योके अपने अस्तित्व के प्रति भयभीत हो उठती है । योके का यह भय अस्तित्व का भय है । सेल्मा के मृत्यु के समय उसे अपनी मृत्यु के अनुमान बोध के भय के अतिरिक्त एकाकीपन का बोध भी त्रास देता है । वह अपने कमरे के दरवाज़े बन्द कर लेती है जैसे मृत्यु के अस्तित्व को भी समाप्त करना चाहती है । इस विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्तिवादी विचारधारा के कुछ प्रतिमानों को अपनी दृष्टि से उपयोग करने का यत्न अज्ञेयजी ने किया है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति चेतना को विशिष्ट या वैयक्तिक क्षेत्र में काम या सेक्स के धरातल पर खडा किया है । वैयक्तिक, सामाजिक और युगगत वेदना का कारण वह नियमबद्ध

---

1. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 15

परंपरागत रूढिग्रस्त जीवन है जिसमें यौन वासना या सेक्स वैयक्तिक विकृति को जन्म देता हैं, भय समाज को और अहं राष्ट्र को । स्वतंत्रता की खोज नियमबद्धता से छुटकारा पाने की खोज है । यह स्वातंत्र्य है, वैयक्तिक चेतना है ।

"नदी के द्वीप" में अज्ञेय ने वैयक्तिक भूमि पर काम को प्रतिष्ठित करके मानव-प्रकृति का मूल, स्वतंत्रता का आधुनिक स्वरूप खोजने का प्रयत्न किया है । "अपने-अपने अजनबी" में उन्होंने व्यक्तिगत रूप में व्यक्ति-चेतना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए सैद्धांतिक आधार पर उसे अस्तित्ववादी कसौटी पर कसा है । क्षणवादी दर्शन के तौल पर परखा है, व्यक्ति-चेतना के बिम्बों को, वैज्ञानिक अणुवाद के युग में ईश्वर को नकारते हुए, मृत्यु के सत्य को स्वीकारते हुए जीवन के दर्द को महसूस करते हुए, उसे वर्तमान में क्षण से क्षण में जीने तक की प्रवृत्ति अपनाते हुए चित्रित किया है ।

अज्ञेय के अपने तीन उपन्यासों में सामाजिकता की तुलना में व्यक्तिवाद ही प्रमुख रूप में पायी जाती है । अज्ञेय मूलतः व्यक्तिवादी है । इस व्यक्तिवादिता उनकी हर रचना की - चाहे कविता हो, कहानी हो, उपन्यास हो - प्रतिपाद्य विषय है । उनकी रचनायें व्यक्ति की स्वातंत्र्य की खोज करती हैं । वे मानव मन के आभ्यंतर के कथा शिल्पी है । उनका लक्ष्य ही व्यक्ति-जीवन की अंतश्चेतना का उद्घाटन और निरूपण करना है । यह उनके उपन्यासों के संदर्भ में सौ फीसदी सही है ।

अज्ञेय के व्यक्तिवादी, क्षणवादी, अस्तित्ववादी दृष्टिकोण का बीज शेखर में, अंकुर "नदी के द्वीप" और पल्लवन-प्रतिफलन "अपने-अपने अजनबी" में दिखाई देता है । शेखर के सामने फाँसी फँदा, मृत्यु की विभीषिका है, शशि की मृत्यु उसके लिए मुक्त और मोक्षदा है । शेखर की अनुभूति और

योके की अनुभूति में भयंकर साम्य है । डर या भय सर्वत्र है । उसके अजनबीपन में दोनों मरते हुए जी रहे हैं । रेखा भी कुछ यों ही जी रही है, मर रही है । काल प्रवाह और क्षण को लेकर जो योके सोच रही है, मर रही है ।

शेखर, रेखा और योके तीनों के साथ "होना" या "न होना" जुडा हुआ है । रेखा मानती है, "मैं भी हूँ, होना ही काफी है.....।"[1] योके नाखुन गड़ाकर होने का दर्द महसूस करना चाहती है ।[2] शेखर के साथ भी वह दर्द है, "और मैं अभी जीता हूँ अभी जल रहा हूँ, अभी हूँ.....।"[3] तीनों स्मृति में जी रही हूँ । शेखर के साथ छाया, स्मृति "सबसे पहले तुम शशि....."[4] निरन्तर जुडी है । रेखा का खोया हुआ स्वर स्वीकार करता है "मैं सिर्फ कोटेशन बोलती हूँ भुवन, क्योंकि मैं स्मृति में जी रही हूँ ।"[5] योके और सेल्मा के साथ भी स्मृति में जीना लगा है । इसी प्रकार इन सभी पात्रों को क्षण से क्षण तक जीने में विश्वास है, भय के नीचे जीने का प्रयत्न है, अजनबीपन के बीच जीवित रहने, अनुभूतियों में जीने का आग्रह है, मृत्यु के अनन्त निशीथ अन्धकार में मुक्ति-रूपी देदीप्यमान ज्वाला के प्रति आकर्षण है, स्वतंत्रता को खोज मूल स्रोत की खोज चुनाव की स्वतंत्रता पाने का हठ है । रेखा के इन शब्दों में शेखर और योके दोनों की प्रतिध्वनि है, "मैं क्षण से क्षण तक जीती हूँ...."[6] अथवा "भविष्य हुई नहीं, एक निरन्तर विकासमान वर्तमान ही सब कुछ है ।"[7] काल प्रवाह में क्षण के द्वीप,

---

1. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 317
2. अपने-अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 56
3. शेखर एक जीवनी - अज्ञेय - पृ. 16
4. वही - पृ. 16
5. नदी के द्वीप - अज्ञेय - पृ. 157
6. वही - पृ. 115
7. वही - पृ. 50

जोवन की नदी में अनुभूति के द्वीप, मानवता के सागर में व्यक्तित्व के द्वीप बनकर होने की वेदना महसूस करना इत्यादि व्यक्तिवादी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अज्ञेय के तीनों उपन्यासों में बिखरी पड़ी है ।

निष्कर्ष

अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में व्यक्तिवाद को बहुत अधिक महत्व दिया है । इसलिए ही उन्हें व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित या व्यक्तिवादी चेतना के पक्षधर उपन्यासकार कहा जाता है । व्यक्तिवाद की यह पक्षधरता उनके तीनों उपन्यासों में अभिव्यक्ति पायी है । इसलिए ही आलोचक उनके उपन्यासों में सामाजिकता के मुद्दे को लेकर चर्चा करते हैं । व्यक्ति समाज का अंग है इसलिए उनके उपन्यास में सामाजिकता का अभाव है, यह नहीं कहा जा सकता । व्यक्तिवादिता से संबद्ध अकेलापन, वेदना, संत्रास, घुटन, अस्तित्वबोध, क्षणबोध, अजनबीपन, भय, पीडाबोध इत्यादि को अज्ञेय ने सजीवता के साथ अपने उपन्यासों में उकेरने का सफल प्रयास किया है ।

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन "व्यक्तिवादी चेतना के विविध आयाम अज्ञेय के उपन्यासों में" के संदर्भ में उससे संबंधित कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आये, उन्हें उपसंहार के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेयजी" आधुनिक हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं जिन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं को नया मोड, दिशा एवं गति प्रदान करने की सराहनीय कोशिश की । वे हिन्दी के वरिष्ठ कवि, समादरणीय उपन्यासकार, कुशल कहानीकार, प्रतिभावान आलोचक, अनुभवी यात्रावृत्तकार, प्रयोगशील नाटककार और विचारवान निबंधकार के रूप में विख्यात हैं । स्वतंत्रता के पूर्व जिस प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द आदि के नेतृत्व हिन्दी साहित्य में रहे हैं, उसी प्रकार स्वातंत्र्योत्तर काल में अज्ञेय का नेतृत्व रहा है । सर्जनशील साहित्यकार के रूप में उनकी सबसे अधिक ख्याति कवि और उपन्यासकार के रूप में हुई है । उपन्यास-साहित्य में कथ्य और शैली में नवीनता लाने के कारण उनकी खास पहचान हुई है । उन्होंने सिर्फ तीन उपन्यास ही लिखे हैं -"शेखर एक जीवनी", "नदी के द्वीप" और "अपने-अपने अजनबी"। लेकिन इन तीनों उपन्यासों के ज़रिए उन्होंने हिन्दी साहित्य में अमिट प्रभाव छोड दिया है जिससे परवर्ती कई उपन्यासकारों को इनसे प्रेरणा मिली है ।

व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता ही व्यक्ति-चेतना है । व्यक्ति-चेतना समाज में व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करती है । व्यक्ति चेतना सामाजिक, धार्मिक-नैतिक बंधनों से व्यक्ति को मुक्त करते हुए एक स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखने को प्रेरणा देती है । यह सामाजिक मान्यता वा परंपरा को उसी सीमा तक स्वीकार करती है जिस सीमा तक वे उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध नहीं करती ।

व्यक्ति चेतना ने अपने सुदूर व्यापक प्रभाव को साहित्य पर डाला है । हिन्दी साहित्य में तो व्यक्ति चेतना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की विशेषता है । हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं - कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास में इसको शब्दबद्ध किया गया है । व्यक्तिवादी चेतना के सशक्त दावेदार अज्ञेय ने भी अपने उपन्यासों में इसकी खूब प्रस्तुती की है ।

अज्ञेय की औपन्यासिक रचनाएँ व्यक्तिवादी चेतना से भरपूर हैं । उन्होंने अपनी सभी रचनाओं के माध्यम से व्यक्तिवादी चेतना को संप्रेषित किया है । व्यक्तिवाद से जुड़े हुए लगभग सभी आयाम उनके उपन्यासों में देख सकते हैं । उनके उपन्यास समाज और व्यक्ति के बीच के संघर्ष की गाथा है । वास्तव में यह संघर्ष व्यक्ति और नैतिक मूल्यों के बीच का संघर्ष है । इस संघर्ष में अज्ञेयजी हमेशा व्यक्ति का साथ रहे हैं । उनके अनुसार व्यक्ति सर्वप्रमुख है, उसके बाद ही समाज है । व्यक्ति समाज के लिए नहीं, समाज व्यक्ति के लिए है । इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने समाज को पूर्ण रूप से तिरस्कार किया है । व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, यही उनकी कामना है । इसलिए उनके उपन्यासों में व्यक्तिवादिता का आधिक्य सहज है । अज्ञेयजी की औपन्यासिक रचनाओं के अध्ययन के उपरांत यह विदित हो जाता है कि उनके उपन्यास के कथ्य ही नहीं पात्र भी पूरी तरह व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित हैं ।

व्यक्तिवाद की चरम सीमा में पहुँचकर अज्ञेय का दुःख स्वयंकृतार्य बन जाता है । पाश्चात्य वातावरण या शहरी वातावरण में पनपनेवाले ऐसे घोर व्यक्तिवाद "नदी के द्वीप" में है । कहीं अज्ञेय का भुवन सेडिस्ट की कोटी में गिरा जाता है । क्योंकि अपने को प्रेमपाश में बाँधा रहनेवाली गैरा अपनी शिष्या को भी वह पीडा देता है । दीर्घ अवधि तक उसे तडपाते हुए रखता है । जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय व्यक्ति अकेले में करता है ।

सारे दर्द अकेले भोगता है । रेखा रमेश चन्द्र से इसलिए शादी कर लेती है कि वह भुवन-गैरा का रास्ता साफ करना चाहती है । "अपने-अपने अजनबी" में भी कृतिकार ने व्यक्ति चेतना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । इस विश्लेषण का आधार बनाया है अस्तित्ववादी दर्शन को । मृत्यु के प्रति परस्पर विरोधी भाव पूर्व एवं पश्चिम जीवन दृष्टियों के चित्र प्रस्तुत करते हैं । इसमें मृत्यु से अवगुंठित मानव की सहजानुभूति का चित्रण दो पात्रों के माध्यम से किया गया है ।

उनके उपन्यासों के अध्ययन के दौरान तीन प्रश्न मन में उठने लगे हैं । पहला प्रश्न है कि अज्ञेय के पात्र क्यों व्यक्तिवादी बन गये ? दूसरा क्या अज्ञेय ने परंपरा और नैतिक मूल्यों को पूर्ण रूप से तिरस्कार किया है ? तीसरा है व्यक्ति स्वातंत्र्य किस सीमा तक सार्थक है ?

इन सवालों के जवाब ढूँढने पर लगता है कि अज्ञेय के पात्रों की व्यक्तिवादिता के पीछे परिवार और समाज है । शेखर क्यों विद्रोही बन गया ? गहराई से जाकर देखने से पता चलता है परिवार ने ही उसे ऐसा बनाया है । परिवार में उसका कोई स्थान नहीं था । सभी उपेक्षा की दृष्टि से उसे देखते थे । घर का नियंत्रण उस पर बहुत अधिक था । अन्य बच्चों के साथ खेलने-खाने का अवसर उसको नहीं मिला था । घर से हमेशा डाँट-फटकार मिला था । वह सब कहीं प्यार से वंचित था । उसने कहा था कि "मैं घृणा के संसार में इतना कुचल गया हूँ कि प्यार मेरा अपरिचित हो गया ।" बचपन में उसके साथ किये गये दुर्व्यवहार का उसपर अधिक कुप्रभाव पडा । एक व्यक्ति के व्यक्तित्व गढ़न की प्रारंभिक शिक्षा घर पर से ही मिलनी हैं । शेखर के संबंध में यह बिलकुल भिन्न है ।

प्रस्तुत उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र शशि है । शशि विवाहिता है । एक विवाहित नारी के लिए सबकुछ उसके पति है । ससुराल उसका घर है ।

लेकिन शशि को ससुराल में कोई स्थान नहीं मिला । अपने पति से भी ऐसा प्यार नहीं मिला जैसा एक पत्नी को साधारणतया पति से मिलता है । पति से उसका संरक्षण होना चाहिए था लेकिन पति के द्वारा ही वह कलंकित हो गयी । यहाँ विचारणीय बात यह है न तो शेखर को अपने माता-पिता द्वारा आवश्यक प्यार नहीं मिला, और शशि को अपने पति से । दोनों को मिली मार-पीट और डाँट-फटकार । ऐसी स्थिति में दोनों में प्यार पल्लवित होना स्वाभाविक है ।

"नदी के द्वीप" में चार पात्र हैं । भुवन, रेखा, गैरा और चन्द्रमाधव । चन्द्रमाधव विवाहित है । उसको दो संतानें भी हैं । फिर भी वह पहले रेखा के प्रति आकृष्ट है फिर गैरा के प्रति । अंत में नौकरानी को ओर भी वह झुका हुआ है । लेकिन उसको खलनायक के रूप में चित्रित किया गया है । अगला चरित्र है रेखा । वह पहले किसी से प्रेम करती थी । उसी के साथ विवाह संपन्न नहीं हुआ । उसके माता-पिता के आग्रह पर, उसको दूसरा विवाह करना पड़ता है । पति हेमेन्द्र रेखा के प्रति अत्यन्त उदासीन था । विवाह के बाद हेमेन्द्र देर रात को आता रहा था । और रेखा के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी । रेखा के पूछने पर उसने कहा कि "मैं तुमसे प्यार नहीं करता था । नहीं करूणा ।" वह एक विदेशी रबर कंपनी में अच्छी नौकरी स्वीकार करके मलया चला गया । कहा जाता है कि उसके साथ कोई स्त्री भी रहती है । यहाँ यह भी स्पष्ट है कि पति के द्वारा ही रेखा अवहेलना का पात्र बन जाती है । रेखा तो सुशिक्षिता नारी है । वह नौकरी करती है और आत्मनिर्भर भी है । शशि तो रेखा की अपेक्षा अधिक निजी व्यक्तित्व रहनेवाली है । इसलिए उसमें स्वातंत्र्य की विचार कुछ अधिक होता है । इसलिए व्यक्तिवादिता कुछ अधिक होती है । वास्तव में रेखा के इस व्यक्तिवादिता उसके पति और परिवार के कारण है ।

तीसरे उपन्यास "अपने-अपने अजनबी" के पात्र योके और सेल्मा में भी व्यक्तिवादिता दृश्यमान है । योके तो सेल्मा की मृत्यु के बाद अपने पति पाल की तलाश में निकल गयी है । दुर्भाग्यवश उसकी इच्छा के विरुद्ध जर्मन सैनिकों द्वारा वह वेश्या बन गयी है । वह जीना चाहती है सच्चे अर्थों में । उसके अनुसार दूसरों के द्वारा कलंकित होकर जीने से अच्छा है मृत्यु का वरण करना । इसके लिए उसने मृत्यु का वरण किया है । यहाँ भी योके द्वारा मृत्यु के वरण का कारण समाज है ।

इन तीनों उपन्यासों से स्पष्ट है कि अज्ञेय के पात्रों की व्यक्तिवादिता के पीछे परिवार है, समाज है । जिन हाथों से संरक्षण होना था उन हाथों से ही वे पथभ्रष्ट हो गये । अज्ञेय ने भी ठीक बताया है विद्रोह बनता नहीं उत्पन्न होता है । वास्तव में कोई भी जनम से विद्रोही, हत्यारा, डाकू... नहीं बन जाता । उसके परिवेश, उसके जीवन-साहचर्य ने उसे ऐसा बनाया है । लेकिन समाज की दृष्टि से उसकी "आइडन्टिटी" कभी भी न बदल जायेगी । समाज की दृष्टि में एक बार जो कसूरवार बना वह सर्वथा कसूरवार रहेगा । उसकी इस दशा का क्या कारण है ? समाज यह प्रश्न कभी नहीं उठाता है ।

समाज और व्यक्ति का संबंध है । व्यक्ति के लिए समाज है, समाज के लिए व्यक्ति नहीं । व्यक्ति को आवश्यक स्थान परिवार में, समाज में नहीं मिलता है तो उस समाज के प्रति, उस परिवार के प्रति उसकी प्रतिक्रिया नाजुक हो सकती है । फिर उसके प्रति दोषारोपण करना कहाँ तक संगत होगा । समाज को उसे अपने भीतर के एक सदस्य यानी व्यक्ति के रूप में देखना चाहिए । पहले व्यक्ति, फिर परिवार,परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र की संकल्पना पूर्ण हो जाती है ।

इस सवाल पर विचार करने पर कि क्या अज्ञेय ने परंपरा और नैतिक मूल्यों को पूर्ण रूप से तिरस्कार किया है - तो लगता है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया है । उनके उपन्यासों के वस्तुनिष्ठ अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है । "नदी के द्वीप" की रेखा और गैरा के प्रसंगों को लेकर ही ऐसे सवाल किये जाते हैं । रेखा और गैरा ऐसी महिलाएँ हैं जो व्यक्ति स्वातंत्र्य पर बल देती हैं । लेकिन रेखा में पाश्चात्य प्रभाव की वजह से व्यक्तिवादी चेतना कुछ अधिक है । उसका कहना है कि मेरा सामाजिक व्यवहार का नियमन समाज करे तो ठीक है मेरे अंतरंग जीवन का नहीं । उसने समाज की परवाह नहीं की । उसने परंपरा और नैतिक मूल्यों को कोई स्थान नहीं दिया । लेकिन वह अंत में पूर्ण रूप से असफल हो गयी । गैरा भी व्यक्ति-स्वातंत्र्य चाहती है । लेकिन उसका दृष्टिकोण रेखा से बिलकुल भिन्न है । गैरा के अनुसार स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नहीं है । वह एक दृष्टिकोण है । व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है । "मैं अपने आप को बद्ध नहीं मानती हूँ और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ । मैं सोचती हूँ कि सब लोग यत्नपूर्वक अपने को स्वाधीनता के लिए ट्रेन करें तो शायद हमारा समाज भी स्वाधीन हो सके ।" इस कथन से स्पष्ट होती है कि उसने व्यक्ति स्वातंत्र्य को मान्यता दी है । साथ ही समाज की भलाई की कामना भी उसके विचार में विद्यमान है । क्योंकि वह नैतिक मूल्यों को भी कुछ मान्यता देती है । वह भारतीय आदर्श पत्नीत्व के प्रतीक पार्वति के समान है । अंत में वह पूर्ण रूप से सफल हुई । ऐसा लगता है कि भारतीय संस्कृति की विजय दिखाने के लिए ही अज्ञेयजी ने ऐसा किया है ।

अपने अपने अजनबी में भी लेखक ने इसी बात को दिखाने की कोशिश की है । यहाँ एक पाश्चात्य कथापात्र योके के माध्यम से भारतीय परंपरा को ऊपर उठाया गया है । योके की अपनी इच्छा के विरुद्ध जर्मन सैनिकों द्वारा बरजोरी की जाती है । परिणाम स्वरूप वह रंडी बन गई । वह सच्चे अर्थों में

जीना चाहती है । इसलिए वह आत्महत्या करना चाहती है । लेकिन अब भी उसके मन में एक इच्छा बाकी है कि एक अच्छे आदमी के पास मरना है । इसके लिए लेखक ने एक भारतीय कथापात्र जगनाथन को प्रस्तुत किया है । जगनाथन की प्रस्तुति लेखक ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता दिखाने के लिए की है । भारतीय संस्कृति में मानवतावाद की प्रबलता है । यहाँ अजनबी के प्रति भी स्नेह और सहानुभूति है । आज अधिकतर मानव में मानवीयता मर चुकी है । इन प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय पर भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति और परंपरा का स्पष्ट प्रभाव पडा है । फिर भी उन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा भारतीय संस्कृति को ऊपर उठाने की कोशिश भी की है ।

तीसरा सवाल है व्यक्ति-स्वातंत्र्य कहाँ तक सार्थक है ? व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर निर्भर है । व्यक्ति को स्वतंत्र होना चाहिए । वह कभी भी समाज का गुलाम नहीं । दूसरों के इशारे पर नाचनेवाला कठपुतली भी उसे नहीं होना चाहिए । व्यक्ति को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व होना चाहिए । अपने विचारों और प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने के लिए वह पूर्णत: स्वतंत्र है । लेकिन उस स्वातंत्र्य के साथ हमें अपने नैतिक मूल्यों को भी मानना चाहिए । यह ठीक है कि समय के अनुसार नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आयेगा । उदाहरण के लिए दस साल पहले के नैतिक मूल्य आज के नैतिक मूल्य नहीं होंगे । हमें अपने समय के नैतिक मूल्यों की परवाह करनी चाहिए । जिन व्यक्ति में नैतिक मूल्य हैं उनमें मानवीयता भी है । मानवीयता तो व्यक्ति के लिए आवश्यक गुण है । मानवीयता की रक्षा के लिए हर व्यक्ति को अपने समय के नैतिक मूल्यों को मानना चाहिए । समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर है । एक अच्छे व्यक्ति में ही एक अच्छे समाज की निर्माण की क्षमता है । एक स्वतंत्र व्यक्ति से ही एक स्वतंत्र समाज की परिकल्पना संभव है । व्यक्ति-चेतना या व्यक्ति स्वातंत्र्य

सभी व्यक्ति में एक ही प्रकार नहीं होता । हरेक व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनुसार ही उसकी व्यक्ति चेतना है । अज्ञेय जी के उपन्यासों में इसका संकेत दिया गया है । रेखा और गैरा के चित्रण से लेखक ने इसकी पुष्टि की है । स्वतंत्र व्यक्तित्व-वाली रेखा विवाहिता है । फिर भी वह भुवन से प्यार करती है । उसके द्वारा ही वह गर्भवती बन जाती है । उसकी निजी इच्छा के अनुसार गर्भपात भी कराया जाता है । एक साधारण नारी के लिए अपना बच्चा सब कुछ है । लेकिन रेखा उसको जनम भी नहीं देती । रेखा अपने हर व्यवहार नैतिक मूल्यों की परवाह के बिना पूर्ण स्वतंत्रता से करती है । इसलिए वह अंत में टूट जाती है, पूर्ण रूप से असफल बन जाती है । लेकिन गैरा अपने नैतिक मूल्यों को सामने रहकर ही स्वातंत्र्य का उपयोग करती है । इसी कारण वह अंत में सफल हो जाती है । यहाँ स्पष्ट है कि व्यक्ति की उन्नति के लिए व्यक्ति चेतना के साथ-साथ नैतिक बोध भी ज़रूरी है । प्रकारांतर से यह शिक्षा भी अज्ञेय की औपन्यासिक रचनाओं से मिलती है ।

अज्ञेयजी की औपन्यासिक रचनाएँ निस्सन्देह बीसवीं शताब्दी के उत्तर शतक के महत्वपूर्ण उपन्यासों में गिनी जाती हैं । यह ठीक है कि स्थान-स्थान पर उनके उपन्यासों में कई प्रकार की दुर्बलताएँ प्रकट होती हैं, किन्तु अनुभूति की जिस प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति के जिस समय का प्रमाण भी अज्ञेय ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है, वैसा हिन्दी के अन्य किसी उपन्यासों में नहीं दिखायी पड़ता । किसी भी सर्जनात्मक कृति की श्रेष्ठता के लिए अन्य बातों के अतिरिक्त उसके रचयिता में अनुभूति की प्रमाणिकता और अभिव्यक्ति की संयम-इन दो गुणों की भी ज़रूरत होती है । इन दो गुणों के अभाव के कारण हिन्दी के अधिकांश सर्जनात्मक रचनाएँ महत्वहीन सिद्ध हो जाती है । लेकिन अन्य

सभी औपन्यासिक तत्व के साथ, अनुभूति की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति के संयम के अंकन की दृष्टि से अज्ञेय की औपन्यासिक रचनाएँ सार्थक साबित होती हैं । व्यक्तिवादी चेतना की तलख, साफ और बेलौस अभिव्यक्ति इन रचनाओं में चार चाँद भी लगाती है । व्यक्तिवादी चेतना के विविध आयाम जैसे अकेलापन, वेदना, संत्रास, घुटन, अस्तित्वबोध, क्षणबोध, अजनबीपन, भय, निराशा, पीडाबोध इत्यादि का उन्होंने अपने उपन्यासों में सजीव अंकन किया है । आखिर कहा जा सकता है कि अज्ञेयजी व्यक्तिवादी चेतना के सफल आख्याता एवं प्रस्तोता है और उनकी औपन्यासिक रचनाएँ व्यक्तिवादी चेतना को अभिव्यक्ति के जीवन्त दस्तावेज़ हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अपने अपने अजनबी — अज्ञेय
   भारतीय ज्ञानपीठ
   दिल्ली - 110006.
   प्र.सं. 1961.

2. नदी के द्वीप — अज्ञेय
   सरस्वती प्रेस
   2/43, अनसारी रोड
   दरियागंज
   नई दिल्ली - 110002.
   प्र.सं. 1951.

3. शेखर: एक जीवनी — अज्ञेय
   सरस्वती प्रेस
   इलाहाबाद
   दिल्ली, प्र.सं. 1944.

4. अधूरे साक्षात्कार: स्वतंत्रता के बाद के हिन्दी उपन्यासों की नये आयाम — नेमिचन्द्र जैन
   अक्षर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड
   21/36 अनसारी रोड
   दरियागंज, दिल्ली - 6.

5. अद्यतन हिन्दी उपन्यास — डा. बिन्दु भट्ट
   प्रकाशक-बाबू भाई एच शाह
   पूर्व प्रकाशन
   निशापोल, जवेरीवाडे
   रिलीफरोड
   अहमदाबाद - 380001.
   प्र.सं. 1993.

6. अस्तित्ववाद और साहित्य	श्यामसुन्दर मिश्र पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर - 302003. प्र.सं. 1984.
7. अज्ञेय और उनका साहित्य	डा.पुनमचन्द तिवारी राज्यश्री प्रकाशन 324 दलपंत स्ट्रीट मथुरा - 281001. प्र.सं. 1987.
8. अज्ञेय कुछ रंग, कुछ राग	श्रीलाल शुक्ल प्रभात प्रकाशन 4/11/असफ अली रोड नई दिल्ली - 110002 प्र.सं. 1991.
9. अज्ञेय गद्य में	ओम प्रकाश अवस्थी ग्रन्थम रामबाग कानपुर - 208012.
10. अज्ञेय कथाकार और विचारक	प्रो. विनयमोहन सिंह पारिजात प्रकाशन डाकबंगला रोड पाटना - 1.
11. अज्ञेय का अंत प्रक्रिया साहित्य	डा.मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ चित्रलेखा प्रकाशन 170, अलोपी बाग इलाहाबाद -6 प्र.सं. 1984.

12. अज्ञेय का कथा साहित्य	डा. देवकृष्णमौर्य अतुल प्रकाशन 107/295, ब्राह्मनगर कानपुर - 208012.
13. अज्ञेय की औपन्यासिक कृतियाँ	श्रीमति कुसुम द्विवेदी साहित्य संस्थान गांधीनगर कानपुर - 1 प्र.सं. 1976.
14. अज्ञेय की औपन्यासिक यात्रा	ए. अरविन्दाक्षन लोकभारती प्रकाशन 15-ए, महात्मागांधी मार्ग इलाहाबाद - 1 प्र.सं. 1992.
15. अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन:	चन्द्रकान्त महादेव बादिपडेकर सरस्वती प्रेस इलाहाबाद प्र.सं. 1981.
16. अज्ञेय चिंतन और साहित्य	डा. प्रेमसिंह फिफ्थ डायमेशन पब्लिकेशन सोहन प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली - 32.
17. आज का हिन्दी साहित्य	प्रकाशचन्द्र गुप्त नाशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली - 7 प्र.सं. 1966.

18. आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता — नवल किशोर प्रकाशक संस्थान 455/1212 पश्चिमपुरी नई दिल्ली - 110026.

19. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास — डा. बेचन सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली.

20. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान — डा. देवराज उपाध्याय साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद द्वि. सं. 1963.

21. उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ: डा. सुरेश सिन्हा राम प्रकाशन नजीराबाद, लखनऊ प्र. सं. 1963.

22. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान: डा. दग्ल झालट्टें वाणी प्रकाशन 128/106 जी ब्लाक किदवई नगर कानपुर - 208011.

23. नये उपन्यासों में नये प्रयोग — दंगल झालट्टे प्रभात प्रकाशन चावडी बाज़ार दिल्ली - 6 प्र. सं. 1994.

24. प्रयोगवाद और अज्ञेय — शैला सिन्हा अशोक प्रकाशन नई सड़क, दिल्ली - 6. प्र. सं. 1969.

25. मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास की बहुत्रयी

डा. रणवीर रांग्रा
कादम्बरी प्रकाशन
5451, शिव मार्किट
न्यूपट्रावल, जवाहर नगर
दिल्ली - 110007.

26. महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्पविधि

डा. शंकर वसन्त मृदुगल
चन्द्रालोक प्रकाशन
128/106 जी ब्लाक
किदवई नगर
कानपुर - 208011.

27. मानवतावाद और साहित्य

नवल किशोर
राधाकृष्ण प्रकाशन
2 अनसारी रोड
दरियागंज
दिल्ली -6.

28. महासमरोत्तर हिन्दी उपन्यासों: जीवन दर्शन

श्याम प्रकाशन
फिल्म कालोनी
जयपुर - 302003
प्र. सं. 1987.

29. समकालीन हिन्दी नाटक चेतना के आयाम

सरला गुप्त
सरला गुप्त भूपेन्द्र
पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, चौडा रास्ता
जयपुर - 302003.
प्र. सं. 1987.

30. साहित्य मूल्य और प्रयोग

डा. बैजनाथ सिंह
संचय प्रकाशन
अशोक विहार
दिल्ली - 110052
प्र. सं. 1985.

31. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास
आर. सुरेन्द्रन
लोकभारती प्रकाशन
24-एन महात्मागाँधी मार्ग
इलाहाबाद - 1
प्र. सं. 1997.

32. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य
डा. उपेश प्रसाद सिंह
विजयकुमार अग्रवाल
शिक्षा निकेतन, वाराणासी
प्र. सं. 1988.

33. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण
डा. हेमेन्द्र कुमार पानेरी
संधी प्रकाशन
लालजी साण्ड का रास्ता
चौडा रास्ता
जयपुर - 302003, सं. 1974.

34. हिन्दी उपन्यास
सुषमा प्रियदर्शनी
राधाकृष्ण प्रकाशन
2, अनसारी रोड
दरियागंज, दिल्ली - 6
प्र. सं. 1972.

35. हिन्दी उपन्यास
डा. सुषमा धवन
राजकमल प्रकाशन
प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
प्र. सं. 1969.

36. हिन्दी उपन्यास और प्रेमसंबद्ध
डा. विजयमोहन सिंह
प्रवीण प्रकाशन
1/1079-ई महरौली
नई दिल्ली - 110030
प्र. सं. 1994.

37. हिन्दी उपन्यास एक अध्ययन — अशोक के शाह प्रतीक
वर्निका प्रकाशन
डब्ल्यू 127 ए ग्रेटर कैलाश
नई दिल्ली - 110028
प्र.सं. 1991.

38. हिन्दी उपन्यास का विकास — डा.सरदार सिंह सूर्यपाणी
संचयन
124/152 सी,
गोविन्दनगर - 6
प्र.सं. 1986.

39. हिन्दी उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन — डा.महावीरमल लोढ़ा
बोहरा प्रकाशन
बोरडी का रास्ता, जयपुर
प्र.सं. 1972.

40. हिन्दी उपन्यासों पर पाश्चात्य: प्रभाव — भरतभूषण अग्रवाल
ऋषभाचरण जैन एवं संतति
दि एजुकेशनल प्रेस
आगरा - 3.
प्र.सं. 1971.

41. हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परंपरा — डा.बदरीदास
ग्रन्थम
रामबाग, कानपुर - 12
प्र.सं. 1966.

42. हिन्दी उपन्यासों में प्रतीकात्मक: शिल्प — डा.सुशील शर्मा
सिद्धराम पब्लिकेशन
दिल्लो, गजियाबाद
बुलन्द शहर
प्र.सं. 1982.

43. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन	डा. शान्ति भारद्वाज सुशील माथुर सुशील प्रकाशन पुरानी मण्डी, अजमेर प्र. सं. 1969.
44. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्द तथा उत्तर प्रेमचन्द काल	डा. सुषमा धवन राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली प्र. सं. 1961.
45. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल	डा. रामशोभित प्रकाश दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभाचरण जैन एवं सन्तति 4662/121, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 11 गार्डन रीच, मसूरी प्र. सं. 1981.
46. हिन्दी उपन्यासों में कथाशिल्प का विकास	डा. प्रताप नारायण टंडन हिन्दी साहित्य भण्डार गंगा प्रसाद रोड, लखनऊ प्र. सं. 1964.
47. हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	डा. विमल सहस्रबुद्धे पुस्तक संस्थान 109/40 ए नेहरू नगर कानपुर - 208012.
48. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण	बिन्दु अग्रवाल राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अनसारी रोड दरियागंज, दिल्ली - 6 प्र. सं. 1967.

49. हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना
डा. एन. के जोसफ
जवाहर पुस्तकालय
सदर बाज़ार, मथुरा
प्र. सं. 1989.

50. हिन्दी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी
डा. राजरानी शर्मा
साहित्य मण्डल
नई दिल्ली - 110002
प्र. सं. 1989.

51. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना
डा. अमरसिंह
जगराम लोधा
चिंतन प्रकाशन
234/ए विश्व बैंक कलोनी,
गुजैनी, कानपुर
द्वि. सं. 1985.

52. हिन्दी उपन्यास विवेचन
डा. सत्येन्द्र
कल्याणमल एण्ड सन्स
त्रिपोलिया बाज़ार
जयपुर - 2
प्र. सं. 1968.

53. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का संघर्ष
मंजुला गुप्त
सूर्य प्रकाशन
दिल्ली - 1
द्वि. सं. 1986.

54. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक
सै. जयश्री बरहाटे
संचयन
124/152. सो. गोविन्द नगर
कानपुर - 208006.

55. हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और विवेचन — डा. माखनलाल शर्मा, साहित्य प्रेस भण्डार, साहित्य कुंज, आगरा, प्र. सं. 1963.

56. हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा — माखनलाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, 204, चावडी बाज़ार, दिल्ली - 6, प्र. सं. 1970.

57. हिन्दी कथा साहित्य — गंगा प्रसाद पाण्डेय, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र. सं. 1981.

58. हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ — डा. ज्ञान अस्ताना, जवाहर पुस्तकालय, सादर बाज़ार, मथुरा, प्र. सं. 1981.

59. हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास — डा. धनराज मानधाने, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर - 12, प्र. सं. 1971.

60. हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास — डा. पुष्पा कोछड, नचिकेता प्रकाशन, 7/19 ए, विजयनगर, डबल स्टोरी, दिल्ली - 110009.

61. हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प — माधुरी छोसला
विजयन्त प्रकाशन
20, ईस्ट एवेन्यू मार्केट
पंजाबी बाग
नई दिल्ली - 26.

62. हिन्दी लघु उपन्यास — धनश्याम मधुप
राधाकृष्ण प्रकाशन
2, अनसारी रोड
दरियागंज
दिल्ली - 6.

xxxxxxx